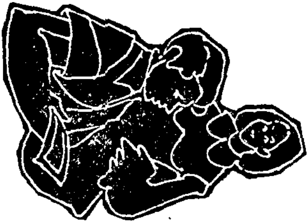
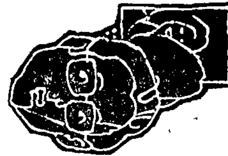
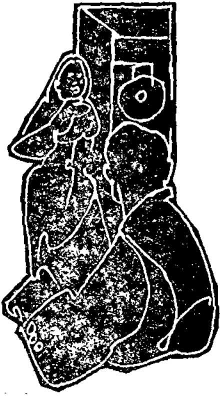




२ पूर्णदेवी



अन्तःतरंग

ANTAH-TARANG
(Novel)
ASHAPURNA DEVI

□

अनुवाद
ममता खरे

□

प्रकाशन
रवीन्द्र प्रकाशन
११३१ कटरा, इलाहाबाद

□

मुद्रक
जय हनुमान प्रिंटिंग प्रेस
इलाहाबाद

□

आवरण व सज्जा : इम्पैक्ट, इलाहाबाद

□

मूल्य : चालीस रुपया

□

प्रथम संस्करण : १९८४

भारत की समस्त भाषाओं में आज ज्ञानपीठ पुरस्कार द्वारा सम्मानित आशापूर्णा देवी से अधिक लोकप्रिय दूसरा उपन्यासकार नहीं।

प्रस्तुत उपन्यास आशापूर्णा जी द्वारा सर्वथा नवीन भावभूमि पर रची अनुपम कृति है।

आशापूर्णा देवी के रचे उपन्यासों की संख्या आज लगभग दो सौ की है—और प्रस्तुत कथा उनकी लेखनी का एक नया व लुभावना रंग है....

एक विधुर वृद्ध—बेटा, बेटी, पतोहू, दामाद, नाती, पोता के रहते भी कितना अकेला है और सब के कारनामों को किस तरह चुपचाप सहता हुआ मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है...और जब वह मरता है तब....

....लगता है बालू के नीचे भी तरंगें चलती हैं जो जीवन को सदा हिलोरती रहती हैं। इसी का चित्रण है अन्त:तरंग में....

इस उपन्यास की रोचकता, मनोविज्ञान को सिर्फ पढ़ कर ही समझा जा सकता है।

अन्तःतरंग

बुढ़ापा जाड़े के मौसम जैसा है। प्रति क्षण स्मरण करा देता है कि अब रोशनी का खजाना खत्म होने को है, अंधकार छाने ही वाला है। जाड़े की शाम को विदा लेते देख यही बात प्रभुचरण सोच रहे थे। सोच रहे थे—या जैसे पानी खत्म होते कलश की तरह, बेहिसाब खर्च करते-करते अचानक ही नजर पड़ गई, कलश ठनठना रहा है, जबकि अब नए सिरे से भरने का वक्त नहीं रहा, इतना भी समय नहीं रह गया कि सोच-समझ कर हिसाब रखते हुए कुछ बचा कर रखा जाये।

हालांकि मनुष्य के जीवन में प्रहर समाप्त होने जैसी कोई नियमबद्धता नहीं है, या फिर पानी खत्म होने जैसा न्यायपूर्ण नियम। फिर भी बाल्य और यौवन काल तो निश्चित ही हैं। वहाँ अगर अवसान हो तो उसे कहा जाएगा असावधान पथिक पर दस्यु ठग अचानक झपट पड़ा है। जैसा कि विभुचरण पर झपटा था। अच्छा-भला, तरो-ताजा लड़का, बिस्तर पर लेटने की नौबत नहीं आई। फुटबॉल खेल कर लौटा और बोला—'पानी पीऊँगा'। बस, वह पानी तक न पी सका। प्रभुचरण के बाद का ही था। सुना है, देखने में भी दोनों जुड़वा लगते थे, एक ही से थे। लोग कहते लव-कुश, राम-लक्ष्मण। प्रभुचरण के मामा कहते, 'वह सब नहीं, ये हैं जगाई-मधाई, यानी चैतन्य और माधव।'

उसी विभुचरण की आकस्मिक मृत्यु ने प्रभुचरण नामक तरुण लड़के को ऐसा विकल-विमूढ़ कर दिया था कि कुछ दिनों तक घर वाले उसे ही लेकर परेशान रहे। सामने कहते, 'पता नहीं लड़के को कौन-सा रोग लगा है,' लेकिन मन ही मन आतंकित रहते। एकात्मा जैसे दो भाइयों से एक की प्रेतात्मा कहीं दूसरे पर तो नहीं आ गई? माँ-बाप इस लड़के की चिन्ता करते-करते उस लड़के का शोक भुला बैठे।

न खाना, न सोना। प्रभुचरण सूख कर काँटा हो गए। पढ़ाई का एक साल भी बरबाद हो गया। अथच, उसी प्रभुचरण ने अगले साल परीक्षा में सबसे अच्छा परीक्षा-फल दे कर सबको चौंका दिया। इसका तात्पर्य है 'जीवन' नामक चीज मृत्यु से बड़ी है। जीवन के मध्य मृत्यु का लालन-पालन बहुत दिनों तक नहीं किया जा सकता है।....भयंकर निर्मम मृत्यु की छाया भी धीरे-धीरे हट जाती है।

लेकिन बुढ़ापा तो दस्यु ठग का शिकार नहीं, बुढ़ापे के प्रत्येक क्षण का तटस्थ अवहित है। बुढ़ापा जानता है कि 'अवसान' अपना अचूक परवाना लिए दरवाजे पर खड़ा है। बीच-बीच में साइकिल की घंटी बजा कर जता जाता है, 'अरे, कमरे से बाहर निकल आओ। परवाने पर दस्तखत करके इसे लेते जाओ।'

लेकिन कितने आदमी ऐसे मिलेंगे जो हिम्मत करके बाहर निकल आते हैं? कहते हैं, 'यह रहा। देखूँ, कहाँ दस्तखत करना है?'

बल्कि घर की खिड़की-दरवाजे बन्द कर देते हैं। ऐसा दिखाएँगे जैसे यह पुकार उन्होंने सुनी ही नहीं है।

प्रभुचरण ने सोचा, 'मैं भी वही कर रहा हूँ। बार-बार घंटी सुन कर भी अनसुनी कर रहा हूँ। अभी भी सोच रहा हूँ, आजकल 'सम्पत्ति' का कानून इतना जटिल हो गया है। अच्छी तरह से 'विल' कर सकता तो अच्छा रहता। नहीं कर जाऊँगा तो लड़के परेशानी में फँस सकते हैं, लड़की कह सकती है, 'पिताजी ने मेरी बात सोची ही नहीं।'

लेकिन इतना ही। 'कर रहा हूँ,' 'करूँगा' सोच कर भी करना नहीं हो रहा है। 'सम्पत्ति' के नाम पर अवश्य ही अगाध कुछ नहीं है, फिर भी कलकत्ता शहर के इस तिमजिले मकान का आजकल दाम कुछ कम नहीं है। मकान दिनोंदिन नष्ट हो रहा है फिर भी काल की गति मूल्य बढ़ा ही रही है। घटा नहीं रही है। इसके अलावा गाँव में पैतृक घर, जमीन, जायदाद भी कुछ कम नहीं है। अभी तक उसे बहुत ही तुच्छ समझ रहे थे। भग्नप्राय पैतृक मकान और उसके आस-पास का भूखण्ड जैसे अपना मूल्यहीन अस्तित्व लिए विस्मृति के गह्वर में समाया पड़ा था। लेकिन आजकल सुनने में आ रहा है, वहाँ भी पड़ी हुई जमीन का दाम बढ़ रहा है। अनेक लोग उपेक्षित 'गाँव के घर' तथा 'जमीन' बेंच कर बड़े आदमी बने जा रहे हैं, अतएव पीले पड़ रहे पुराने कागजात निकाल कर एक दिन लड़कों से कहा था प्रभुचरण ने, 'देखो जरा बेटा, इन सब का क्या कहाँ है?'

बड़े लड़के ने कहा, 'वह तुम्हीं समझोगे, पिताजी, तुम देखो। पर हमारे दफ्तर के एक व्यक्ति कह जरूर रहे थे कि उस तरफ की जमीन-जायदाद का आजकल काफी दाम चढ़ रहा है। उसका साला या कोई ऐसा ही, गाँव की कई बीघे जमीन बेच कर कलकत्ते में मकान बनाने बैठ गया है।'

छोटा बेटा बड़े भाई की तरह मूर्ख नहीं। उसने कागजात समेट कर कहा, 'लाओ, समय निकाल कर देख लूँगा।'

देखा है या नहीं, कौन जाने, पर तब से वे कागज उसी के पास हैं।...मन का पाप बड़ा पाप होता है, लगभग नाग की तरह। प्रभुचरण कभी-कभी सोचते—'कहाँ, शुभ ने तो वे कागज लौटाये नहीं। उन्हें लेकर क्या कर रहा है? कोई दूसरा इरादा तो नहीं है?—यह सोच कर तुरन्त ही स्वयं को धिक्कारते हैं। लेकिन सोचने पर तो कोई रोक नहीं।...ऐसा सोच कर भी अब कहाँ कह पा रहे हैं, क्यों? 'अरे, देखा था उन कागजों को? क्या समझ में आया?'

कहने पर कहीं यह न सोच बैठे क्या पिताजी मुझ पर शक कर रहे हैं?

किसी किसी समय लगता, 'जाए भाड़ में, पृथ्वी से विदा लेने पर कौन किसका होता है? बाद में दो भाई जो कर सकेंगे, करेंगे।...किन्तु हर समय इन बातों का मन समर्थन नहीं करता। कौन जाने इसी कारण से दोनों के सम्बन्ध कहीं बिगड़ न जाएँ, या फिर बहन का हिस्सा मारा न जाए।

पहले हालाँकि 'बहनों' के भाग्य में कुछ नहीं होता था। विपुल धनवान बाप की लड़की को प्रभुचरण ने स्वयं देखा है, दुर्दिन में जीवन बिताते। अपनी ही बुआ की

ससुराल में इसके ससुर अथाह सम्पत्ति छोड़ गए थे। फूफा तीन भाई थे। सबने मिल कर सारी सम्पत्ति बाँट ली। विधवा बहन दो अनाथ लड़के लिए मारी-मारी फिरती रहीं।....प्रभुचरण के पिता के पास ही आकर वह महिला दुःख प्रकट कर गई थीं। लड़कों की पढाई के लिए सहायता ले गई थीं। कहती थीं—'रास्ते-रास्ते भीख मागूँगी, फिर भी ऐसे भाइयों के दरवाजे पर नहीं जाऊँगी।'

तब से प्रभुचरण के पिताजी ने अपनी बहन के साथ सम्बन्ध ही खत्म कर दिए थे। कहते थे, 'उनका मुँह देखना भी पाप है।'

आजकल कानून लड़कियों के प्रति 'प्रसन्न' है। उन पर वह अन्याय खत्म हो चुका है, वे पैतृक सम्पत्ति की हिस्सेदार हैं। फिर भी भाइयों के साथ बहन भी बराबरी का हिस्सा पाए, कितने पिता इसका अनुमोदन करते हैं? 'वंश-धारा' शब्द बड़ा शक्तिशाली है। लड़की तो वंश की अगली कड़ी को बढ़ाने का दायित्व वहन नहीं करती है? अतएव कानून उसे जितना दे रहा है, उसमें भी काट-छाँट कर, नाप-जोख कर फिर देना चाहिए। और इसीलिए तो 'विल' की जरूरत है।

प्रभुचरण भी इस 'जरूरत' को अनुभव कर रहे हैं, फिर भी शिथिल भंगिमा में बैठे हैं। मानो उन्हें सम्मन की 'घंटी' सुनाई नहीं पड़ी है। इसीलिए स्मृति-कक्ष का दरवाजा खोल कर वे अपने मँझले नाना के विल बनाने का दृश्य देख रहे हैं।....

उन दिनों 'कृष्णकान्त का विल' नामक पुस्तक बड़ी प्रसिद्ध हो रही थी। अकसर प्रभुचरण के मामा वृजविलास हँस-हँस कर कहते, 'मँझले चाचा का विल तो बन रहा है। कहीं इधर-उधर से कोई रोहिणी आकर न उसे झपट ले जाए।'

सुना है मँझले नाना अंग्रेजों के साथ 'जहाजी कारखाना' बना कर काफी रुपया इकट्ठा कर चुके थे। उस पैसे के हकदार भाई नहीं थे, कानूनन होने की बात भी नहीं थी। पर उन दिनों कानून सख्त था। उसके अनुसार संयुक्त परिवार में कोई कुछ भी कमाए, असल में सारी सम्पत्ति एक मानी जाती थी। अतएव मँझले नाना को दानपत्र लिखने के लिए 'विल' करना पड़ा था। लेकिन एक बार बना कर क्या वे शान्त हुए थे? इतने दिनों बाद वह बात याद करके प्रभुचरण मुस्कुरा दिए।

उनके अपने तीन बेटे और दो बेटियाँ थीं। पहला विल हुर लड़की को पाँच-पाँच हजार देने का निश्चय करके लिखवाया। और मूल सम्पत्ति, तीनों बेटों में समान भाग में बाँट दी। इसके अतिरिक्त कुछ गृह देवता के नाम पर, बुजुर्ग पुरोहित जी के नाम पर और जो भतीजा सबसे अधिक मुँहलगा था, उसके नाम पर भी लिख-पढ़ दिया। उस वसीयत को गुप्त रखा उन्होंने। फिर भी न जाने कैसे, इसका सारार्थ सारे घर की आबहवा में तैरता फिरने लगा।

प्रभुचरण के पिता की बदली वाली नौकरी थी। अक्सर ही प्रभुचरण को अपने भाई, बहनों और माँ के साथ, मामा के यहाँ जा कर रहना पड़ता था। पिता नई जगह जाकर सब ठीक-ठाक कर लेते तभी स्त्री-पुत्र को अपने पास ले जाते। पत्नी और पुत्री साथ रहतीं पर लड़कों को पढ़ाई की सुविधा की दृष्टि से मामा के यहाँ छोड़ जाते।

उन दिनों पाठ्य-पुस्तक स्कूलों में अलग-अलग तो थीं नहीं। क्लास के अनुसार सभी जगह एक ही थी। भइया की पुरानी किताब से छोटा भाई, चाचा की किताब से भतीजा या मामा की किताब से भांजा, यहां तक कि पड़ोस के बड़े-बूढ़ों की किताब पढ़ कर मोहल्ले के लड़कों का पल जाना, एक स्वाभाविक बात थी। शायद ही कोई किताब न मिलती तभी खरीदने का प्रश्न उठता।

प्रभुचरण को याद आया, उस दिन सुन रहे थे घर की बर्तन मांजने वाली महरी अपनी लड़की की किताबों की नई लिस्ट लेकर घरों का चक्कर लगा रही है। लड़की फेल हुई है तो उससे क्या ? नई किताबें चाहिए। पिछले साल की किताबें नहीं चलेंगी।

प्रभुचरण के ज़माने में चलती थी।

साल दर साल चलती थी। उससे क्या विद्या-बुद्धि कम हो जाती थी ? कौन जाने ! आज के इस समाज में प्रतिष्ठित विद्वान् व्यक्ति, चिन्तनशील शिक्षाविद्गण, दिमाग़ लड़ा कर खाने वाले राजपुरुष, सभी तो उसी पुरानी पद्धति में पढ़-सुन कर आदमी बने हैं।....क्या प्रभुचरण को विश्वास करना होगा कि आजकल के ये लोग उनसे ज्यादा ज्ञानी-गुणी हैं ?

सर्वत्र पाठ्य-पुस्तक एक ही होने से प्रभु-विभु की पढ़ाई में, पिता की बदली के कारण कोई विशेष बाधा नहीं पड़ती थी। दोनों भाई अपनी किताब-कॉपी लेकर मामा के यहां चले आते और महान् उत्साह के साथ अपने ममेरे भाइयों के साथ उनके स्कूल में पढ़ने जाने लगते।

बहनें दो थीं। वे माँ-पिताजी के साथ ही घूमा करतीं। उनका लड़कों की तरह पढ़ना कोई जरूरी नहीं था। एक स्लेट, एक 'कथामाला' या 'बोधोदय' नाम के वास्ते रहना काफी था।....असली शिक्षा तो थी माँ के पीछे-पीछे घूम कर रसोईघर एवं भण्डार-घर को पहचानना।

प्रभुचरण को याद है, वे दोनों भाई जब पढ़ने के लिए मामा के घर आते, बड़ी दीदी, छोटी दीदी कैसा दुखी और ईर्ष्याभरी दृष्टि से उन्हें देखतीं और दीर्घश्वास छोड़ कर कहा करतीं—'तुम लोग ही मजे मे हो। मर कर अगले जन्म में लड़का बन कर पैदा होऊँगी।'

दोनों ही बहुत दिन पहले मर चुकी हैं।....उसके बाद क्या उन्हें अपना ऐच्छिक जीवन प्राप्त हुआ है ? जानने का कोई उपाय भी नहीं है। यह एक आश्चर्यजनक बात है न ! कोई जानता तक नहीं है कि मर कर कहां जाया जाता है। मरने के बाद कोई भी आकर 'आँखों देखा विवरण' नहीं बता गया है। फिर भी उस अनजाने, अनदेखे, अनिश्चित जगत् का लालन-पालन मनुष्य कितनी व्याकुल ममता से करता चलता है।
... हो सकता है, तीव्र इच्छा और उसी इच्छापूर्ति के होने की हताशा से ही इस जगत् की सृष्टि हुई है। जो इच्छा वास्तव में पूरी होने की नहीं, जो स्वप्न, जो आशा सिर्फ शून्य मे विलीन हो जाने के लिए है, उसी को यह सोच कर बांध रखना—फिर कहीं, दूसरी जगह, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में। ' जो कुछ इस जन्म में न मिल सका वही

अगले जन्म में पा जाऊँगा,' यह धारणा ही उसकी व्यर्थता के जले पर स्नेह का प्रलेप लगाती है।

प्रभुचरण ने सोचा, मनुष्य 'जीवन' से कितना प्रेम करता है। इसीलिए मृत्यु के बाद बिल्कुल खत्म हो जाने की बात सोच कर उसकी छाती फटती है। इसीलिए सोचता है, एक ऐसी जगह तो है जो खत्म होने बाद भी कुछ है, जहाँ इस जन्म की समस्त अपूर्ण आशाओं के बदले में अपनी इच्छानुसार कोई एक भूमिका चुन सकने की क्षमता रहती है। उसी 'रहने' के विश्वास पर ही अगले जन्मरूपी वृक्ष को पानी से सींचता है आदमी।

बड़ी दीदी और छोटी दीदी भी यही करती थीं।

इसीलिए कहती थीं—'अगले जन्म में पुरुष होकर जन्म लूँगी।' प्रभुचरण ने इतने वर्षों बाद, आज अचानक उन्हीं लड़कियों के लिए एक दबी साँस निकल जाने दी। 'लड़की' के रूप में यद्यपि उन्होंने पृथ्वी से विदा नहीं ली थी। गृहणी बन कर कुछ फसल इकट्ठा की थी फिर भी बडे ही असमय में मरी थीं।....अच्छा, सचमुच ही अगर उनकी व्याकुल इच्छा फलवती हुई हो ? उनकी आत्माएँ पुरुष रूप धारण करके अगर पृथ्वी पर विचरण कर रही हों ? तब क्या 'वाणी' और 'वीणा' नामक वह बुद्धू-बुद्धू-सी लड़कियाँ इच्छापूर्ति का सुख-स्वाद प्राप्त कर रही हैं ?

कहाँ बैठ कर ?

किस मूर्ति में ?

'मृत्यु शायद मेरे तम्बू के बाहर टहल रही है', प्रभुचरण ने सोचा, वरना आजकल हर वक्त उन सब लोगों की याद क्यों आती है ? मित्र, परिजन, वे सारे प्रिय मनुष्य, जो न जाने कब पृथ्वी छोड़ चुके हैं।

अनचखा एक स्वाद आता है, उनके साथ जुड़ कर विस्मृत होती स्मृति को उलट-पुलट कर देखने में, उसमें खो जाने में।

ननिहाल की बात आजकल जब-तब याद आती है। सभी तस्वीर की तरह आँखों के आगे आ जाते हैं। उस दिन प्रभुचरण की छोटी दीदी का छोटा लड़का इस घर में आश्रय की आशा लेकर आया था। और वह निराश लौट गया था, इसीलिए क्या ?

प्रभुचरण का पैर छू कर लड़के ने जब कहा था, 'तो फिर जाऊँ मामा ? देखूँ, अगर कहीं मेस-वेस में जगह पा सकूँ' तभी क्या अचानक नए सिरे से प्रभुचरण को ध्यान आया था कि यह मकान, उस शान्त, नम्र 'मातृमुख' लड़के का ननिहाल है ?.... जो मकान अपने 'स्नेह' के लिये विख्यात है ? प्रभुचरण लोग तो उस आदर-स्नेह का रूप पहचानते हैं।

हालाँकि लड़का स्नेह पाने की प्रत्याशा लेकर नहीं आया था। आया था जरा-से आश्रय की आशा लेकर। गाँव से कलकत्ते आया था, मामूली-सी एक नौकरी लेकर। उस नौकरी की आय से कलकत्ते में घर लेकर, घर पैसा भेजना मुश्किल था। अतएव मामा के इस तिमंजिले मकान के एक कोने में जरा-सी जगह पाने का भरोसा लेकर आया था।

लेकिन उसे प्रभुचरण वह भरोसा न दे सके। उन्हे साहस नहीं हुआ। यद्यपि इस घर के गेट पर अभी भी चम-चमाते पीतल के नेमप्लेट पर प्रभुचरण का नाम ही खुदा हुआ है। यह बात याद आते ही कुछ दार्शनिक हँसी हँसे प्रभुचरण—कितने घरों में तो मृत व्यक्ति के नाम का नेमप्लेट पड़ा रहता है। वही बात यहाँ भी सोची जा सकती है। सोचा जा सकता है कि अभी भी मृत गृहस्वामी का नेमप्लेट लगा है। अगर सोच सकते तो नदी की उफनती लहर शान्त हो जाएगी।

सोचना क्या बहुत मुश्किल है ?

हो सकता है खूब मुश्किल न हो, अगर जीवन अपने शेप प्रान्त पर पहुँच कर अकेला हो गया हो। जब तक जीवन साथी रहता है तब तक सब कुछ प्रयोजनीय है। तब ऐसे त्याग का मंत्र उच्चारण करना सहज नहीं होता है। अपने को मृत समझना आसान नहीं होता है और जीवन का दूसरा साथी यह मानेगा ही क्यों ?

इस समय प्रभुचरण के लिये यह बात सोचना कठिन नहीं। उनके जीवन की दूसरी हकदार वनशोभा नामक महिला उन्हें छोड़ कर काफी पहले ही खिसक चुकी थीं। इस समय गृहस्थी की मालकिन हैं वनशोभा की बड़ी बहू। अतएव जिस समय बड़े लड़के ने चेहरा लटका कर कहा—'आपने तो कह दिया—परेश नीचे के फ्लोर में रह लेगा। मन ही मन सोचा, व्यवस्था हो गई। लेकिन ऐसे दिनों में एक जीता जागता आदमी पालना कितनी बड़ी बात है, यह तो आप विचार ही नहीं कर सकते हैं।'

उस समय प्रभुचरण को हिचकते हुये कहना पड़ा था—'वह कह रहा है, गृहस्थी में अन्दाज माफिक कुछ देगा भी....'

कहते ही समझ गये थे, कह कर अच्छा नहीं किया। क्योंकि तुरन्त वही 'अच्छा न लगने' वाली बात भुवचरण ने उनकी आँखों के आगे कर दिया। व्यंगात्मक गम्भीर गले की आवाज थी। बोला—'गृहस्थी में कुछ देगा ? बड़ी अच्छी बात है। सो, देगा कितना ? इस घर के खाने-पीने के स्टेटस माफिक दे सकेगा ? हूँ। चूहा मार कर हाथ 'वैसा' नहीं किया जा सकता है, पिताजी।....इसके अलावा सिर्फ खर्च ही नहीं, घर में एक बाहरी आदमी आ कर अपनी जड़ फैला कर बैठता है तो घर की महिलाओं का

दायित्व बहुत बढ़ जाता है। वे लोग क्यों झूठमूठ का झमेला बढ़ाएँगी ?'

गौरववश बहुवचन में 'वे लोग' कहा उसने।

इसके बाद कैसे कुछ कहा जाता ?

वनशोभा रहतीं तो हो सकता था कि ऐसा नहीं होता—यह सोचना व्यर्थ है। बहुत किया जा सकता है तो फायदा नुकसानहीन एक दीर्घश्वास चुपचाप, सबकी आँख बचा कर छोड़ सकते हैं। हाँ, अब सांस चुपचाप ही छोड़नी पड़ती है। एक दीर्घ-श्वास का बोझ भी तो कम बड़ा बोझ नहीं है। उसे क्या प्रभुचरण गृहस्थी के कन्धे पर डाल दें ? क्यों ? वे क्या इस गृहस्थी के शत्रु हैं ?

इसीलिये उन्हें कहना पड़ा—'हाँ, यह बात तो है। खैर, रहना सम्भव न हो सकेगा, उसे यह बात कह दूँगा।'

ध्रुवचरण होंठ चबाते हुए खड़ा रहा। फिर बोला—'हम लोगों का जिससे सिर झुक सके, उसी ढंग से कहेंगे न ?'

उस दिन प्रभुचरण आश्चर्य से बेटे का मुँह देखते रह गये। फिर धीरे से पूछा था, 'जिससे तुम लोगों का सिर झुक जाए, मैं ऐसी बात कहूँगा ?'

जरा शर्मिन्दा होकर ध्रुव बोला, 'हमारी आपत्ति के कारण ही उसकी इच्छा पूरी नहीं हो रही है। इसीलिये ऐसा कहने से यही बात बनती है।'

सबकी नजर बचा कर प्रभुचरण ने सांस छोड़ कर कहा, 'तुम लोगों से क्या परेश मेरा ज्यादा सगा है, ध्रुव ?'

ध्रुव ने जल्दी से कहा, 'यह बात नहीं है। कहने के ढंग से दूसरी तरह बात समझी जा सकती है, मैं यही कह रहा था।'

जैसे प्रभुचरण हमेशा ही गलत ढंग से बातें कहते आये हैं।

लेकिन प्रभुचरण को 'कहने का ढंग' बदल कर असुविधा उठानी नहीं पड़ी। परेश ने स्वयं ही आकर कहा था, 'मामा, सोच -कर देखा कि यहाँ रहूँगा तो ऑफिस बड़ी दूर पड़ जायेगा। देखूँ, अगर किसी मेस-वेस में इन्तजाम कर सकूँ तो....'

प्रभुचरण नहीं जानते, इस लड़के को 'सोच कर देखने' की प्रेरणा दी किसने ? पूछने का मुँह नहीं। चुपचाप पूछने जैसी असभ्यता करना भी सम्भव नहीं। इसीलिए धीरे से उन्होंने कहा था, 'जैसी सुविधा हो....' । प्रभुचरण उसके मामा हैं फिर भी दबाव डालते हुए यह न कह सके, 'मामा का घर रहते तू मेस में जा कर रहेगा ?'

कैसे कहते ?

हमेशा जिसके कन्धों पर इच्छा-अनिच्छा की सारी जिम्मेदारी बेझिझक डाले फिरा करते थे, वही आज पहुँच के बाहर है। इसीलिये प्रभुचरण नामक हट्टाकट्टा आदमी आज निरुपाय है। बीच-बीच में यूँ लगता कि वनशोभा अचानक भयानक विश्वासघात कर गई है।

लड़के के जाने के बाद से 'ननिहाल' शब्द जैसे प्रभुचरण पर सवार हो गया। रह-रह कर वह सारे चित्र आँखों के आगे तैरने लगते जो 'ननिहाल' शब्द की आत्मा है।

प्रभु और विभू नाम के दो दुर्दान्त शरारती लड़के अचानक, अपनी कापी-किताबें लेकर ननिहाल आ पहुँचते, जहाँ लोगों से घर भरा रहता। इतने आदमी थे कि ठीक-ठीक पता भी नहीं चलता था कि किसके साथ किसका या उनका क्या रिश्ता है।.... हालांकि इससे कुछ आता-जाता नहीं। जनानखाने से सम्पर्क तो केवल खाने-सोने का रहता। सारा समय तो बाहर ही बीतता था।

आते ही महोत्साह से हमउम्र ममेरे भाइयों के साथ स्कूल आना-जाना शुरु हो जाता। हमउम्र की वहाँ कमी न थी, क्योंकि अपने ममेरे और चचेरे मामाओं को सब मिला कर संख्या कुछ कम न थी। उनकी सन्तान-संख्या भी कम न थी। प्रभु-विभू स्वयं चार ही भाई बहन हैं, यही उल्लेखनीय बात थी।

अफसोस करती हुई नानी कहा करतीं, 'अभी भी वक्त है। इसी वक्त कमली सब समेट कर बुढा बैठी।'

उस पर मामियों में से किसी की उत्साह-वाणी भी सुनाई पड़ती, 'होने दीजिये बाबा, सब बड़े हो गये हैं, निश्चिन्त हो गई हैं।'

हालांकि नानी की गुस्से से भरी आवाज सुनाई पड़ती—'बहू, जी जलाने वाले फैशन की बात मत करो। घर पर बच्चा न रहना, निश्चिन्त होना है? बच्चे बड़े हो गये हैं तो क्या करेगी? स्वर्ग पहुँचने की सीढ़ी खड़ी करेगी क्या?'

ऐसी बातें प्रभुचरण या विभूचरण नहीं सुनते थे लेकिन कानों में बात पड़ ही जाती थी।....पर हाँ, बीच-बीच में स्कूल जाते समय इस मकान के बड़े से बरामदे में खाने-के लिये लगाये गये पीढ़ों का समारोह देख कर पिता के रेलवे क्वार्टर वाले घर के रसोई के दरवाजे के सामने रखे दो पीढे, बड़े दीन-हीन से लगते।

अतएव ननिहाल एक लोभनीय स्थान था।

और एक मामले में यहाँ बिल्कुल छूट थी। क्योंकि वह उनका मामा का घर था, इसलिये हर गलती क्षम्य थी।....यह कोई सिर पर आ पड़े, विधवा बहन के लड़के नहीं थे। अच्छे-भले पदस्थ नौकरी करते पति की पत्नी, ऐसी बहन के लड़के थे।

हालांकि उन्हें संसार-चक्र की इस कूटनीति से करना क्या था? इतना जानना काफी था कि मामा का घर, सुख का घर है।

यहाँ हर चीज की छूट थी। स्कूल में भी कोई बाधा न थी।

अगर स्कूल के किसी छात्र के मौसी-बुआ के लड़के अस्थायी रूप से आकर दो-एक महीने क्लास की बेंच पर दखल जमाये बैठे रहते हैं तो अधिकारियों की आपत्ति का क्या कारण हो सकता है?

पर ननिहाल आते ही भ्रातृयुगल का स्कूल जाने का उत्साह तुरन्त विलुप्त हो जाता। किताब-कापियाँ नानी के कमरे के ताखे पर स्थायी-रूप से स्थान लाभ करतीं।

वे सारी दोपहर अधपके अमरूद, पके बेर, धूप में रखा अचार या कम तैयार अमावट इत्यादि का स्वाद ग्रहण करते-फिरते।....आश्चर्य! भूख भी इतनी लगती—प्रभुचरण सोचते....रात दिन खाऊँ-खाऊँ। आजकल के लड़कों के मुँह से तो 'भूख' शब्द सुनाई ही नहीं पड़ता है। 'खाना' लेकर उनके पीछे-पीछे घूमना पड़ता है। शायद सब घरों में नहीं घूमना पड़ता है। चालू भाषा में तो कहा ही जाता है—घर में कुछ नहीं तो भूख ज्यादा।

पर एक-एक बार सोचते हम लोग तो 'लक्ष्मी की कृपा' वाले घर के लड़के थे। बल्कि हम लोग राक्षस हो गये थे। अपने घर की नियमबद्धता के बीच शायद इतना नहीं, पर ननिहाल में आते ही ऐसा हो जाता।....विभू पूछता, 'भइया, वहाँ तो रात-दिन भूख नहीं लगा करती थी। यहाँ आते ही हर समय पेट में आग क्यों जला करती है?'

'भइया' अगर आज के प्रभुचरण होते तो शायद समझा सकते। समझाते पूर्ण स्वाधीनता और खाली दिमाग तथा दुष्टतापूर्ण योजनाशक्ति, इन तीनों के सम्मिलन से ही ऐसा होता है। लेकिन उस समय का 'भइया' दोनों हाथ नचा कर कहता, 'भगवान् जाने।'

सचमुच। जो अपनी समझ में न आये उसे जानने का उत्तरदायित्व भगवान् के अलावा और किसका है?

एक बार उसकी 'खाऊँ-खाऊँ' की वजह से भयंकर दुर्गति हुई थी।....हालांकि सिर्फ प्रभु-विभू ही नहीं, साथी-संगाती सभी की दुर्गति हुई थी क्योंकि वे भी कुछ कम न थे। इसके अतिरिक्त प्रभु-विभू के आते ही उनका मनोबल बढ़ जाता।

वे अचानक पकड़े जाते तो अनायास ही 'अतिथियों' के कन्धों पर दोष डाल कर निश्चिन्त हो जाते और बेवक्त खाने के लिये माँगने जाते तो बेझिझक कहते, 'प्रभुदादा माँग रहे हैं। विभूदादा ने कहा...'

पर, कहाँ? इन बातों से हम तो कभी गुस्सा नहीं होते थे? हम समझ जाते थे, हमारा नाम लेने से वे डाँट खाने से बच जाएँगे।...विभू सिखा भी देता था। कहता, 'ऐ! कोई डाँटे तो कह देना कि मैंने कहा है। हमें तो कोई डाँटने नहीं आयेगा।'

सचमुच ही कोई उस तरह से डाँटता भी न था। कैसे डाँटेगा? है? बहुत हुआ तो छोटे मामा कहते, 'दैत्य कुल के प्रह्लाद हैं।...के जगाई-मधाई।'

उस बार की दुर्गति डांट की शक्ल में नहीं आई थी। आई थी जलेबी के पेंच की तरह।

प्रभुचरण की इच्छा होती, अपने बचपन के किस्से पोतों को सुनाएँ, लेकिन कहाँ कोई, कौन मिलेगा ? इस युग में शिशु तो दुर्लभ वस्तु हैं। बहुविध शिक्षा-दीक्षा के जाल में फँसे शिशुओं का दर्शन पाना ही कठिन है। सुबह से रात तक रूटीन में बँधे चक्के के साथ चक्कर काटते रहते हैं।

कहानी सुनाने लायक किसी को न पाने पर भी स्मृति घूम-फिर कर झाँकने आती ही है। दिखाई पड़ता है, प्रभु-विभू नामक दो भाई मामा के यहाँ छत पर एक लम्बे बाँस का चोंगा ले कर कुछ कर रहे हैं। दोनों के चेहरे से हँसी चू-चू पड़ रही थी।

उसके बाद शाम की वह घटना।

सँझली नानी को पूजा करने का रोग है। वह शाम को छत के ठाकुरघर में पूजा करने बैठी ही थीं कि अकस्मात् सुनाई पड़ा, कोई नाक से आवाज निकालते हुए बुला रहा है—'भूंती ! भूंती।'

भूंती ?

चौंक उठीं हाली शहर के चक्रवर्ती-गृह की सँझली मालकिन। इस नाम से उन्हें कौन बुला रहा है ! बहुत दिनों का भूला यह नाम—इस घर में इस नाम से कोई जानता तक नहीं है। और जानने पर भी बुलाएगा कौन ? उस पर भी नकियाती आवाज में। काँपते-काँपते हाथ में ली माला जल्दी-जल्दी फेरने लगीं।...फिर सुनाई पड़ा, 'आम के अंचार का मर्तबान लेकर तू क्या स्वर्ग जाएगी ? बच्चों को देती क्यों नहीं....'

सँझली मालकिन जैसे पत्थर में बदल गईं....।

हाथ की माला भी स्थिर हो गई।

उस दिन पूजा-गृह में दो घंटे तक नहीं रहीं। नीचे उतर आईं। अन्य दिन सारी शाम वहीं रहती थीं।

यद्यपि छोटी नानी पीठ पीछे कहा करतीं, 'पूजा नहीं...ढोंग। गृहस्थी को धोखा देना ! शाम ही को तो दुनिया भर का काम रहता है।'

खैर, वह बात और है—उस दिन किसी के साथ कोई बातचीत विशेष नहीं की—गुमसुम-सी रहीं।

दूसरे दिन बड़े से एक पत्थर के कटोरे में आम का अचार भर लाईं। सारे बच्चों को बुला कर बोलीं, 'रोज अचार-अचार किया करते हो, हर समय छू नहीं सकती हूँ। ले जाओ, मिल-बाँट कर खाओ।'

दोनों भाइयों में आँखों ही आँखों में इशारा हो गया।

ऐसी भयानक सँझली नानी की जड़ें इसके माने हिल गई हैं। इतनी बात समझ गई हैं कि अचार का मर्तबान लेकर स्वर्ग न जा सकेंगी।

सब को मिल-जुल कर खाने का आदेश होने पर भी, सबसे बड़ा हिस्सा अवश्य

ही प्रभु-विभू का लगेगा। वे घर के भांजे हैं, इसलिए उनका दावा भी ज्यादा है। उस पर अन्दरूनी बात तो है ही। अतएव दोनों भाइयों ने झपट्टा मार कर बड़ा-सा हिस्सा उठाया और मुंह में भर लिया।

उसके बाद ?

उसके बाद ही तो रावणवध करने-सा तहलका मच गया।....इस बीच और भी दो-एक ने चख लिया था। एक साथ चार-पांच लड़के चर्खी की तरह नाचने लगे। उछलते, अपने सिर पर स्वयं ही हाथ मारते और फटी-फटी आवाज़ में आर्तनाद कर उठते—'पा...पा....पानी।'

क्या हुआ ? क्या हुआ ?

ऐसे क्यों कर रहे हो ?

बताओ तो सही क्या हुआ है ?

लेकिन कहें कैसे ? क्या कहे ? कहने का यन्त्र तो यही जीभ है। इतनी देर में तो वही जीभ फूल कर कुप्पा हो रही थी। 'नादान' सँझली नानी हाँ-हाँ करती दौड़ी आईं—'क्या हुआ मानिक, क्या हुआ सोना ? ऐसा क्यों कर रहे हो बच्चों ?'

विभू नामक लड़का बिगड़ कर बोल उठा, 'रहने दो ! सोना-हीरा कहने की जरूरत नहीं है। अचार में खूब मिर्च डाल कर....'

मिर्च !

सँझली नानी आसमान से गिरीं जैसे। 'गुड़ के आम वाले अचार में मिर्च क्यों डालूँगी, भइया ? सिर्फ पांच फोड़न का कुटा मसाला पड़ा है।'

लेकिन उनकी बातें सुन कौन रहा है ? यहां तो सारा मामला ही रसातल में जाने वाला है। महिलाओं में से कोई लोटा भर-भर पानी ला रहा है, कोई गुड़ की भेली, तो कोई शहद की शीशी लिये खड़ा है।

यहां तक कि घर के मालिक लोग भी दौड़ आये, 'घर में यह सब क्या हो रहा है ?'

क्या हो रहा है, यह कोई कह न सका।

फिर भी लगता है अचार में मिर्च है।

सँझली नानी अपने भंडारघर से और भी कटोरा भर अचार ले आईं। बड़ों को जबरदस्ती खिला कर बोलीं, 'देखो इसमें क्या है ? खा कर देख लो।'

क्या रहेगा ?

आम का इतना बढ़िया अचार है।

लड़के बोल उठे—'हमारे वाले से खा कर देखो।'

लेकिन उनके छुए अचार में कोई क्या खायेगा ? उनका हाथ हर वक्त गन्दा नहीं रहता है ?....उनके कपड़े-लत्ते क्या हर वक्त छूने लायक होते हैं ? उनकी इतनी दुर्दशा देख कर भी कोई उन्हें छू रहा है क्या ? सभी दूर से नाना प्रकार के निर्देश दे रहे हैं—'गुड़ खा, पानी पी ले, शहद चाट ले,' इत्यादि।

अतएव उनके हिस्से से कोई भी नहीं चखता है। सिर्फ आलोचना चलती रही, 'उसमें कुछ गिरा तो नहीं ? क्या गिर सकता है ? साँप का विष ? छिपकली का जहर ? या फिर किसी और जीवजन्तु का ? नेवले का। तक्षक साँप का ?'

'यह सब कहाँ से आयेगा सुनूँ तो ?' सँझली नानी झंकार उठीं, 'एक ही बर्तन से निकाल कर उन्हें दिया, तुम लोगों को दिया है। साँप का विष, छिपकली का जहर, नेवला वगैरह आया कब ? लगता है, भूत की करामात है।'

'भूत ! भूत मतलब।'

'भूत ऐसा कि सोचा और आ गया ?'

'फिर आयेगा, कहाँ है।

निर्लिप्त भाव से सँझली नानी बोलीं—'भूत का आना क्या पता लग सकता है ? मानना पड़ेगा, घर में ही भूत मौजूद है। हाँ, भूत है यहाँ। वरना गुड़ वाले आम के अचार में मुट्ठी भर-भर कुटा मिर्च कहाँ से आया ?'

बुद्धि जिसकी व्याख्या न कर सके उसी का नाम भूत है।

कोई भी घटना को 'भुतही' कह देने से कोई उसकी गहराई तक नहीं जाता। यही तो इसमे सुविधा है।'

इस भुतही घटना के कारण लड़कों को जीभ की जकड़न दूर होने में कई दिन लग गये।

लेकिन निडर लड़का विभू, कुछ ही दिन बाद लड़कों की महफिल में घोषित कर बैठा,—'भूत नहीं तो हाथी। वह मरघिल्ली बुढ़िया स्वयं ही कउआ भर मिर्च का चूरा डाल कर, प्रेम से अचार खिलाने आई थी !....हम लोग बासी या टट्टी का कपड़ा पहने रहने पर भी अचार चुरा कर खाते हैं, नकिया कर बात कर सकते हैं, यह सब समझ गई है वह....'

मरघिल्ली बुढ़िया सुन कर प्रभु नाम का लड़का चौंक पड़ा। क्योंकि इस दल में उस मरघिल्ली बुढ़िया का अपना पोता भी उपस्थित था। लेकिन देखने में आया कि इस बात से वह जरा भी अपमानित नहीं हुआ। बल्कि बड़े सहज भाव से बोला—'आश्चर्य की कोई बात नहीं है ! बुढ़िया दादी बहुत गुस्सेबाज हैं।'

'गुस्सेबाज ? अरे डेंजरस लेडी है।'

विभू बोला, 'सुबह मैंने सुना, उस कमरे में सँझले नाना कह रहे थे, सँझली बहू, तुमने काम यह ठीक नहीं किया। बच्चे थे। दिया भी था तो सोच-समझ कर डोज देना चाहिये था।'

सँझली नानी बोलीं—'जो किया है ठीक किया है। तुम नखरे दिखा कर पोतों से मेरा बचपन का नाम बताने क्यों गये ? अब तुम्हीं समझो।'

किसी के लिए समझने को कुछ बचा नहीं। लेकिन यह बात तो कह डालने की नहीं...फिर तो सारी 'भुतही घटना' का रहस्य ही खुल जायेगा।

उसके बाद से दोनों लड़के ही अचार के प्रति उदासीन हो गये। इधर स्कूल

जाने की इच्छा भी नहीं होती। खेलते-फिरने के अलावा करने को कुछ नहीं रहा।

उस बार दोनों लड़कों के साथ उनकी माँ भी आई थीं। बीच-बीच में कहतीं, 'किताबें लेकर मामा लोगों के पास जा कर जरा बैठो न ! इसके बाद तो 'अ आ इ ई' तक भूल जाओगे।'

भाइयों से भी कहतीं, 'भइया, लड़के तो सचमुच ही जगाई-माधाई बने जा रहे हैं। सारे दिन शैतानी, और शाम होते ही नानी के कमरे में घुस कर 'कहानी-कहानी' कह कर हल्ला करता। इनका क्या होगा?'

सँझले मामा हँस कर कहते, 'होगा क्या ! बेसहारे का सहारा श्री चैतन्य ढोल-करताल वजा कर आएँगे। दोनों जगाई-माधाई को चैतन्य दान कर उद्धार कर जाएँगे।'

यह चैतन्य जो प्रभु-विभू के पिता चैतन्यचरण हैं, यह समझने की क्षमता उनमें थी और ढोल-करताल बजाने के अर्थ पिटाई, यह भी समझने में कोई दिक्कत नहीं होती। अतएव सँझले मामा पर बेहद गुस्सा आया।

छोटे मामा भी एक और ही चीज थे। बीच-बीच में आवाज लगाते—'कहाँ हैं ! ला तो अपनी कॉपी-किताबें।' हालांकि यह सब उत्साह क्षणिक ही था। थोड़ी देर बाद कहते, 'ए कमली, पढ़ाऊँ क्या ! तेरे लड़कों के सिर में तो सिर्फ गोबर भरा है।'

कहते, अनायस ही कह जाते। क्योंकि कटोरदान का ढक्कन खोल कर देखने की तरह सिर का ढक्कन तो खोला नहीं जा सकता है—कौन देख सकता है उसमें सचमुच क्या है ! घी है या गोबर ?

माँ मुँह फुला कर कहतीं, 'लेकिन ये दोनों शैतानी बुद्धि में तो किसी माने में कम नहीं है, छोटे भइया !'

छोटे मामा दिल खोल कर हँसते हुए कहते, 'वही तो मजे की बात है। वहीं पर तो निखालिस गाय का घी भरा पड़ा है। लेकिन लिखने-पढ़ने वाले खाने में ! वहीं —जो कहा, सिर्फ गोबर।'

पीठ-पीछे प्रभु-विभू कहते, 'छोटे मामा की चालाकी देखी ! हमें पढ़ाने के डर से हमारे सिर में सिर्फ गोबर भरा है, कह कर बात टाल गये।'

गोबर नहीं है, यह बात वे स्वयं भी अच्छी तरह से जानते हैं। वरना इस उम्र में यह बात कैसे समझते कि, मँझले नाना बार-बार अपना वसीयत क्यों बदल रहे हैं, जिस पर जब गुस्सा होते, मँझले नाना तभी उसे एक भी कौड़ी न देने का दृढ संकल्प की घोषणा कर नया वसीयत लिखने बैठ जाते।

एक बार बडी लड़की पिता की बीमारी की खबर पाकर भी ससुराल से नहीं आई, बस ! हो गया। दूसरे ही दिन मँझले नाना वसीयत बदलने बैठ गये। बड़ी लडकी के हिस्से से पाँच हजार रुपया काट दिया। फिर एक बार छोटा लड़का मित्रों के साथ नौटंकी देखने गया और रात को नहीं लौटा। सुबह मँझले नाना ने खूब डाँटा तब वह कह बैठा, 'सारे शहर के लोग तो सारी रात मैदान में पडे थे। देखने गये होते तो

समझते । उनका देखना क्या दोष नहीं होता है !'

अतएव हो गया ।

फिर वसीयत बदली गई ।

इसी रीति से चलते थे मँझले नाना । कभी लड़कों को बिल्कुल वंचित कर यथा-सर्वस्व भतीजों को दे डालते तो कभी भतीजों का कचकचा कर नाम कट जाता।

अथच, यही मँझले नाना की जब मृत्यु हुई, देखने में आया कि उनकी वसीयत यूँ ही पड़ी है । कचहरी में ले जा कर पक्की तक नहीं हुई है ।....इसके अर्थ हुए वे कानों पर हाथ रखे बैठे थे, उन्होंने वह 'घंटी' सुननी नहीं चाही थी।

प्रभुचरण भी नहीं चाहते हैं ।

अन्यमनस्क रहना चाहते हैं ।

लेकिन प्रभुचरण अन्यमनस्क भले ही रहें, अन्य लोग अन्यमनस्क नहीं थे । इसी-लिए अचानक एक दिन छोटा लड़का अपना शौकीन कैमरा ले कर आ धमका, 'पिताजी, जरा ठीक से बैठिये तो, एक तस्वीर खींचूंगा ।'

कहते हुए खुद ही पिता के कन्धों पर भाई के ससुराल से मिला, चौड़ा नक्शेदार किनारी वाला शाल लपेट तस्वीर खींची ।

प्रभुचरण बोले, 'अचानक तस्वीर का शौक क्यों ?'

लड़का बोला, 'यूँ ही । बैठे हो, खिड़की से अच्छी रोशनी आ रही है । देख कर लगा—'

प्रभुचरण हँस कर बोले, 'असली बात बोलो न बाबा, श्राद्ध सभा में 'बाप' कह कर परिचय देने लायक एक तस्वीर चाहिये....इसीलिये वक्त रहते सब तैयार करने मे हर्ज क्या है !'

लड़का तस्वीर खीच चुका था, अतएव गुस्सा दिखाता हुआ कैमरा ले कर चला गया । कहता गया, 'पिताजी भी ऐसी सब बातें करते हैं, जिनका कोई अर्थ नहीं होता है ।'

प्रभुचरण मन ही मन हँसे ।

बूढ़ों को मूर्ख समझना यौवन का धर्म है ।

प्रभुचरण भी क्या यौवनकाल में वृद्धों को मूर्ख नहीं समझते थे ?

प्रभुचरण का दामाद भी बुड्ढे को मूर्ख समझ कर ही टेपरेकार्डर पर 'आवाज़' टेप करने का प्रस्ताव कर बैठा ।

ऑफिस के काम से कुछ महीने कैनेडा घूमने जा कर दामाद काफी स्मार्ट हो गया है । बातचीत से लगेगा बंगला भाषा ठीक से आती नहीं है । बात करते-करते बीच में ऐसे रुक जायेगा और अधूरे वाक्य बोलेगा—लगेगा भाषा ही भूलता जा रहा है । उचित शब्द न ढूंढ पाने की वजह से बातों का सिलसिला टूटा जा रहा है ।....

खैर, दामाद वहाँ से इधर-उधर के बहुत से सामान लाया है । उसी के साथ लाया है एक टेपरेकार्डर ।

उसी को एक दिन ले आया।

घिसे-घिसे अबंगाली ढंग से बोला, 'आज इस घर के सभी लोगों की आवाजें टेप करूँगा। आपकी पहले, यानी आप से शुरू। आप तो घर के हेड हैं।'

प्रभुचरण मन ही मन समझ गये, असली टारगेट वही हैं।...यह भी भविष्य के लिए इकट्ठा किया जा रहा है। उसी आने वाली श्राद्ध-सभा का स्मरण कर के यह तैयारी।....

समारोह तो करना ही पड़ेगा। उसी समारोह-सभा में पाँच आदमी के सामने परलोकवासी के गले की आवाज जब बज उठेगी, तब दृश्य कितना गौरवमय हो उठेगा! सभी अनुभव करेंगे, प्रभुचरण इस गृहस्थी में कितने प्रिय थे। कितने क़ीमती थे।

लेकिन समझ लेने पर भी हर बात कही तो नहीं जा सकती है। इसीलिए हँस कर बोले, 'अरे दुर! मेरी आवाज़ टेप करके क्या होगा? बुढ़ापे की फटी आवाज़। बच्चों की आवाज़ टेप करो न!'

दामाद मानने को तैयार नहीं, उसके साथ लड़की भी बोली, 'ओ पिताजी, तुम तो हर बात पर एतराज़ करते हो। यह तुम्हारी आदत बन गई है। जो भी करने चलो उसी में नहीं, नहीं।'

समझ गये, दोनों ही अस्त्र-सज्जा कर के आए हैं, छोड़ेंगे नहीं।

फिर भी बोले—'बेकार-बेकार क्या कहूँगा, यह बता दे!'

'यह मैं क्या बताऊँ! तुम्हारी जो मर्ज़ी। जो इच्छा हो। अभी तो बबुआ ने कितना टेप करवाया है। उसकी अच्छी आदत बन गई है। आ तो बबुआ, ज़रा अपने नाना का डर तो कम कर दे।'

बबुआ माँ की तरफ नज़र डाले बगैर बोला, 'मेरी इस वक्त बोलने की इच्छा नहीं है। तुम लोगों का सिर्फ टेप और टेप।'

अतएव माँ ने खुशामद का रास्ता पकड़ा, 'बबुआ कैसा गुड बॉय है। जैसे ही कुछ कहती हूँ बात मानता है। उस दिन कितना बढ़िया 'गॉड मेड दी' टेप करवाया था।'

'मैं पोयट्री नहीं कहूँगा।'

'ठीक है, तेरी जो इच्छा हो वही बोल।'

'मुझे कुछ याद नहीं।'

बबुआ की माँ और भी नरम हुई—'ए माँ, तू तो नाना की तरह कर रहा है। ठीक है, अभी रास्ते में कार पर आते वक्त जो बोल रहा था वही बोल।'

बबुआ ने अभी-अभी पढ़ना शुरू किया है, इसीलिए आँखों के आगे जो चीज आती है उसी को उच्चारण सहित पढ़ने लगता है।

रास्ते की दीवालों पर जो लटका रहेगा वह पढ़ेगा, कंठस्थ करेगा। अब सहसा मातृ-आज्ञा पा कर चिल्ला उठा, 'कार पर आते-आते मैं कह थोड़े ही रहा था, मैं तो पढ़ रहा था—'

'ठीक है, वही बता....'

बबुआ के पिता तभी से उसके मुँह के सामने माउथपीस लिए खड़े थे। बबुआ पाँव पटकता उसके सामने जा कर चिल्ला उठा, 'छोटा परिवार ही सुखी परिवार है। छोटा परिवार ही सुखी परिवार है। अब हुआ!'

प्रभुचरण कैसी तो एक अद्भुत दृष्टि से लड़की, दामाद और उस शिशु को देखते रहे। उस दृष्टि से क्या स्पष्ट हो उठा? विस्मय? क्षोभ? कौतुक? व्यंग? लज्जा? या हताशा?

थोड़ी देर के लिए। धीरे-धीरे वह दृष्टि निस्तेज हो गई।

और जब उनके मुँह के सामने यन्त्र किया गया, तब, एक मिनट पहले तक स्वप्न में भी जो बात कहने की नहीं थी, वही कहने लगे, 'मैं तुम लोगों के मन माफिक बात नहीं कर सकूँगा।...सुखी गृहस्थी के लिए, गृहस्थी को काट-छाँट कर, फेंक-बिखेर कर 'छोटा' कर लेना चाहिये, यह बात हमारे युग में कोई विश्वास ही नहीं करता था।.... हम लोगों ने बचपन में परदेश में रहने वालों के अतिरिक्त किसी अन्य की गृहस्थी छोटी नहीं देखी थी। उस पर भी बच्चे कुछ कम नहीं, ढेर सारे भाई-बहन तो रहते ही थे। हम लोग कम थे, इसीलिए अपने को वंचित समझा करते थे।...एक घर में बहुत सारे लोग रहेंगे, यही तो स्वाभाविक था।

'जो निःसन्तान थे, उनकी गृहस्थी में भी नाते-रिश्तेदार, आश्रित-अभ्यागत, अनाहूत-अवाञ्छित सभी तरह के लोग लदे रहते थे। और रहते भी थे पारिवारिक मर्यादा के साथ। हालांकि जो रहते थे वे भी....'

अचानक प्रभुचरण रुक गये।

मुँह हटाते हुए हँस कर बोले, 'देख रहे हो, बुढ़ापे की दशा! इधर-उधर की बेकार बातें कर के क़ीमती टेप का काफी हिस्सा बरबाद कर दिया...'

प्रभुचरण को पता तक नहीं चल पाया कि उनकी बेकार की बातों के बीच, दामाद ने भौंहें सिकोड़ते हुए कन्धे हिला कर, प्रभुचरण के मुँह के सामने पकड़े यन्त्र का बटन बन्द कर रखा था।

× × ×

कितनी देर से अन्यमनस्क थे प्रभुचरण, कौन जाने? हठात् चौंकना पड़ा। बहुत सारे कण्ठों से हास्यध्वनि का कोलाहल सुन कर।

स्पष्ट था वे सब खाने की मेज पर जम कर बैठे हैं। लड़की, दामाद, लड़के और बहूरानी और हो सकता है कोई और भी। बहूरानी का भाई-वाई कोई या कोई परम मित्र। रसोईघर में अच्छा कुछ बनते ही जिसकी याद आती है या जिसे छोड़ कर कुछ किया नहीं जा सकता है।

वैसे भी टुलू और सरित के आने की सम्भावना रहने पर ही रसोईघर में कुछ न

कुछ समारोह का आयोजन होता ही है। बहूरानी स्वयं-स्वेच्छा से 'स्पेशल डिश' बनाती, अपनी पसन्द और विद्या के अनुसार। लड़के भी आडम्बर करने को तैयार होते। विशेषकर ध्रुव। सरित आ रहा है मालूम होते ही उसने मुर्गी लाने की व्यवस्था पक्की कर रखी है।....हफ्ते में एक ही दिन तो वे लोग आते हैं, या तो शनिवार या इतवार को अपने प्रोग्राम के अनुसार आते हैं।

यह तो प्रभुचरण के बहन-बहनोई का जमाना नहीं है कि निमन्त्रण करना हो तो एक दिन कहने जाओ, एक दिन लाने जाओ। इसके अतिरिक्त कहना भी सीधे एकदम उन्हीं को नहीं—ऊपर वालों के आगे अर्जी पेश करनी पड़ती।

बहनोई के माँ-बाप के पास जा कर उनकी चरण वन्दनान्त कुण्ठित स्वरों में प्रभुचरण को निवेदन करना पड़ता—अपने माँ-बाप की एकान्त बिनतीपूर्ण वाणी—'बहुत दिनों से देखा नहीं है, इसीलिए कह रहे थे—'

इस युग में लड़की को बुलाने के लिए ऐसे अभिभावकों के चरणों में अर्जी पेश करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। इच्छा और सुविधा होते ही, लड़की स्वयं चली आएगी। पति को या पति-पुत्र दोनों को, वैनिटी बैग में भर कर। अतएव 'बहुत दिनों से अदर्शन' वाली अवस्था आ ही नहीं पाती। हालाँकि जो विदेश में रहते हैं उनकी बात और है। जो लोग सहज ही आने-जाने के दायरे के बीच होते है वे ऐसी घटना घटने क्यों देंगे? छुट्टी के दिनों में, घूमने जाने के लिए 'माँ के पास' 'पिता का घर', या 'उस घर की तुलना में कोई और जगह है क्या? क्या है? अपनी नाव खींच कर ले गए और निश्चिन्त दरिया में बहा देने के बाद स्वयं हवा में तैरते फिरने का मौका लड़की और कहाँ पा सकती है? और दामाद भी कहाँ जाएँ पत्नी को छोड़ कर? इस युग में कहीं-कहीं पर हालांकि, विवाह-बन्धन छिन्न-भिन्न हो कर लटकते देखा गया है, लेकिन 'ग्रन्थिबन्धन' शब्द बड़ा सार्थक है। सदा सर्वदा गाँठ बँधी ही रहती है।

पुरुष अकेले मित्रों के घर गए हों, या पत्नियाँ अकेली बाप के घर गई हों, ऐसे दृश्य विरल ही दिखाई पड़ेंगे। टूलू तो अपने मियाँ के साथ बाल कटवाने सेलून तक जाती है। चूँकि ऑफिस में भी साथ जाना सम्भव नहीं इसीलिए तब तक के लिए धैर्य धारण करना पड़ता है।....आहा, कितने कष्ट से बीते थे बेचारी के वे कई महीने जब सरित को कैनेडा जाना पड़ा था। निहायत ही 'चमार' ऑफिस ने 'सपत्नीक' जाने का खर्च नहीं दिया। इसीलिए रह जाना पड़ा। लेकिन हाँ, सरित के लौटने के बाद अब यह नहीं लग रहा है कि टूलू नहीं गई थी।....वहाँ के रास्ते, नियम-कानून, विज्ञान की उन्नति, सामाजिक रीतिनीति, मानसिक अग्रसरता आदि के मामले में टूलू का रोल अब प्रत्यक्षदर्शी का है। ऐसी बारीकी से किस्से सुनाती और इस देश में, हर तरह की दैन्यता पर समालोचना करती घूम रही है कि देख कर लगेगा कि शायद सरित ही बीच-बीच में धोखा खा जा रहा है।....कितनी बार तो सरित को रोकते हुए टूलू को कहते सुना गया है, 'तुम रुको तो—मुझे कहने दो।'

अतएव समझना यह चाहिए कि टूलू का शरीर 'भारतवर्ष' नामक देश में पड़े

रहने पर भी मन-प्राण, आत्म-चेतना सब कुछ, उसी तरह गठबन्धन बाँधे पहुँच गया है उसी स्वर्गीय देश में।

यह बात छोड़ो, यह जब-तब टूलू की आने की स्वाधीनता, यह उच्छ्वासित वाक्य-छटा, ऐसे 'सरित साहब' जैसे मियाँ को भी, प्रभुचरण की भाषा में 'तुच्छ' जताते हुए बात करना, यह सब प्रभुचरण को अच्छा ही लगता है। लड़की वनशोभा भी बड़ी लाड़ली थी। फिर भी उस लाड़ के पीछे एक-एक बार दीर्घश्वास निकल ही जाती है।....वनशोभा की तस्वीर की तरफ देख कर मन ही मन कहते, 'देख रही हो अपनी टूलू की चमक-दमक ? ऐसा लग रहा है जैसे पृथ्वी उसकी मुट्ठी में आ गई है। पहले कभी न समझ सका था, अब समझ रहा हूँ, तुम बेचारी और तुम्हारे समय की लड़कियाँ कितनी वंचित रहीं। फिर भी यह अच्छाई थी कि तुम लोग स्वयं भी उसे न पाने को महसूस नहीं कर पाई थीं। जिन्दा रहतीं तो शायद तुम्हीं लड़की का यह बढ़-चढ़ कर बोलना, नखरेबाजी करना पसन्द न करतीं।...अपने बड़े लड़के की बहू को तो तुम देख गई थीं, समालोचना करती थीं न ? कहती थीं, लड़कियों को इतनी स्वाधीनता शोभा नहीं देती है।

फिर भी देखा ही कितना था ?

मेरे सृष्टिकर्ता ने मुझे बहुत लम्बी उम्र दी है, शायद बहुत कुछ देखने के लिए। बैठे-बैठे देख रहा हूँ।....सिर्फ पता नहीं चल रहा है कि अचानक कब, मंच से फिसल कर नीचे दर्शकों के आसन में आ बैठा हूँ।

रमेश उनके कॉलेज-जीवन के दोस्त थे। उस मित्रता को तभी से जिला रखा हो—यह बात नहीं। हुआ यह कि रमेश सरकार ही एक दिन अकस्मात् आविष्कार कर बैठे थे।

मोड़ वाली स्टेशनरी की दुकान 'दैनन्दिन' में प्रभुचरण ब्लेड खरीदने के लिए घुसे थे, अचानक बगल से एक खरीददार पूछ बैठे, 'नाम पूछूँ तो बुरा तो नहीं मानेंगे ?'

प्रभुचरण चौंके। मुड़ कर देखा। आँखों के सामने जो चेहरा था, झट से वह चेहरा परिचित नहीं लगा, फिर भी बोले—'क्यों भला ?'

'कहने में कोई एतराज है क्या ?'

'नहीं, नहीं, एतराज की क्या बात है ? मेरा नाम....'

वह महाशय हाथ उठा कर रोकते हुए बोले, 'अच्छा, मैं ही बता रहा हूँ। खूब, अगर गलती नहीं कर रहा हूँ तो—प्रभुचरण। प्रभुचरण गांगुली। गलत कहा है ?'

प्रभुचरण चकित होकर बोले—'नहीं-नहीं, गलती बिल्कुल नहीं हुई है, लेकिन आपको तो ठीक....'

'अरे भई, रमेश सरकार को भूल गए हो ? बंगवासी कालेज में एक साथ पढ़ा है, बादुड़बागान के एक ही मेस में रह चुके हैं....'

'बस-बस....अब कहने की जरूरत नहीं।'

प्रभुचरण अपने भुलक्कड़पन की त्रुटि को छिपाने के लिए कुछ ज्यादा ही हल्ला मचाते हुए एकदम से 'तू' कह कर सम्बोधित कर बैठे—'सो पहचानूँ किसे, बताओ? इतना बुड्ढा हो बैठा है तू....'

रमेश सरकार जरा हँस कर बोले, 'तेरे घर में शायद शीशा नहीं है?'

दोनों हँस पड़े। खूब जोर की हँसी। जो छोकरा ब्लेड बढ़ाए खड़ा था, वह आश्चर्य से देख रहा था। हँसते ही प्रभुचरण अचानक उदास हो गए।....अभी कुछ ही दिन हुए वनशोभा की मृत्यु हुई थी। तब से प्रभुचरण के कण्ठ से उच्चहास्य किसी ने सुना नहीं था। इसीलिए आवाज अपने ही कानों में खट् से लगी।

लेकिन ऐसे ही समय में पुराने मित्र को एकाएक पाकर प्रभुचरण जैसे बेहाल हो गए थे। प्रौढावस्था में स्त्री-वियोग में जरा मुश्किल भी रहती है। यौवनावस्था की तरह 'शोक-विरह-शून्यता' जैसी चीजों को लोगों के सामने प्रकट करते नहीं बनता। नितान्त बुढापा की तरह असहाय अवस्था भी प्रकाशित नहीं की जा सकती—कोशिश करके 'स्वाभाविक' रहना पड़ता है।

यह कोशिश करने का 'कष्ट' भी कम नहीं। वह 'कष्ट' सहन करने पर भी, पहले की तरह खुल कर फिर नहीं हँस सके थे, इतने दिनों तक। भीतर ही भीतर न जाने कैसा एक सकोच, एक अपराध-बोध वेध रहा था।

अचानक इसीलिए हँसते ही मुरझा से गए।

हालांकि रमेश सरकार की नजर इस परिवर्तन पर नहीं गई। अपनी खुशी से ओत-प्रोत वे रास्ते पर आते ही, सारी बातें बताने लग गए। रिटायर करके इस पड़ोस में कुछ ही दिनों हुए एक मकान बनवाया है। दो लड़कियाँ—बहुत दिन पहले शादी हो चुकी है।....चार-पाँच लड़के हैं—एक-एक करके इस लाइन उस लाइन में लग गए है। बडे भाई है। शादी-ब्याह नहीं किया है, अतएव छोटे भाई के अलावा और जाएँगे कहाँ?

पर उनके रहने की वजह से रमेश सरकार कृतार्थ हैं। बड़बड़ाते चले, 'है, तभी निश्चिन्त हूँ, जैसे पहाड़ की आड़ में रहता हूँ। उम्र के लिहाज से यूँ तो ऊपर-नीचे के ही हैं, लेकिन यूँ लगता है जैसे बरगद की साया में रहता हूँ। मुझे तो देख रहा है, बाहर से ही बूढ़ा हुआ हूँ, भीतर से वैसा का वैसा ही हूँ।'

प्रभुचरण ने तब हँस कर कहा था—'वह तो देख ही रहा हूँ।'

फिर हा-हा-हा-हा हँसते हुए रमेश सरकार प्रभुचरण को खीच कर अपने घर ले गए थे। बड़े भाई से परिचय करवाया। और प्रथम दर्शन में ही प्रभुचरण हरीश सरकार के प्रति आकृष्ट हो गए।

आकर्षण का प्रथम कारण था दोनों भाइयों के बीच प्रेम का सम्बन्ध। ऐसे वयस्क दो भाइयों के बीच ऐसी गहरी प्रीत, सखापन, सहज मैत्री—इस युग में कहीं देखी है, प्रभुचरण को याद नहीं। उस समय उस युग में नानाओं के बीच यह मित्रता और प्रीति देखी थी।

इस युग में, बूढ़े होते दो-तीन भाइयों का एक साथ रहना ही दुर्लभ दृश्य है। अगर रहते भी हैं—यानी बाप के बनाए मकान की वजह से अगर रहने के लिए बाध्य होते हैं तो दिन-दिन भर किसी से बात करना तो दूर, मुलाकात होती है या नहीं, उसमें तक सन्देह है। अपने-अपने धन्धे में सब रहते, अपनी अलग रसोई में खाते।

रमेश के दोनों भाइयों का सम्बन्ध बड़ा ही मनोरम था। बड़ा ही मधुर। यह माधुर्य ही शायद प्रभुचरण को जब-तब उनके यहाँ जाने की प्रेरणा प्रदान करता।... अब तो जाने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

जिस दिन से डॉक्टर के सूक्ष्म यन्त्र में, प्रभुचरण नामक वृद्ध व्यक्ति की 'हृदय दुर्बलता' की खबर, पकड़ी गई है—उसी दिन से है यह बंदी दशा।—लेकिन पहले जाते थे। कम उम्र वालों की तरह मित्र के भाई को 'हरिशदा' सम्बोधित न कर पाते.... बिना सम्बोधन के ही काम चला लेते। कभी-कभार सिर्फ 'भइया'। पर हरीश सरकार बड़े सप्रतिभ थे। पहुँचते ही सस्नेह हँस कर कहते, 'अरे प्रभुचरण ! आओ, आओ।... अरे कौन है ? छोटे बाबू को जरा खबर कर दे, बन्धु बाबू आये हैं।'

हाथ में लिया अखबार रखते हुए कहते, 'आओ भइया, जम कर गपशप की जाए। रमेश बाबू तो देख रहा हूँ सुबह से गृहणी की खिदमत में जुटे हैं। मैं बैठा-बैठा अखबार चबा रहा हूँ। अरे ओ....जरा चाय का पानी रखने के लिए कह दे।'

भाई-भौजाई के लिए इस तरह की बात वे बेहिचक कह देते। प्रभुचरण अत्यन्त व्स्मत होकर कहते, 'रहने दीजिए। हो सकता है, काम में फँसे हों। मैं फिर किसी दिन सही....'

हरिश्चन्द्र प्रसन्न होकर बोले, 'नहीं-नहीं, तुम आए हो—यह तो रमेश के लिए भाग आने का बहाना हो जाएगा...'

ज्यादातर देखा जाता कि दोनों पके बालों वाले भाई—लूडो का बोर्ड बिछा कर बड़ी एकाग्रता से खेलने में व्यस्त हैं।

लूडो !

प्रभुचरण ने हँस कर कहा था, 'अरे, आप लोग लूडो खेल रहे हैं !'

हरीश सरकार उदास स्वरों में बोले, 'तो क्या हुआ ? उद्देश्य तो है खेलना.... वह तो सिद्ध हो रहा है न ? यह बच्चों का खेल है, ऐसा मैं नहीं मानता। मन लगा कर खेलो तो इसी में चौपड़ खेलने का रस मिल सकता है तुम्हें। असली बात यह है कि अगर किसी भी खेल को रोज खेलो तो उसी का नशा चढ़ जाता है। मैंने अपने ताऊजी और छोटे बाबा को देखा था, स्लेट पर कटकुट खेला करते थे। उसी खेल में क्या हुआ....कैसी खुशी ? और एक निश्चित समय में स्लेट लेकर बैठ जाने के लिए किस कदर छटपटाहट। इस संसार में लगातार रस की धारा बह रही है, ग्रहण करने की क्षमता होनी चाहिए।...यह देखो न, यह जो कच्ची गोट पकती है और पक्की गोट कट जाती है, इसमें क्या कुछ कम रहस्य है ?'

× × ×

और एक बार चौंक उठे प्रभुचरण—खाने की मेज से आती वैसी ही ज़ोरों से हँसने की आवाज़ सुन कर।

प्रभुचरण ने अनुमान लगाया, किसी ने एक 'जोक' किया होगा।

खाने की मेज पर बैठ कर रह-रह कर हँस उठना, यह है आधुनिकता। अतएव मेज के आस-पास बैठे हर सदस्य की जी जान से यही कोशिश रहती है कि अपनी वाक्य चातुरी का प्रदर्शन करते हुए कौन कितनी हँसी की खुराक जुटा सकता है।

पहले इस मेज के एक तरफ प्रभुचरण की भी एक कुर्सी रहती थी। विशेष कुर्सी। अदृश्य हाथों से वनशोभा ही प्रभुचरण के व्यवहार की हर चीज को विशेषता की छाप लगाने की कोशिश करती थीं। प्रभुचरण की कुर्सी स्पेशल, खाने की थाली, गिलास, प्लेट, कप आदि सभी कुछ स्पेशल। ज़रा महँगी, ज़रा अधिक सुन्दर। प्रभुचरण पूछते तो कहतीं, 'यह मैंने अपनी मां से सीखा है। मां कहती थीं, घर के स्वामी का सभी कुछ विशेष होना चाहिये। इसी में गृहस्थी का सौन्दर्य है जैसे भगवान् के भोग पर सन्देश। गृहस्वामी को कभी भी हर किसी साधारण वर्ग में नहीं डालना चाहिये।.... इसके अतिरिक्त जिस आदमी ने सारी उम्र मेहनत करके गृहस्थी खड़ी की, उसका प्राप्य कुछ नहीं है क्या?'

प्रभुचरण हँस कर पूछते—'और गृहस्वामिनी का?'

'गृहणी का हिसाब अलग है', वनशोभा हँसने लगतीं, 'गृहणी का धर्म है हर किसी की सेवा-यत्न करना, देने-दिलाने के बाद जो जुटे....'

'उसका कुछ प्राप्य नहीं?'

वनशोभा कहतीं, 'हर किसी के लिए कर पाना ही उसका परम पाना है।'

और सबके पीठ पीछे कहतीं, 'मैं जो करती हूँ उस पर इस तरह से 'नहीं', 'नहीं', 'क्यों', 'क्यों', किसलिये करते हो? मत किया करो। यह तो लड़के-बहू की भविष्य की शिक्षा है। मैं जब नहीं रहूँगी, उन्हें पता रहेगा कि घर के मालिक के लिए श्रेष्ठ हिस्सा रखना ही नियम है।'

'तुम जब नहीं रहोगी? और मालिक चिरकाल रहेंगे? उम्र किसकी कितनी है?'

'उम्र की बात छोड़ो।'

वनशोभा ज़ोर देकर बोली, 'सभी ज्योतिषियों ने कहा है मैं सधवा जाऊँगी।'

प्रभुचरण कभी भी ज्योतिष-ज्योतिष में विश्वास नहीं करते थे, लेकिन देखते रह गए जब वनशोभा अपने विश्वास की पराकाष्ठा दिखा कर चली गईं।....किन्तु उस 'भविष्य की शिक्षा' का क्या हुआ? प्रभुचरण की समझ में न आता। बर्तन, कप, ग्लास तो नित्य ही नाना प्रकार के लगते। हाँ, लेकिन, ज़रा नक्काशी की हुई ऊँचे-पीठ वाली कुर्सी पर हमेशा ही प्रभुचरण बैठे थे....*जब तक उस खाने की मेज़ के किनारे बैठ सके थे।*

उस समय में वे लोग इसी तरह हँसा करते थे। प्रभुचरण को टारगेट बना कर हँसते थे। प्रभुचरण की आदतें, उनकी ज़िद्द, उनकी ग्राम्यता इत्यादि पर कौतुक करने

में उन्हें मजा आता ।....उससे कोई नुकसान नहीं था, प्रभुचरण चुपचाप उपभोग ही करते थे ।

यह सब बन्द हो गया जिस दिन 'हृदय संक्रान्त' घटना घटी । प्रभुचरण को अब अधिकार न रहा उस सुख-स्वर्ग में जा बैठने का ।....प्रभुचरण को यह क्षति परम क्षति समान लगती ।....कम से कम रात का खाना सबके साथ बैठ कर खाना प्रभुचरण के लिए आनन्द का विषय था ।

उनकी हँसी की आवाज से वही तस्वीर याद आ जाती । अब बिस्तर के किनारे रखी मेज पर ही प्रभुचरण का सुबह से रात तक का खाना-पीना सम्पन्न होता है ।

शुरू-शुरू में प्रभुचरण आतर स्वरों में कहते थे—'डॉक्टर ने जब चल कर बाथरूम तक जाना एलाओ किया है, तब कमरे से निकल कर उस बारामदे में बैठने से क्या महाभारत अशुद्ध हो जाएगा ? जो कुछ खाऊँगा, यह मेज पर बैठ कर ही क्यों न खाऊँ ?'

लेकिन प्रभुचरण के हृदय-यन्त्र के अचानक जवाब देने की आशंका से लड़के हर समय तटस्थ रहते । *लड़कों ने ऐसा प्रबल उत्तर दिया कि फिर कभी कहने की* इच्छा ही नहीं हुई । बात करने की भी इच्छा जाती रही ।

सिर्फ नीता ने जब कहा था, 'हम लोग मेज पर बैठ कर तरह-तरह का खाना 'रेलिश' करके खायेंगे और आप बगल में बैठ कर बॉइल्ड स्टू और एक टुकड़ा टोस्ट खायेंगे, ऐसा कहीं हो सकता है ?' तब क्षुब्ध हँसी हँस कर प्रभुचरण ने कहा था, 'मैं बच्चा नहीं हूँ बहूरानी ।'

बच्चे नहीं हैं फिर भी बच्चों की ही तरह, अभिमानवश, मन ही मन प्रतिज्ञा कर बैठे थे—*'ठीक है, अपने पैरों से चल कर अब कभी इस कमरे के बाहर नहीं* निकलूँगा । एकदम तुम लोगों के कन्धे पर चढ़ कर ही निकलूँगा ।'

इसीलिए अब प्रभुचरण को अपने जिद्दीपन की आलोचना सुनने को मिलती.... पिता जी की यह एक अद्भुत नर्वसनेस है....जैसे जिद की तरह । डॉक्टर ने कहा है, अब जरा चलना-फिरना जरूरी है । लेकिन एक क़दम नहीं चलेंगे ।

अब प्रभुचरण समालोचनाओं पर ध्यान नहीं देते हैं । समझ लिया है घर वालों का यह एक मुद्रा दोष है ।

लेकिन अभी भी, खाने के कमरे से आती हँसी की आवाज उतावला करती । इच्छा होती जरा पास जा कर बैठें । देखने की इच्छा होती, क्या आता है, क्या पकाया जाता है । अभी भी खाद्य सामग्रियाँ पहले सी देखने में होती हैं या नहीं ।

आश्चर्य है । उस जगह से च्युत हो कर प्रभुचरण के मन में जो भयानक क्षति बोध है, उन लोगों के मन पर क्या उसकी छाया तक पड़ी है ? उस स्पेशल कुर्सी को

खाली पड़ी देख कर क्या उनका मन दुखी नहीं होता है ?

लेकिन कुर्सी खाली पड़ी है यह प्रभुचरण क्या जानें ? कई बार मन में आता कि पूछें लेकिन शर्म के मारे पूछ न पाते। नौकर को चुपचाप बुला कर पूछने की इच्छा का भी दमन कर लिया है। कौन जाने इस ज़रा से कौतूहल को मिटाने में कहीं राई का पहाड़ न बन जाए।

फिर भी एक दिन बात घुमा कर, पाँच साल के पोते राजा को बुला कर बोले, 'मैं तो आज-कल रोज ही बिस्तर पर बैठ कर खाना खाता हूँ, तुझे मैंने अपनी खाने के कमरे की कुर्सी दे दी, तू बैठना। बेकार ही में खाली क्यों पड़ी रहे ?'

इस दानपत्र की वाणी उच्चारित होने के माध्यम से बात पकड़ में आ सकती थी कि कुर्सी खाली है या नहीं। लेकिन राजा का उत्तर उस तरफ गया तक नहीं। राजा अपनी विशेष भंगिमा से मुँह उलट कर बोल उठा, 'बाबा जी, आपके पास ज़रा भी बुद्धि नहीं है। मैं आप लोगों की उतनी ऊँची मेज तक पहुँचूंगा ? मेरी तो छोटी कुर्सी और छोटी मेज अलग है।'

टूलू जिस दिन आती है उस दिन घर की रौनक बढ़ जाती है। यूँ दोनों भाई साथ खाना खाने का नियम न मानने पर भी उस दिन मानते हैं। फिर भी अच्छा है, प्रभुचरण ने सोचा, बाप की बहन के प्रति जितनी भी नापसन्दगी उनकी क्यों न हो, अपनी बहन के प्रति यह बात नहीं है। पर—कभी-कभी एक बात मन में आने पर प्रभुचरण अपने को संभाल लेते और सोचते, बूढ़ा होने पर मन बड़ा कुटिल हो जाता है। वरना उनका बहन के प्रति 'प्रेमभाव' की बात दिमाग में आते ही, सरित के पिता का महल सा घर, उसकी आँखों को चकाचौंध करने वाली गाड़ी और सरित का कन्धे नचा कर बात करने की भंगिमा के साथ मेल खाते कपड़े-लत्ते आँखों के सामने क्यों तैरने लगते हैं ?

कुटिलता के सिवाय और क्या है ?

हँसी की आवाज़ के बीच-बीच में जो कण्ठ स्वर सुनाई पड़ रहे हैं उनमें से एक ही आवाज़ अपरिचित लग रही है। अब तो कौन आता है, नहीं आता है, किसने खाया या नहीं खाया—प्रभुचरण जान ही नहीं पाते हैं। कोई बताता नहीं है बल्कि पूछने पर मुँह बिगाड़ते हैं।

शुभ तो स्पष्ट शब्दों में कह देता है, 'आपको इतनी क्युअरिऑसिटि क्यों है, पिता जी ?....कौन आया, कौन कहाँ गया, किसकी चिट्ठी आई, किसका टेलीग्राम आया इतनी बातें जानने की आप को क्या ज़रूरत है ! तबियत ठीक नहीं है, जितना मानसिक रेस्ट मिल सके उतना ही अच्छा है।'

लेकिन हार्ट कमज़ोर होने के साथ-साथ श्रवण-यन्त्र बिगड़ जाने का तो

नहीं है न ? सारी बातें अगर कानों में पड़ती हैं तो कहीं मानसिक रेस्ट मिल पाता है ?

अभी तो सुनने में आया, टूलू किसी से उच्छ्वसित होकर कह रही है—'आज आपके आने से खूब जमा ! ओह ! आप भी खूब जोक छोड़ सकते हैं ।'

प्रभुचरण सोचने की कोशिश करते हैं कि यह 'आप' कौन है ? पूछने पर तो कोई बताएगा नहीं ।....सोचने पर नियन्त्रण रखने के यन्त्र का आविष्कार नहीं हुआ है, यही एक भरोसा है । आधुनिक विज्ञान बाद में शायद यह भी करे ।

तब ...

टूलू दरवाजे के सामने आकर खड़ी हुई ।

हँसी-खुशी, साज-सज्जा से झलमलाती एक मूर्ति । हालांकि इस समय मुँह पर करुणा के भाव ले आई है, 'चलूँ पिताजी । लेटे हुए आदमी को तो प्रणाम न कर सकूँगी, टाटा करूँ ?....बबुआ, नाना को टाटा कर दो ।'

× × ×

उनके चले जाने के बाद रमेश के बड़े भाई की वही बात याद आई । किस प्रसंग पर कहा था, याद नहीं, पर बात याद है, कहने का ढंग याद है । हँस-हँस कर कहा था, 'गृहस्थी बड़ी मजे की चीज है, भाई । यहाँ कुछ भी स्वतः नहीं करना पड़ता है । सब कुछ अपने आप ही हो जाता है । यह बड़े होशियार सर्जन की छुरी की तरह है । कब ऑपरेशन हो गया तुम्हें पता तक नहीं चलेगा ।....देखोगे, न जाने कब सजे-सजाये स्टेज से टपक कर तुम ऑडियंस वाली कुर्सी पर बैठे हो ।....नाटक के डायलॉग अन्य लोग बोल रहे हैं ।....अधिकारी महाशय ने चुपचाप किसी वक्त छीन ली है—रुई की गदा, टीन की तलवार और रांगे का मुकुट ।....अभी तक जिन चीजों को लेकर स्टेज पर आप कूदते-फांदते रहे थे ।'

आजकल नींद की गोली खाने पर भी नींद नहीं आती है । यूँ लगता है जैसे दवाई की सारी धार खत्म होकर रह गई है ।

उधर अनिद्रा के कारण कष्ट शुरू हुआ तो प्रभुचरण ने जिस वक्त इसे खाना शुरू किया था उस वक्त लगा था कि कोई दैवी औषधि पा गये हैं । अहा—उन दिनों की उस निद्रामय अनुभूति की बात आज भी जी करता है सोचते ही रहें । गोली के खाते न खाते ही, तुरन्त धीरे-धीरे सारा शरीर, या सिर में कहीं एक हल्के से झुला देने की-सी अनुभूति, सारी चेतना शक्ति पर व्याप्त हो जाती । अचानक चेतना की बन्धन शक्ति चक्कर खाने लगती । बस, उसके बाद कुछ नहीं । जैसे अचानक एक गहरी गुफा में डूबने चले जाते ।

दूसरे दिन सुबह 'वक्त हो गया है' कह कर कोई बुलाता तो आलस्य भरी आँखें खोल कर देखते । लज्जा ढँकने को कहना पड़ता, 'वा....वाह ! तुम लोगों के डॉक्टर ने खूब एक दवा दी है ।'

उस काल में पैदा होकर, उस समय के लोगों को बेहद असुविधा हुई है। स्वाभाविक नियम से एक तिल इधर-उधर हुआ नहीं कि शर्म लगती है और उसी के लिए व्यस्त होकर कैफियत देनी पड़ती है। कौन कैफियत सुनना चाहता है इसका ठीक-ठिकाना नहीं, फिर भी लगता—किसी तरह से दूसरों के कानों में डाल देने में ही शान्ति मिलेगी।

एक-एक बार अपने आप ही अद्भुत लगता प्रभुचरण को। कितना अस्वाभाविक अनियमित चाल-चलन देखा करते है, कितनी बेपरवाह भाव भंगिमा, कहीं भी शर्म का नामो-निशान नहीं। नौकर भी शाम के पाँच बजे तक दिवानिद्रा सम्पन्न कर बेझिझक आ खड़ा होता। बल्कि बुला कर जगाने जाइये तो बुरा मानता है, मिजाज दिखाता है। इधर प्रभुचरण को जरा देर से उठने पर लज्जित होकर कहना पड़ता है, 'तुम्हारे डॉक्टर ने अच्छी दवा दी है।'

लेकिन इस वक्त तो वह हँसी हँसने की परिस्थिति भी नहीं आ रही है। अब तो नींद की गोली का तीखापन खत्म हो चुका है। इसीलिए उसे खाने के बाद प्रभुचरण, भूला-भूलने की-सी अनुभूति की प्रतीक्षा करते-करते हताश हो जाते। जबरदस्ती आँखें बन्द करके पड़े रहने की वजह से आँख की दोनों पलकें दर्द करने लगतीं और सिर के भीतर भी अजीब-सा सूनापन लगता।....

और उसी धुंधले पर्दे पर न जाने कौन आ-जा रहे हैं, कितनी क्या सब बातें करते, चलते-फिरते, जैसे उनके पैरों की आहट सुनाई पड़ती।...कौन है समझने की कोशिश करते और समझते ही, कभी-कभी लगता, जो सोच रहे हैं सच ही है। मृत्यु निकट आ गई है।

बचपन से सुनते आए हैं, मृत्यु पास होती है तो सपने में सारे मृत व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं। वे लोग जताने आते हैं, अब तुम्हारा 'दिन' पास आ गया है, हम तुम्हे लेने आ रहे हैं।

नानी को कहते सुना था। मँझले नाना को कहते सुना था, 'अब सामान बाँधने का वक्त हो गया है। चले गये लोगों ने आना-जाना शुरू कर दिया है।'....पिता जी भी मरने के ठीक दो दिन पहले बोले थे, 'नाव घाट पर आ लगी है, माझी मल्लाह पतवार ले कर तैयार है, अब लंगर का रस्सा काटो।'

प्रभुचरण को याद आया, माँ ने व्याकुल हो कर कहा था, 'यह सब क्या बहकी-बहकी बातें कर रहे हो। इस वक्त बुखार भी तो ज्यादा नहीं है।'

उन दिनों लोग कहते थे, बुखार ज्यादा होने से लोग बहकी-बहकी बातें करते है, इसीलिए माँ ने भी यही कहा था। पिताजी ने जरा-सा हँस कर उत्तर दिया था, 'मैं मलेरिया की कँपकपी के कारण बहकी बातें कर रहा हूँ, तुम यह सोच रही हो! मुझे दिखाई दे रहा है, कमरे में कितने लोग आ गये है। चल-फिर रहे हैं, सिरहाने आ कर खड़े हो रहे हैं। आपस में कुछ कह रहे हैं शायद 'लग्न' देख रहे हैं। अब साथ ले कर नाव पर चढ़ेंगे। लेकिन जब तक 'लग्न' उपस्थित नहीं होगा तब तक तो कुछ नहीं होगा।'

प्रभुचरण सोचा करते, 'ठीक ! ठीक ! मेरे भी 'दिन' आ गये हैं। मैं भी तो कुछ दिनों से जितने मृत रिश्तेदारों का स्वप्न देख रहा हूँ, सभी निकट के रिश्तेदार हैं ऐसा भी नहीं।....जो कब मर कर भूत बन चुके हैं, जिनकी याद तक नहीं है, जिनका नाम भूल कर भी नहीं लिया, यादों की अतल गहराई में जो खो चुके हैं....अचानक-अचानक ही उनके चेहरे आँखों के आगे स्पष्ट तैरने लगते हैं।'

प्रभुचरण सोचते, 'और यह सब तभी ज्यादा होता है जब नींद की गोली खा लेता हूँ। अब तो जैसे उस गोली की प्रतिक्रिया ही आमूल रूप से बदल गई है। गोली खाने के बाद मस्तिष्क की शिरायें कहाँ अलसा कर निर्जीव हो जायेंगी, उसकी जगह पर और भी अधिक सक्रिय हो उठती हैं। और उस सक्रियता के साथ-साथ सारे खोये हुए मनुष्य जीवित हो उठते हैं।

इसके अर्थ, उनकी बात, उनकी हँसी, उच्छ्वास सब जैसे टेप किया हुआ था, और उनकी चाल-चलन, भाव-भंगी, कार्य-कलाप सब किसी सूक्ष्म कैमरे में बांध रखा था। स्मृति के रुपहले पर्दे पर अचानक दिखाई पड़ जाते हैं। कौन किस वक्त मंच पर आ उपस्थित होगा, कहना कठिन है।

वरना माँ नहीं, पिताजी नहीं, विभू नहीं, निकट के रिश्तेदार नहीं, निद्रा-विहीन रातों के अखंडित अवकाश को 'जीवन ताऊजी' जैसे तुच्छ व्यक्ति खंडित करने क्यों आते हैं ?'

जरा देर पहले भी नींद की आशा से हताश होकर प्रभुचरण सोच रहे थे, 'नींद के लिए इतनी असाध्य साधना क्यों ? मैं कवि की तरह कह क्यों नहीं पाता हूँ, 'सभी जब मगन नींद की खुमारी में, ले लेना, ले लेना तुम मेरी नींद हरण कर लेना।'

उसके बाद होंठों पर क्षोभभरी हँसी आ गई, उस नींद विहीन रात का प्रभुचरण क्या करेंगे ? किसे बुलायेंगे, अकेले कमरे में चुपचाप सुर के रूप में आ खड़े होने के लिये ? सारी उम्र तो सिर्फ अ....सुर की ही सेवा करते आये हैं, सुर की साधना कब की ?

न ! प्रभुचरण जैसे लोगों को नींद चाहिये, जो निद्राहीन रातों के माधुर्य को उपभोग करने की क्षमता नहीं रखते हैं।

प्रभुचरण सोच रहे थे, अब एकमात्र अतिथि के आने की ही प्रतीक्षा है। 'प्रतीक्षा' नहीं, निरुपाय प्रतीक्षा कहनी चाहिये। उसी आने को रोक रखने की जी-जान से कोशिश करते-करते, एक समय आत्म-समपर्ण करना पड़ेगा। वह आत्म-समपर्ण का समय आ रहा है, क्योंकि लग रहा है, उसके पैरों की आवाज निकट आ गई है। मृतकों का जगत् प्रभुचरण को ले जाने के लिये। फिर भी अच्छा है कि अभी भी प्रभुचरण जैसे साधारण आदमी को ले जाने के लिये स्वागत अभ्यर्थना करने की तैयारी है।

'अभ्यर्थना समिति' की उस भीड़ में से आज अचानक 'जीवन ताऊजी' उनके निकल के फ्रेम के चश्मे को माथे तक उठाते हुए हँस कर बोले, 'क्यों ? मुँह फाड़े क्या देख रहा है ? जीवन ताऊजी के हाथों की कला-कौशल। मेरा यह दवाखाना विधाता पुरुष का कारखाना है....समझे ?'

लेकिन ताऊ का नाम क्या लेता ?

पर सचमुच के ताऊ थोड़े ही हैं ? गाँव का मामला है। पिताजी 'भइया' कह कर बुलाते थे, इसीलिये जीवन कुम्हार को ताऊ कह कर बुलाना पड़ता था प्रभुचरण लोगों को भी।

पिताजी छुट्टी होते ही गाँव चले आते। उनके लड़कों का स्कूल बन्द हो या न हो, नुकसान हो या न हो। हालांकि छुट्टियाँ ज्यादा होती नहीं थीं, चैतन्यचरण की नौकरी में, परन्तु छुट्टी लेने की कमी न थी। गाँव जाने की इच्छा हुई तो चैतन्यचरण को कौन रोक सकता है।

प्रभुचरण लोगों के लिए 'नीलकान्तपुर' एक आनन्दमय आकर्षण की जगह थी। कमला को छोड़ कर। ससुराल के इस गाँव को वह बहुत सुनजर से नही देखती थी। न देख सकें, इससे किसी का क्या बिगड़ता है ? मायके तो नित्य ही जा रही हैं, साल में एक-आध बार ससुराल नहीं आ सकेंगी ?

प्रभुचरण दो भाई और बीच-बीच में दीदियाँ भी, यहाँ आ कर महा उत्साह से, मजे करने के जितने भी रास्ते हैं उन्हे ढूँढने लग जाते। फिर भी विशेष आकर्षण इस कुम्हार के घर का ही था।

जीवन के घर के पीछे काफी बेकार जमीन पड़ी थी। वहाँ पर जीवन के बहुत सारे टूटे-फूटे, टेढ़े-मेढ़े मिट्टी के बर्तन पड़े रहते थे। उन्ही टूटे बर्तनों के पीछे था इनके छिपने का अड्डा।....जीवन ताऊजी का बेटा भुवन था प्रधान उत्साहदाता।

भुवन के साथ विभुचरण की बेहद दोस्ती हो गई थी। भुवन ही उन्हे बुला लाता था। कातर स्वरों में कहता, 'हमारे यहाँ आ कर नही खेलोगे तो मेरा बिल्कुल खेलना न हो सकेगा। काम फेंक कर जा भी तो नहीं सकता हूँ भई !'

'साम्यवाद' शब्द तब तक शब्दकोष के पृष्ठों में ही था....चावल की बटोई में आ कर नहीं घुसा था। 'जातिभेद' जैसा मामला सोलहों आने मौजूद था, लेकिन लड़कों के खेल-कूद के जगत् में कोई दीवार खड़ी नही की गई थी। 'अवनत' और 'उन्नत' जैसा कुछ था या नहीं, उन छोटे बच्चों को कम से कम पता न था।

लोहार-कुम्हार, बुनकर या तेली जैसे नवशाखों की सन्तान, अनायास ही समाज की सर्वोच्च शाखा--ब्राह्मण सन्तानों के साथ, गहरे सौहार्द के बन्धन में बँध कर खेलते थे। कभी-कभी शैशव और बाल्य-काल पार हो जाने पर भी यह सौहार्द-बन्धन दृढ़ ही रहता था।

जीवन कुम्हार को चैतन्यचरण के घर में परम आदर प्राप्त था। उनके आने की खबर पाते ही, शाम को जीवन कुम्हार हाथ में हुक्का सँभाले 'चैतन्य आ गये क्या !',

कहते हुए था खड़े होते। वैसे ही तख्त बिछ जाता, समयानुसार हाथ का पंखा, उसके बाद तश्तरी में चैतन्यचरण द्वारा लाई शहर की मिठाई, घड़े का ठंडा पानी और लगा हुआ पान का बीड़ा। कुम्हार के साथ बर्तन का छूत नहीं माना जाता था।

पर पिताजी के कहने पर प्रभुचरण या दीदियों में से कोई (विभू ऐसे मौकों पर रंगमंच में उपस्थित नहीं रहता था) पंखा ले कर हिलाते कि जीवन 'हां, हां' कर उठते। पंखा छीन लेते। हाथ जोड़ कर माथे पर छुलाते हुए कहते—(भगवान् जानता है किसे नमस्कार जताते)—'सर्वनाश! ब्राह्मण सन्तान के हाथों से सेवा करा के नरक में जा कर क्या सड़ूंगा?'

काले-काले भारी शरीर के आदमी को प्रभुचरण आँखों के सामने देख पाते। पिताजी की आवाज सुनाई पड़ती, 'अभी ब्राह्मण नहीं हुआ है। गले में डोरा नहीं डाला है।'

जीवन की आवाज भी सुनाई पड़ती—'होने दो।'

कमला अपने इस कुम्हार-जेठ के सामने निकलती, पर बात नहीं करती थी। सिर ढँक कर आतीं—या तो और दो मिठाई दे जातीं, शरबत या कटा फल।

जीवन बोल उठते, 'यह देखो चैतन्य, बहू माँ, क्या कर रही हैं? मैं रात को खाना नहीं खाऊँगा क्या!'

चैतन्यचरण हँस कर कहते, 'क्या कहते हो, भइया? दो टुकड़ा फल या मिठाई से तुम्हारा खाना खराब जायेगा?'

सो जीवन के यहाँ प्रभुचरण को भी आदर मिलता था। और किसी घर के आस-पास खेलने पर कभी मुँह के सामने खाद्य वस्तु मिली है? छूत न मानने वाले और दोस्त भी तो ये।

इस घर से चिउड़ा, लाई, लड्डू, भुना चावल, घिसा नारियल, घर के गाय के दूध से बनी खोये की मिठाई जैसी वस्तुयें तो बंधी बंधाई थीं। सुन-सुन कर माँ हँसा करतीं, 'इसी लालच से वहाँ खेलने जाने की इतनी पड़ी रहती है, क्यों?'

सुन कर गुस्सैल विभू ऊँची आवाज में कह बैठता, 'यही लालच है! ठीक है, अब नहीं जाऊँगा। भुवन बुलाने आये तो भगा देना।'

माँ कहतीं—'सर्वनाश! तू मजाक भी नहीं समझता है!'

और भुवन के आते ही माँ प्यार से कहतीं, 'आओ बेटा, आओ! तुम्हारे दोस्त अभी तुम्हारे ही यहाँ जा रहे थे। सो तुम भी तो बेटा, एक-आध दिन यहीं खेल सकते हो।'

भुवन सचमुच नजर से इस पक्के मकान का चबूतरा, जगमगाता पूजाघर का बरामदा, उसके किनारे लम्बी सीढ़ियों की तरफ देख कर उदास होकर कहता, 'काम

रहता है न।'

सचमुच बेचारे के पास बहुत काम रहता है।

कितने सवेरे गोशाला से गाय बाहर करने से लेकर, कुट्टी काटना, उन्हें चारा देना, समय होने पर मैदान छोड़ आना, वगैरह के बाद भी बाप की मदद के लिए भी कम मेहनत नहीं करनी पड़ती है।

बाप के साथ मिट्टी छानता, सामान हाथों-हाथ बढ़ा देता, चाक से निकलते कच्चे मिट्टी के सकोरे, कुल्हड़, गिलासों को सावधानी से सजा कर रखता।....इसके अलावा बीच-बीच में बाप के लिए चौदह बार हुक्का तैयार करता। बेचारे की तब उम्र ही क्या थी? विभूचरण की उम्र का ही तो था। चैतन्यचरण की भाषा में, अभी जिनके गले में डोरा नहीं पड़ा है।

हाँ, कुछ काम लोभनीय भी थे।

कम से कम प्रभुचरण और विभू की राय से।

जीवन जो छोटी-छोटी गुड़ियाँ बनाता, भुवन उन्हें रँगता था।....सस्ती वाली अर्थात् जिनका दाम पैसे में दो था, या दो पैसे में पाँच, वह गुड़ियाँ सिर्फ लाल रंग से ही रँगी होतीं। और महँगी वाली अर्थात् जिनका एक-एक पैसे दाम था या दो पैसे में तीन—उन्हें गहरे हरे रंग से रँगा जाता। उन पर पीले रंग की धारियाँ पड़तीं। काले रंग पर लाल रंग की धारियों वाली गुड़ियाँ भी बनाई जातीं। इनके हाथों में चूड़ियाँ, गले में मालाओं के नक्शे भी बनाये जाते।

प्रभुचरण के हाथों में खुजली-सी होती, ब्रश उठा कर ज़रा करामात दिखाने की, लेकिन भुवन नहीं देता। वह शास्त्राचार्य की तरह मुद्रा बना कर कहता, 'पागल हुए हो? कुम्हार का काम क्या करोगे? तुम लोग ब्राह्मण हो न? पतित नहीं हो जाओगे?' हालाँकि विभू कहता, 'हूँ! मैं यह सब नहीं मानता हूँ। दे न एक बार, तेरी सभी गुड़ियों को रंग दूँगा। देखूँ, कैसे पतित होता हूँ? दे....'

उत्तेजित होकर भुवन सारा माल-मसाला हटाते हुए कहता, ' 'पतित' होना क्या आँख से दिखाई पड़ता है?...मरने के बाद नरक पहुँचने पर मजा चखेगा तू।'

विभू फिर भी अवहेलनापूर्वक कहता—'नरक जाना होगा तो तू ही पहले जाएगा। ऐसा बढ़िया शिल्पकार्य कर रहा है फिर भी अपने को हेय समझ रहा है? जानता है? शिल्पी लोग सीधे स्वर्ग जाते हैं।'

भुवन इस पर भी विचलित न होता। वह भी समान रूप से अवहेलना प्रकट करता—'तुझे जैसे सब पता है! तुझे किसने बताया है, बता?'

सो भुवन का कसूर ही क्या है? यह 'हेय बोध' तो उसकी रग-रग में समाया हुआ है।....जीवन कुम्हार भी यह बात सुन कर हँसने लगा था....'हाँड़ी-सकोरे बनाने वाला कुम्हार शिल्पी नहीं हिल्पी है। यूँ तो पतंगा भी चिड़िया कहला सकता है।'

जब कि प्रभुचरण की नजरों में यही बड़ा भारी शिल्पकार्य था।

उपकरण के रूप में साधारण-सी गीली मिट्टी का ढेला मात्र है, उसी को एक ही

चाक पर नचा कर जीवन ताऊ कितनी तरह की चीजें बना रहे हैं।....हाँड़ी, कलश, सकोरा, तेल का सकोरा, गिलास, कुल्हड़, कटोरी, धूपदानी, लटकने वाला दीपदान, मंगलघट, सुराही, घड़ा वगैरह-वगैरह। छोटे, बड़े, बीच के नाप के....क्या नहीं था। इसे अगर शिल्पकार्य नहीं कहेंगे या इसके निर्माता को शिल्पी नहीं कहेंगे तो किसे कहेंगे ?

प्रभुचरण की जैसे देख-देख कर भी आस नहीं मिटती।

जीवन कुम्हार के शिल्पी जीवन का साझीदार वह छोटा-सा भुवन। यह क्या कम रोमांचकारी बात है ? कितने गर्व की पोस्ट है ? प्रभुचरण नामक ब्राह्मण परिवार में जन्मे उस लड़के ने कितनी बार दीर्घ श्वास त्यागा होगा और मन ही मन सोचा था, '—काश, भुवन के घर पैदा हुआ होता तो फिर ऐसे एक हीरो की पोस्ट अनायास मिल जाती।'

पड़ोस में और भी खिलाड़ी थे—हरिधन, विधू, सीतू, अजीत, और भी अनेक जिनके नाम याद नहीं, उन सब के बाप, चाचा, ताऊ थे डेली पैसिंजर। प्रभुचरण के अपने चाचा भी।

ये सभी आधी रात रहते जाग जाते, हो-हल्ला शुरू हो जाता। चीख-पुकार से मोहल्ला सिर पर उठा लेते और भोर तक एक-एक थाली चावल खा कर ट्रेन पकड़ने के लिए दौड़ते।....किसी की ट्रेन छह पचास पर, किसी की सात बज कर बारह मिनट पर और किसी की पौने आठ बजे।

लौटते भी लगभग उसी क्रम से।

लौट कर आँगन में बैठ कर हाथ-पाँव फैला कर सुस्ताते। उसी बीच शायद कुछ खाते भी, घरवालों के साथ दुनिया भर की फालतू बातें करते, शहर से ढो लाई तरह-तरह की बेसिर-पैर वाली खबरें सुनाते और उसी बीच चलता रहता बच्चों को डाँटना-डपटना जैसा आवश्यक कर्त्तव्यपालन भी। कर्त्तव्यानुरोध पर ही डाँटना-डपटना, पीड़ा-प्रहार। क्योंकि घर के मालिक के सारे दिन के बाद लौटने पर ही लड़के-लड़कियों के समस्त दिन के अपराधों की फेहरिस्त उनके सामने पेश की जाती।

पेशकार होतीं बच्चों की दादी या बूआ, कदाचित् माँ, कभी-कभी दादाजी। निर्ममतावश या हिंसावश ऐसा न किया जाता, बल्कि....बच्चों के हित में ही यह सब होता। घर रहने वाले गार्जियनों की बात नहीं सुनते हैं, अतएव बाहर से लौटे गार्जियन पर भरोसा करना पड़ता है।

उसके बाद अपराधों की फेहरिस्त सुनने के बाद चुप कैसे बैठा जाए ? शासन-कार्य में हाथ लगाना ही पड़ता।

प्रभुचरण का भाग्य अच्छा था। कमला में यह आदत नहीं थी। रेलवे क्वार्टर में उनकी गृहस्थी में बल्कि इसका उल्टा ही देखने को मिलता। चैतन्यचरण लड़कों पर

किसी कारणवश गुस्सा होते तो माँ जल्दी से बात संभालतीं,....बहुत बार तो सच्चाई पर-अत्यधिक बातों का मायाजाल फैला कर दोष ढँकतीं। उन्हें कभी 'मार-धार' नहीं पड़ती थी।

लेकिन नीलकान्तपुर में बहुतों की आदत थी कि बच्चों को सही रास्ते पर चलाने के लिए बेधड़क पिटाई करने की।

इस परम कर्त्तव्य का पालन करने के बाद गृहस्वामी रात्रि-आहार की तैयारी करने लग जाते।

जल्दी खा न लेंगे तो फिर कल सुबह भोर को एक थाली चावल ले कर कैसे बैठ सकेंगे? इसके अतिरिक्त यही तो 'दिनभर' का असली खाना है। सुबह जल्दीबाजी में कुछ हो भी पाता है? केले के फूल की सब्जी, साग, हिलसा मछली का सिर डाल कर पकाई, मूँइयाँ के साग की सब्जी, दाल से बनी घोखे की रसेदार। इसके अलावा मछली की विभिन्न चीजें, आदमी कब खाए? कहने को यही है गृहस्थी का असली आदमी। महीने भर में मुश्किल से चार-पाँच दिन छुट्टी होती है... । उस समय में कितना मैनेज किया जा सकता है?

फिर भी तो महिलाओं के दुःख का अन्त न था—'आदमी अच्छी तरह से न खाना खा सकने की वजह से दिनों दिन हड्डी का ढाँचा रह गया है।'

जब कि एक थाली चावल खत्म करने के बाद भी सारे दिन की रसद के नाम पर पीतल का डिब्बा भर कर वे लोग कउआ भर रोटी-तरकारी ले जाते। जो जरा सम्पन्न होते वे पराठा, आलू की तरकारी। यह ढेर कुछ जरा-सा नहीं था।

प्रभुचरण के चाचा अच्युतचरण को पीतल पसन्द नहीं था। वे गोल चपटे एक चमचमाते जर्मन सिलवर के डिब्बे में ले जाते, पराठा, आलू की भुजिया और तले हुए बैंगन, जिसका कुछ अंश प्रभुचरण लोगों के प्रातः भोज के लिए बचा रहता था। कभी-कभी चैतन्यचरण कहते, 'इन बच्चों के लिए चार रोटी बना देतीं, बहूरानी। उन्हें इतनी साग-सब्जी की क्या जरूरत है? अचू के पराठे जरा ज्यादा घी से बनाया करो। इतनी मेहनत, उस पर दिमागी काम के लिए घी, दूध, मछली ज्यादा खाना जरूरी है।'

बहूरानी अर्थात् छोटे भाई की पत्नी।

चाचा अच्युतचरण कौन सी दिमागी मेहनत करते थे, यह तो प्रभुचरण लोगों को पता नहीं था, लेकिन पिता के आचरण-व्यवहार से काफी सम्मान की भावना दिखाई देती। इधर पिता जी की बात सुन कर पीठ पीछे चाची हँसतीं—'जेठजी, क्यों ऐसा सोचते हैं कि सारे साल उनके भाई को मैं भूखा रखती हूँ? क्यों दीदी?'

चाची बड़ी अच्छी थीं, खुशमिजाज, चटपट। दीदी, जेठजी, उनके लड़के-लड़कियाँ आतीं तो 'भगवान' की सेवा करने की सी भावना लेकर जतन करतीं। और कमला के आते ही, उनके लिए 'मालकिन का आसन' खाली कर देतीं। हर मसाले में 'दीदी' बार कर, एक-एक बात पूछ कर काम करतीं। 'आप आज्ञा कीजिए' नहीं करती थीं,

भक्ति-श्रद्धा भाव रखती थीं। प्यार भी करती थीं। वरना प्रभुचरण लोग जब लौटने लगते तब चुरा कर हाथों मे पैसे क्यों देती ? आँचल से आँख क्यो पोंछतीं ? बार-बार कमला के दोनों हाथ पकड़ कर क्यों कहती—'दीदी, फिर जल्दी आना।'

उनके कोई बाल-बच्चे नही थे, इसलिए, या उनके विशाल हृदय का गुण था ?

उनका यह अनुरोध बहुत माना जाता था, यह बात न थी। पिताजी का कर्म-जीवन भी तो कुछ इसी तरह का था। सिर्फ डेली पैसेंजरी नही करनी पड़ती थी।

वही सोनू, बिभू, हरिधन के बाप-चाचा की तरह नियम के चक्के में बँध कर चक्कर काटते रहते। ऑफिस और घर, घर और ऑफिस। छुट्टी रहती तो ताश या दस-पचीसी ले कर बैठते, लाई-पकौड़ी खाते। मौका लग जाता तो इन लोगों की तरह कँटिया ले कर तालाब के किनारे भी जा बैठते।...सिर्फ गाँव की बात याद आते ही अचानक छुट्टी ले बैठते। वहाँ भी तो एक ही पद्धति थी।

इस जीवन के साथ कहीं जीवन ताऊ के कर्मजीवन की तुलना हो सकती है ?

देखते-देखते नशा-सा सवार हो जाता।

फिर प्रभुचरण का ही ऐसा हाल होता बिभू। तो जरा देर देख कर ही भाग जाता और कहता, 'चाक मेरे हाथ लग जाए तो मैं भी यह सब बना सकता हूँ।'

प्रभुचरण इस बात पर विश्वास नहीं करते। मुग्ध भाव लिये बैठे रहते।

कभी-कभी जीवन कुम्हार, नाक पर लटक आए निकल के चश्मे को माथे पर चढ़ा कर हँसता। कहता, 'क्या देख रहा है ? मेरा यह कारखाना विधाता पुरुष के कार-खाने का नमूना है, समझा ? उनका चाक भी जैसे हर वक्त घूमा करता है और नाना प्रकार के माल की सृष्टि कर रहा है—लम्बा, बौना, दुबला, मोटा, काला-गोरा, नाक चपटा पर बुद्धू, तोते की सी नाक वाला, तेरे जीवन ताऊ भी उसी तरह से हर तरह की कृति रचते जा रहे हैं। पर एक कायदे की बात बता दूँ ? इस जीवन कुम्हार के हाथों की महिमा विधाता पुरुष से कहीं ज्यादा ही है। उनके हाथो से एक सचमुच का त्रुटि-हीन माल निकलने में हजारों साल लग जाते हैं। हर समय जो कुछ वह बना रहा है, सभी तो दागी माल है। आकृति एवं प्रकृति दोनों ही दोषपूर्ण हैं।....लेकिन जीवन ? सब त्रुटिहीन। किसी कारणवश अगर किसी में कोई दोष रह गया तो उठा कर उसे कूड़ेखाने में डाल देता हूँ।....और विधाता पुरुष अविराम टूटा-फूटा, टेढ़ा, चोटहा, कोने से टूटा सामान चलान करते चल रहे हैं। एक बार सोचता भी नहीं है कि इस तरह के दागी सामान पृथ्वी पर किस खुशी में भेज रहा है।....तेरा जीवन ताऊ नुकसान सह सकता है लेकिन काम में बदनामी सुनने को तैयार नहीं। विधाता जैसा कृतिकार बदनामी से नहीं डरता है। तब समझो, बड़ा कौन है ?' कहता और फिर से चश्मा ठीक करके हँसने लगता।

जो जीवन कुम्हार को नुकसान की परवाह नहीं थी, इसका प्रमाण था वह कूड़े का ढेर, जहाँ पड़ोस के बच्चे चोर-चोर खेला करते, जहाँ मामूली सर चिटका या आग की आँच में तिरछा हो गया माल पड़ा रहता था।

कभी-कभी जीवन ताऊ यह बात भी कहा करते—'अपने को यूं ही क्या भगवान्-तुल्य समझता हूँ ? भगवान् जैसे अपने रचे लोगों को दुःख और कष्ट में जला-जला कर मजबूत बनाता है, यह जीवन भी वैसे ही अपने बनाए मालों को गोबर की कंडी में जला-जला कर मजबूत बना देता है।'

कई बार प्रभुचरण सोचते, इस देश के आकाश, वायु, जल और मिट्टी तक में भी दार्शनिकता घुली हुई है। विशेषकर तथाकथित अज्ञान, मूर्ख, निरक्षर ग्राम्य लोगों में। वे मानों एक-एक तत्त्ववार्ता के समुद्र हों। कितनी सहजता से वैसी गम्भीर ज्ञान-भरी बातें ये लोग कह सकते हैं।

बातें भी कम नहीं जानते हैं। उपमा देने में भी उस्ताद हैं। आसान उपलब्धि की क्षमता के साथ जीवन की अभिज्ञता को जोड़ कर एक से एक निरक्षर मनुष्य भी वैसा ज्ञानी हो जाता है, दार्शनिक बन जाता है।

असली बात है उपलब्धि की क्षमता। प्रकाश करने की भंगिमा भी। जो बात मर्मस्थल पर चोट करे। वरना नोनी मछुआरे की आत्म-धिक्कार-वाणी के प्रतिक्रिया-स्वरूप प्रभु नामक लड़के ने क्यों ममेरे भाई की शादी के भोज समारोह में मछली का एक टुकड़ा तक मुँह में नहीं रखा ?

बहूभात के यज्ञ के बाबत मछली का प्रबन्ध करने के लिए बड़े तालाब में नोनी मछुआरे ने जाल डाला था...विशाल-विशाल दस-बीस रोहू-कतला ला कर आँगन में डालने के बाद, गीली लंगोट पहने, सर्वांग में कीचड़ सना नोनी माये का पसीना पोंछते हुए बोल उठा था, 'सुनते हैं शास्त्रों में कहा है कि पेट का अन्न जुटाने के लिए जो पाप किया जाता है वह पाप लगता नहीं है। शास्त्र की बात शास्त्र जानें, लेकिन बाबू साहब, इस पाप के चक्कर में मन में जो सुई चुभती है उसकी जलन मिटाने की कोई दवा शास्त्र में है क्या ?...पानी के भीतर, पानी की मछली अपनी खुशी में हँस-खेल रही हैं, तैर रही हैं। जीव-जगत् के धर्म के अनुसार वंशवृद्धि कर रही हैं। किसी का कोई अनिष्ट नहीं करती हैं, पर यह नोनी भाग्यहीन रात के आखिरी प्रहर उठ कर, बासी मुँह जाकर जाल फैला-फैला कर उन्हें गिरफ्तार कर ला रहा है। लाकर हँसुए की धार के सामने पटक कर फेंक रहा है। ऐसा कर रहा है, दो पैसे के धंधे के लिए....भगवान् के इस राज्य में बड़ा अविचार है बाबू साहब, बड़ा पाप है।'

बड़े मामा ने जरा हँस कर कहा था, 'भगवान् के राज्य का यही नियम है नोनी, कोई मारेगा, कोई मरेगा।'

नोनी के उदास कंठ ने उस स्थान को विषण्णता से भर दिया, 'नियम भगवान् ने बनाया है या मनुष्य ने, यह तो आप जैसे विद्वान् लोग जानते हैं, परन्तु नोनी मछुआरे को अपनी 'जीविका' से अत्यन्त घृणा हो गई है। मछलियाँ जब किनारे पर तड़फड़ाया करती हैं तब नोनी की छाती में भी तड़पन होने लगती है।'

ये लोग 'मैं' शब्द का प्रयोग कम करते थे। नाम से ही बात कौन जाने ! पर उसकी यह बात सुन कर एक शिशु के प्राण भी तड़पने

की वजह से उसने ऐसा संकल्प किया। प्रभुचरण की एकान्त चिन्ता में शामिल थे विभू और छोटी दीदी।

छोटी दीदी इस संकल्प की बात सुन कर खूब दुखी-दुखी-सा मुंह बना कर बोली थीं, 'मछलियाँ भी तो मनुष्य के खाद्य के रूप में जन्मी हैं प्रभु! तेरा क्या कसूर?'

'कभी नहीं।'

प्रभु ने जोर से कहा था, 'यह सब आदमी की चालाकी है। कोई किसी का खाद्य बन कर पैदा नहीं होता है।'

छोटी दीदी और भी करुण स्वर में बोली थीं, 'इतने समारोह से किया गया भोज और तू असली चीज़ ही छोड़ देगा? पांच वक्त तो मछली का ही तमाशा रहेगा। दाल में मछली, सब्जी में मछली, मछली की चटनी और मछली का कलिया तो है ही। कैसे खाएगा?'

'मैं नानी की रसोई में खा लूंगा', प्रभुचरण ने दीप्त स्वर में घोषणा की थी।

लेकिन विभू नामक उस तेजस्वी लड़के ने सुन कर दुःख प्रकट नहीं किया था, करुणा भी नहीं, होंठ उलट कर बोला, 'भइया, तुझे लड़की होकर पैदा होना चाहिए था। तेरे द्वारा जीवन में कुछ हो न सकेगा।'

ज़रा-सा लड़का, उसने क्या भविष्य का नाट्यमंच देख लिया था? इसीलिए क्या ऐसी भविष्यवाणी कर बैठा था?

खट् खट् खट्!

बड़ी देर से जैसे लगातार यह आवाज आ रही है। कैसी आवाज है? कोई क्या कहीं लकड़ी काट रहा है? लेकिन लकड़ी क्यों काटेगा? आधुनिक सभ्य घरों में क्या आग जलाने के लिए लकड़ी कटती है? जैसा कि उस ज़माने में काटी जाती थी।

प्रभुचरण को जैसे दिखाई पड़ा, ननिहाल के खलिहान के पीछे बड़े भारी दालान में बैठा भुतो लकड़हारा लकड़ी काट रहा है, कटाकट-कटाकट। एक तरफ ढेर लगा है कुन्दों का, और दूसरी तरफ चैलों का, बीच में भुतो। एक-एक लकड़ी का कुन्दा उठा कर कुल्हाड़ी मार रहा है, और कटाकट काट-काट कर उधर फेंक रहा है।

काला, चिकना, भैंस-सा शरीर भुतो का। उस कुल्हाड़ी के साथ ताल मिला कर मानो अपनी मांसपेशियों की मज़बूती का प्रदर्शन कर रहा हो। भुतो नहीं जानता उसका वह शरीर 'दर्शनीय' भी हो सकता है। वह सिर्फ़ जानता है कि किस चतुराई से कुल्हाड़ी चलाने पर एक गाड़ी कुन्दे चैले लकड़ी में बदल सकते हैं....उसके रुख को देख कर लग रहा है कि एक और गाड़ी लकड़ी का सफाया वह आसानी से कर सकता है।

लेकिन बड़ी नानी ऐसा करने देना नहीं चाहती थीं। कहतीं, 'अरे भाग्यहीन,

पैसे की लालच में क्या मरेगा ? मुँह से खून निकलने लगेगा। जा-जा, बहुत हुआ है। आज मुँह-हाथ धोकर पैसा लेकर जा। फिर कल होगा।'

बरसात से पहले ठेला भर-भर लकड़ियाँ कटवा और सुखवा कर नहीं रखा तो ? जरूरत से ज्यादा ही रखना जरूरी है। कौन कह सकता है कि बरसात के बीच अचानक घर में कोई शुभकार्य नहीं लग जाएगा। आषाढ़-सावन दोनों ही महीने तो शादी के महीने हैं। लग जाए तब क्या उपाय होगा ? गृहस्थ क्या 'लकड़ी लकड़ी' करता फिरेगा ?

धूप के दिनों में ही तो सारे साल की रसद मौजूद रखने की व्यवस्था है। मूँग, उरद, अरहर, चना, मसूर से शुरू कर के नमक, मसाला, गुड़ बरी, अचार, अमावट क्या नहीं ?...दिमाग खपा कर, मेहनत और पैसे खर्च करके भण्डार भर लेने पर कहीं जाकर छाती ठंडी होती है।....हालांकि तेल-घी ताजा होना जरूरी है, सो उसके लिए कोल्हू और ग्वाले के यहाँ वंशागत व्यवस्था की हुई है।

सारे मसाले धो-धोकर टोकरियों में करके पक्के आँगन में, धूप में डाल दिया जाता। बीच-बीच उल्ट-पलट दिया जाता, बस। धूप से सुखा कर तभी टीन के डिब्बों में भर दिया जाता है।

सो काम जितना ज्यादा था, वैसे ही काम करने वाले ज्यादा थे। घर में औरतों की संख्या भी तो कुछ कम न थी।...गृहणियाँ हैं, बीच के लोग हैं, रात-दिन के लिए दो नौकरानियाँ हैं। इसके अतिरिक्त बुलाते ही किसी भी तरह का काम कर देने के लिए पड़ोस में 'लोग' हैं। केवल गृहणियों को दसभुजा बना कर काम करवा लेने की भूमिका अदा करनी पड़ती है। नाना के घर में गृहणी कहने को चार-चार जने हैं। बड़ी नानी, मँझली नानी, सँझली नानी और छोटी नानी।

ऊपर नीचे वाले चार भाइयों की पत्नियाँ, उम्र में भी उन्नीस-बीस थी।... फिर भी बड़ी नानी ही असली मालकिन थी। बड़े की मर्यादा उम्र से नहीं, रिश्ते से होती है। मँझली देवरानी उनसे तीन महीने की बड़ी हैं, पर उससे कुछ नहीं होता है। बड़ा तो बडा ही है। इसके अलावा बड़े मालिक के मरने के साथ-साथ 'मालिक' का खाली आसन भी उन्हें ही उत्सर्ग किया गया है क्योंकि विधवा के तात्पर्य तो वृद्ध होना....विधवा के अर्थ की बुढ़िया। प्रभुचरण की अपनी नानी अर्थात् माँ की चाची-वाची नहीं, सगी माँ, यानी यही बड़ी नानी ही घर की बड़ी मालकिन है। अर्थात् टॉपमैन।

उनका आदेश ही सर्वोपरि है।

उनके निर्देश का अवश्य पालन होना चाहिए।

प्रभुचरण ने देखा, बड़ी नानी का निर्देश पाकर चारू की माँ एक बड़े झावे में तेजपात भर कर तालाब की तरफ गई। तालाब में तेजपात धोकर लाई और झाबे को तिरछा करके पानी झारने के लिए रख दिया। तिरछा करने के लिए तालाब से दो ईंटें भी धो लाई थी।

बड़ी नानी आँगन के पास बैठी थीं। तसर की थान धोती पहने, गरमी से लाल चेहरा। कह रही हैं, 'चारु की माँ! खूब रगड़-रगड़ कर धोया है न? पेड़ के पत्तों में कितनी धूल, कितनी चिड़ियों का मैला पड़ा रहता है।'

चारु की माँ बोली, 'बड़ी माँ क्या कहती हो? रगड़ कर न धोऊँगी? मैं क्या तुम्हारे परहेज के बारे में नहीं जानती हूँ? उस बार मिर्च के बोरे में से एक जली बीड़ी देख कर मिर्चों से भरा बोरा फेंकवा नहीं दिया था तुमने?'

चारु की माँ के चले जाने पर बड़ी नानी ने छोटी नानी को निर्देश देते हुए कहा, 'पानी बिल्कुल झर जाए तो टोकरी में डाल कर हिला-डुला देना छोटी बहू। देखना बेवक्त उस नौकरानी का छुआ पानी मत छू लेना।'

नानी जातीय की सभी बातों की नस-नस में 'छूत' शब्द प्रवाहित होता था।

छोटी दीदी फुसफुसा कर कहतीं, 'यहाँ इतना अच्छा लगता है पर घर में इतना छुआछूत का हिसाब है कि दिवाल या दरवाजा छूते हुए डर लगता है, है न?'

बिभू सदर्प कहता, 'तेरी तरह डरपोक भवानी को भी ऐसा लगता है। कहाँ, मैं तो नहीं डरता हूँ। मैं तो उनकी रसोई का दरवाजा तक छू लेता हूँ।'

'ए माँ! क्या कह रहा है तू? तुझे डाँट नहीं पड़ी?'

'डाँट? मुझे कौन डाँट सकता है सुनूँ भला! किसी की हिम्मत नहीं है। कोई डाँटने आएगा तो साफ कह दूँगा—तुम लोग सब कुसंस्कार-सम्पन्न छूतग्रस्त हो। भगवान् तुम लोगों को फूटी आँख नहीं देख सकता है....देखो न, भूतो बिचारा कितनी तकलीफ उठा कर लकड़ी काटा करता है। बोला, बड़ी प्यास लगी है, माताजी, एक ढेला गुड़ के साथ इतना सा पानी अगर देतीं। उठ कर तालाब से पानी पीने जाऊँगा तो नाहक समय बरबाद होगा।'

सँझली नानी ने यह सुन कर लड्डू की मौसी को पानी देने को कहा, ऐसे, जैसे किसी भिखारी को भीख दे रही हों। भूतो आँगन में दोनों हाथ जोड़ कर पानी पीने लगा और लड्डू की मौसी ने आँगन के चबूतरे पर से लोटे से झरझरा कर पानी डालना शुरू किया।....देख कर ऐसी घृणा लगी। छि:! इसे क्या पानी पिलाना कहते हैं?

ममता भरे कष्ट से छोटी दीदी बोलीं, 'आहा रे, जरा-सा गुड़ तक नहीं दिया!'

'वह क्यों नहीं देंगी? गृहणियों के भण्डारघर में चीजों की तो कोई कमी नहीं है। सिर्फ गुड़ ही नहीं, ढेर सारा लड्डू-फड्डू भी दिया। पर वह बुद्धू खाता क्यों? उसे तो अँगोछे में बाँध कर एक तरफ रख दिया। फिर जरा-सा गुड़ खा कर, भिखारियों की तरह एक घड़ा पानी पी कर बैठ गया।'

बिभू के भइया प्रभु का यह सुन कर खून खौलने लगता है। बोला, 'भूतो नाराज नहीं हुआ? बोला नहीं कि मैं अगर लोटे से पानी पी लूँगा तो क्या लोटा घिस जाएगा?'

'बोलेगा! हूँ।'

अपने बड़े भाई ने लम्बे, चौड़े और भारी शरीर के बिभू नामक लड़के ने

अपना सुन्दर मुंह तिरछा कर कहा था, 'यह बात अगर ये लोग कहना जानते तब तो कबके सब ठीक हो गए होते। कहेंगे....यह बात वह कहीं सोच सकते हैं ? अपमान को अपमान समझने की क्षमता है भी ? यह सोच सकते हैं कि हम लोग मनुष्य क्यों नहीं हैं ? कभी नहीं। तभी तो हमेशा सब अपमानित करते आ रहे हैं।'

'बुद्धू', छोटी दीदी डरते-डरते बोलीं, 'पर विभू, जैसा नियम है वैसा ही तो करना होगा। भूतो लोग तो लकड़हारे हैं। इन्हे घर में घुसने दिया जा रहा है यही क्या कम है ? निहायत काम की वजह से बुलाए जाते हैं।....लेकिन शरीफ आदमियों को भी तो अलग रखा जाता है। उस दिन शादी मे देखा था न ? कायस्थ मामा, सरकारमामा, दत्तानाना जैसे और भी जितने शूद्रजाति के लोग थे, उन्हें अलग छत के नीचे बिठाया गया था खाने के लिए।...लेकिन कोई गुस्सा तो हुआ नहीं।....बल्कि जिस वक्त सँझले नाना और छोटे नाना उनकी तरफ खाने-पीने की देख-रेख कर रहे थे और कह रहे थे, 'अरे, इधर ज्यादा मछली ले आ, इधर दही एक बार घुमा दे',... उस वक्त सरकार मामा बोले, 'हम लोग अच्छी तरह से खा लेंगे चाचा, आप बल्कि उस तरफ देखिए।' उस तरफ के मतलब हुए ब्राह्मणों की तरफ।

विभू के हाथों की मुट्ठी बँधती जा रही थी। विभू ने अवज्ञापूर्वक कहा था, 'जैसा नियम ! हूँ ! असल में तुम लोगों की हड्डियों में इस 'नियम' का कीड़ा घुस कर बैठ गया है।....नियम बनाया किसने है ? बता तो। स्वर्ग के भगवान् ने ? सब इन ब्राह्मणों की चालाकी है।'

विभू की तब उम्र ही क्या होगी ?

फूले-फूले गाल, गोपाल-सा चेहरा। सिर्फ स्वास्थ्य खूब अच्छा होने की वजह से बड़े भाई से लम्बाई-चौड़ाई में दुगना था।

बोला था, 'देखना भइया, बड़ा होते ही मैं सबसे पहले इन भूतो लोगों को नाराज करूँगा। कहूँगा, तुम सब इकट्ठा होकर कहो कि अब यह सब अपमान हम सहन नहीं करेंगे।'

छोटी दीदी ने हँसते हुए कहा, 'तेरे कहते ही वे नाराज हो जाएँगे जैसे। आजीवन-काल से तो यही चल रहा है। इसके अलावा 'अपमान-अपमान' कह कर तू क्यों नाराज हो रहा है ? बड़े लोग हम लोगों को ही कहाँ कुछ छूने देते हैं ? छू जाने पर कपड़े बदल डालते हैं, तो क्या हम चिढ़ कर कहेंगे कि हमारा अपमान हो रहा है ?.... असल में वे भी तो हमेशा से इसी तरह करते चले आ रहे हैं।'

'तेरा जैसा गोबर भरा सिर है वैसा ही तो कहेगी।'

कह कर विभू ने होंठ बिचकाए और चला गया। अवज्ञा और गुस्से की, घृणा और व्यंग की अद्भुत अभिव्यक्ति कर सकता है विभू अपने इन दोनों सुगठित होंठों के माध्यम से।

विभू के आगे प्रभु अपने को बहुत तुच्छ समझता, उससे वह बहुत डरता था। दूसरा कोई डर नहीं....कब किसे क्या कह बैठे, इसी बात का डर।

एक-एक समय वह जैसे प्रौढ़ आदमी बन जाता।....फिर अचानक देखो तो वही शरारती, दुष्ट, हुल्लड़ करता लड़का। ...

'भइया, बिल्ले और मैं आज दोपहर को श्मशान में 'श्मशान बाबा' को देखने जा रहे हैं, चलना चाहो तो चलो।'

'भइया, आज का टार्गेट है घोषों का आम का बगीचा। इच्छा हो तो चल सकते हो।'

'भइया, कल रात तुझे कितना बुलाया। तू तो उठा ही नहीं। तू कुछ नहीं कर सकेगा मैं, बिल्ले और सरकार लोगों का वह चपटी नाक वाला लड़का, तीनों कहाँ गए थे, जानते हो? उसी निकरी मोहल्ले के जौलू फ़क़ीर की क़ब्र पर।....हर शुक्रवार की रात को बारह बजे फ़क़ीर साहब क़ब्र में से बातें करते हैं।'

'तू वहाँ गया था?'

'गया तो था ही। जानते हो? ही-ही-ही, बिल्ले को क्या कहा है? कहा है तेरी तीन शादियाँ होंगी। ही-ही- ही। और उस नकचपटे से कहा है, तेरी पढ़ाई-लिखाई कुछ नहीं होगी। बाप तुझे घर से निकाल देगा। ही-ही-ही।'

'और तुझे?' साँस रोकते हुए प्रभुचरण ने प्रश्न पूछा।

'मुझे? ही-ही-ही। मुझे कहा है तेरी मृत्यु शीघ्र होगी। ही-ही-ही। इसी को कहते हैं गप्प। ज़रूर कोई क़ब्र के पीछे से बोलता है। कुछ लोग बिमारी के बारे में पूछने आए थे। उन्हें जिन दवाओं के बारे में बता रहा था, उसे सुन कर क्या तुम विश्वास करोगे कि बीमारी ठीक हो जाएगी?'

'मैंने तो देखा नहीं है—मैं कैसे कुछ कहूँ? तुझे अगर विश्वास नहीं था तो गया क्यों?'

'गया क्यों? मज़ा देखने के लिए गया था? पृथ्वी पर कितना कुछ हो रहा है। देखने की इच्छा नहीं होती है?'

लेकिन भूतो कितनी लकड़ी काट रहा है?

अभी तक वही खट्-खट् आवाज़ दिमाग पर घन-सा चोट कर रही है।

तब क्या विभू की बात ही ठीक है? वह जो उसने कहा था, 'न, इस देश की कभी उन्नति नहीं होगी। हमेशा ब्राह्मण बैठ कर हुक्का गुड़गुड़ाएँगे और भूतो जैसे लोग लकड़ियाँ काटेंगे। बस।'

तो फिर भूतो लकड़ी काट ही रहा है?

लेकिन यह आवाज़ क्या खलिहान के उधर से आ रही है?

यह तो क्रमशः आगे बढ़ती आ रही है। लकड़ी काटने की आवाज़ क्या आगे बढ़ती आती है? दूर से पास? और पास?

नहीं, यह कुल्हाड़ी की खटखट नहीं, खड़ाऊँ की खटखट की आवाज़ है। इतनी देर बाद समझ में आई है। यह आवाज़ बैठकखाने के पक्के चबूतरे को पार कर अन्दर के हिस्से के आँगन तक आ पहुँची है।

खड़ाऊँ की आवाज़ की भी एक भाषा है।

अब तक जो आवाज़ सुनाई पड़ रही थी, जैसे दीर्घ विलम्बित लय से एक छन्द नियमबद्ध ढंग से धीरे-धीरे बढ़ता आ रहा था, उसमें स्पष्ट अभिजात्य भाव था। साफ लग रहा है जैसे किसी सम्भ्रान्त अभिजात्य व्यक्ति की खड़ाऊँ से निकली यह आवाज़ हो।

घण्टी हिलाते पुरोहित महाशय की खड़ाऊँ की आवाज़ बिल्कुल अलग है। वैद्यजी की और भी अलग। उनके खड़ाऊँ की भाषा मानो—तुम मुसीबत में फँस कर मुझे बुला लाए हो, मैं तुम लोगों को इस मुसीबत से छुटकारा दिलाने आया हूँ। मेरे हाथों में प्राण है। मेरे हाथों में जीवन शक्ति है। अतएव खड़ाऊँ की भाषा कहती है, 'मैं भी एक हूँ।'

लेकिन छन्दबद्ध जो आवाज़ बैठकखाने के विराट् सिमेण्टेड बरामदे को पार कर, अन्दर महल के आँगन में आ कर रुकी, उसमें सिर्फ अकारण पदध्वनि के साथ धीमी विलासिता का स्वर गूँज रहा था।

अन्दर के आँगन में आकर खड़े हुए भूदेव चटर्जी।

मँझली नानी के दूर के न जाने कैसे भाई लगते है।

लेकिन इस घर में उनका आना-जाना ठीक इस सम्बन्ध के सूत्र से बँधा हो, ऐसा नहीं था। उनके असली दावेदार हैं सँझले नाना। भूदेव सँझले नाना के खेल के साथी हैं, दस-पचीसी खेल के। प्राणों से भी प्रिय मित्र कहा जा सकता है।

इस घर में वे हर रोज हाज़िर होते। लेकिन अन्दर नहीं। बैठक में आकर बैठते, खेलते, फिर चले जाते। जैसे और भी सज्जनगण आते, बैठते, खेल देखते और चले जाते।

परन्तु कभी-कभी जब अन्दर महल में उनका आविर्भाव होता, तब उसी सम्बन्ध से। मँझली नानी कभी-कभार उनको तलब करतीं, घर के छोटे बच्चों को भेज कर। अधिकतर ऐसा तभी करतीं जब रसोईघर में कोई विशेष आयोजन किया जाता।

भूदेव के आ कर बैठते ही, घर की हर गृहणी गले में आंचल डाल कर झुक-झुक कर पाँव छूतीं। घूंघट लम्बा न होने पर भी, घूंघट में से ही शिकायत करतीं, 'छोटी बहनों को देखे बगैर ही बैठकखाने से क्यों चले जाते हैं?'

हाव-भाव से यह पता करना कठिन था कि वे किस महिला के भाई हैं। महिलाएँ बड़े-बड़े देवरों के साथ भले बात न करें लेकिन देवरानी-जेठानी के बड़े भाई से बात करती थीं। यह भी एक मजेदार बात थी। किसी के भी मायके से कोई क्यों न आए, लगेगा, जैसे सभी के मायके का आदमी है।'

सँझली बहू के पिता आए, मँझली बहू गले में आंचल डाल, साष्टांग प्रणाम

करती हुई अभिमान जता कर बोलीं, 'पिता जी, इतने दिनों बाद बेटियों की याद आई है ? मैं तो सोच रही थी कि भूल ही गए हैं ।'

इसीलिए भूदेव के अन्दर आँगन में आकर खड़े होते ही छोटी नानी दौड़ती हुई आईं, 'भइया ! आज क्या बहनों की याद आई है ?'

भूदेव का चेहरा देखने योग्य है ।

अथवा कहा जा सकता है, यथार्थ में ब्राह्मणोचित हैं, दूध सा सफेद दीर्घोन्नत शरीर, घने बालों के बीच से जरा सा झाँकता गंजापन, शरीर पर साफ धोती-चादर, पैरों में खड़ाऊँ ।

जरा-सा मुस्कुरा कर आशीर्वाद देते हुए बोले—'तुम लोग तो काम-काज में व्यस्त रहती हो दीदी, आकर सिर्फ झमेला ही तो बढ़ाऊँगा ।'

'वाह...यह भी खूब कहा—झमेला कैसा ?'

'यही—फिर आसन बिछाओ, जलपान की रिकाबी लगाओ, पान लाओ, तम्बाकू लाओ....'

'आहा, यह सब क्या झमेला है ? यह सब तो रात-दिन चलता रहता है ।'

हँसते हुए भूदेव बोले—'यह तो सही है ।....तुम लोगों का तो वही हाल है, गाय बियाने वाली है, चूल्हा जल रहा है ।....मेरी तरह थोड़े ही कि गृहणी ने थाली भर खाना पति के सामने रखा और खुद हाँड़ी लेकर बैठ गईं ।'

'अरे, अरे ! यह कैसा कहने का ढंग है ?'

मँझली नानी न जाने कहाँ से निकल आईं और बोलीं,—'हाँड़ी लेकर बैठ गईं माने ?'

'अरे वही ! तुम लोगों ने सात जन्म में कभी थाली में खाना परोस कर खाया है ? मुझे खिलाने-पिलाने के बाद, खुद हाँड़ी कड़ाही लेकर बैठ जाएगी । यही तो देखता हूँ ।'

मँझली नानी दुखी होकर कहतीं, 'तो क्या करें ? जैसी गृहस्थी । खुद और खुद की लंगोटी ।...सो आज बिन बुलाए भइया, कैसे दर्शन दिए ?'

भूदेव बोले, 'बताता हूँ । कमला कहाँ है ? कमला ! उसके उस महापुरुष लड़के को एक बार देखने आया हूँ ।'

कमला उनकी सगी भाँजी नहीं है, बहन के जेठ की लड़की है । लेकिन व्यवहार में या आन्तरिकता में कोई तारतम्य नहीं था ।

खड़ाऊँ की आवाज सुन कर ताक-झाँक तो रही ही थी, बुलावा पा कर जान में जान आई ।

कमला आई ।

प्रभु, विभू, मीना की माँ ।

उसने भी गले में आँचल डाल कर प्रणाम किया । फिर हँस कर बोली, 'रांगा मामा, इस बार बौऊ की शादी में आ कर बहुत लोगों से मुलाकात हो रही है । मुझे

आप बुला रहे थे ?'

'हूं, बुला रहा था ! महापुरुष की जननी के दर्शन करने में भी महापुण्य है।.... सो कहां है, तुम्हारा वह महापुरुष बेटा। देखूं, बुला तो।'

कमला आश्चर्यचकित होकर बोली, 'वह कौन-सा है ?'

कमला की छोटी चाची जल्दी से बोल पड़ीं, 'और कौन होगा ? शायद तुम्हारा प्रभुचरण। जो जीवहिंसा नही करने के इरादे से मछली नही खा रहा है....'

तब तक भूदेव को बैठने के लिए पीढ़ा दिया जा चुका था। उन्होने भौहे सिकोड कर कहा, 'यह बात है ? तब तो कमली, तेरे दोनों बेटे ही महापुरुष हैं ? तू तो रत्नगर्भा है रे ? सो लड़के हैं कहां ?'

प्रभु तो दीवाल के पास खड़ा ही था। भूदेव के बुलाते ही पास आया। झुक कर पैरों की धूल ली। भूदेव बोले—'क्यों, सुना है तुम जीवहिंसा नही कर रहे हो ?'

प्रभु के मुंह से एक अस्पष्ट-सा शब्द उच्चारित हुआ।

'धत्।'

भूदेव कौतुकपूर्ण स्वर में बोले—'धत् ही तो। मांस-मछली न खाया तो कही बदन में ताकत होती है ? अरे बेटा, श्रीरामकृष्ण भी रसेदार मछली खाया करते थे। वह भी ऐसी-वैसी मछली नही, ऐसी मछली जो कड़ाहे में उछला करती है।'

'ईश ! वे तो इतने ये थे....तब फिर क्यों....'

'अरे बाप रे, वह सब तत्त्वकथायें क्या इसी उम्र में समझ लेने का इरादा है ? ....देखूं तो तेरा हाथ ? देखूं ! चैतन्य बाबाजी का बेटा कहीं वैष्णव तो नहीं बन जाएगा ? हमारे दामाद बाबाजी यूं तो खाने-पीने के मामले में शक्ति के उपासक मालूम होते हैं। हाथ तो दिखा....'

प्रभु ने खुशी से पुलकित हो कर हाथ आगे बढ़ा दिया।

इसके मतलब भूदेव हस्तरेखा विशारद हैं।

और यह परम सौभाग्य प्रभुचरण का ही था।

भूदेव उसका हाथ देखते-देखते कौतुक-हास्य हँस कर बोले, 'नहीं ! कमला, डरने की कोई बात नहीं, तेरा लड़का टीका-तिलक नहीं लगाएगा।....लेकिन तेरा वह बड़ा लड़का ? सुना है, वह इसी उम्र में देशोद्धार के सपने देख रहा है।'

अवाक् हो कर कमला बोली, 'यही तो बड़ा लड़का है। वह देखने में जरा बड़ा लगता है, इसीलिए वही बड़ा भाई मालूम होता है। कहां, विभू को जरा बुला तो रे....'

बीना दौड़ी विभू को बुलाने।

वहां उपस्थित और लड़के-लड़कियां भी।

कुछ ही देर में विभू को पकड़ कर घसीटते हुए ले आये। बिल्ले ही दल का नेता था। हांफता हुआ बोला, 'यह रहा।' आना ही नही चाहता था। घसीट कर ले आया हूं।'

भूदेव के चेहरे पर अभी तक कौतुक छटा छाई हुई थी।

'क्यों रे ? आना क्यों नहीं चाह रहे थे ?'

विभू कुछ नहीं बोला।

बीना बोली, 'बगीचे में बैठा बाँस की कैनी से तीर-धनुष बना रहा था।'

'अच्छा, ऐसी बात है ? क्या करेगा ? पक्षी शिकार ?....क्यों रे कमली, तेरा एक लड़का वैष्णव और एक लड़का शिकारी है ?'

कमला ने अपने छोटे लड़के को आँख के इशारे से कहा, 'प्रणाम कर।'

अनिच्छा से धीरे-धीरे विभू आगे बढ़ा।

भूदेव बोले—'रहने दो, रहने दो।'

आश्चर्य !

विभूचरण नामक ढीठ लड़का, माँ के निर्देश का पालन न कर बनाये गये रिश्ते के नाना के निषेध को अधिक प्रधानता देता है।

भूदेव हँस कर बोले—'क्यों रे, तुम अभी से देशोद्धार की चिन्ता कर रहे हो ?'

अब विभू ने मुँह खोला।

अपनी विशिष्ट अवहेलनापूर्ण मुद्रा में बोला, 'अभी से' या 'तभी से' क्या चीज होती है ? चिन्ता मन में आयेगी तो मनुष्य चिन्ता करेगा ही।'

'हूँ।'

भूदेव जरा गम्भीर हो गये।

'तो लकड़हारों को उत्तेजित करने से साहब लोगों को भगाया जा सकेगा ?'

'क्यों नहीं भगाया जा सकेगा ?'

'कैसे ? जरा बताओ तो।'

विभू बोला—'बताने से लाभ ? आप लोग तो सिर्फ मजाक ही करेंगे।

'ओहो, मजाक ही करेंगे ऐसा पहले से क्यों समझ रहे हो ? तुमने क्या सोचा है, यह तो सुनूँ। अरे बेटा, हम भी तो चाहते हैं कि साहब लोग विदा हों। लेकिन भूतों को अपने लोटे में पानी पिलाने पर कौन-सा रास्ता खुलने वाला है, यह बात समझ में नहीं आई।'

विभू ने चारों तरफ देखने के बाद बड़े इतमिनान से कहा—'सबके सामने नहीं बताऊँगा।'

'सबके सामने नहीं बतायेगा ? ताज्जुब की बात है ! ठीक है, तब एक दिन मेरे यहाँ चले आओ। मैं अकेले ही तुम्हारी बात सुनूँगा। बड़ा कौतूहल हो रहा है। इतना सा लड़का, उसके दिमाग में क्या खेल हो रहा है, देखूँगा।....कहाँ भाई, जरा एक बार तुम्हारा हाथ तो दिखाना।'

प्रभुचरण को जरा दुःख हुआ।

उनके सामने में पोते का सम्बन्ध मान कर 'साला' और विभू को पुकार रहे हैं 'भाई।'

....जबकि विभू ने पैर तक नहीं छुए थे, गँवारों की तरफ बातें भी कर रहा है।

तुरन्त विभू ने गँवारों की तरह ही कहा, 'हाथ देख कर क्या होगा! मुझे इस पर विश्वास नहीं है।'

उपस्थित सारे लोग एक साथ मानो चौंक पड़े।

भूदेव चटर्जी के मुंह पर इस तरह की बात कहना! कितनी मान मनौव्वल के बाद तब कहीं जा कर वे हाथ देखने को तैयार होते हैं। और इसे तो खुद बुला रहे हैं।

शर्म से कमला गड़-सी गई।

और आशंका से कंटकित इस बात की प्रतीक्षा करने लगी कि अभी रांगा मामा 'लफंगा लड़का' घोषित कर के शायद चल देंगे।....परन्तु आश्चर्य, ऐसा कुछ नहीं हुआ। भूदेव की नजर विभू नामक जिद्दी लड़के के कोमल चेहरे पर टिकी थी।

अपनी नजर उसी तरह स्थिर रख कर भूदेव धीरे से हँसे, 'तुम्हें विश्वास नहीं है पर मुझे है। दिखाने में क्या हर्ज है?'

'हर्ज भी नहीं है तो फायदा भी नहीं है।'

कह कर विभू ने लापरवाही के साथ हाथ बढ़ा दिया।

भूदेव उसे पकड़ कर देखने लगे।

इधर पसीना छूटने लगा महिलाओं को।

क्योंकि उनकी दृष्टि ज्योतिषी के चेहरे पर टिकी थी। वे देख रही थीं, वही चेहरा धीरे-धीरे कठोर और गम्भीर हुआ जा रहा है।

काफी देर बाद हाथ छोड़ कर भूदेव उठ खड़े हुए। क्षुब्ध हँसी हँस कर बोले, 'तुम क्या देशोद्धार करोगे! अच्छा जाओ।'

और स्वयं ही आँगन पार करते हुए बोले, 'लड़के को ज़रा सावधानी से रखना, कमली।'

सारी आबोहवा ही अचानक जैसे भारी हो गई।....सावधानी से रखना। सावधानी से रखना।

मातृहृदय के ध्वंस होने के लिए तो यह शब्द ही काफी था।....निहायत ही साधारण-सी एक बात अचानक असाधारण रूप से भयावह हो सकती है! प्रभु अपने माँ के चेहरे की तरफ देखने का साहस न कर सका।....

अवश्य ही वहाँ रुलाई फूटी पड़ रही है।

बड़ी नानी कह उठीं, 'दुर्गा! दुर्गा!'

मँझली नानी शायद परिस्थिति को हल्का करने के उद्देश्य से बोल पड़ीं, 'भोंदा भइया को भी मानो कोई काम नहीं है, इसीलिए दो छोटे बच्चों का हाथ देखने बैठ गये अभी क्या इनके हाथों की रेखायें स्पष्ट हुई हैं। इससे कहीं अच्छा होता अगर बड़ी की लड़कियों का हाथ देख देते। कब शादी होगी, कैसा वर मिलेगा....'

लेकिन मँझली नानी के कहने का किसी पर असर नहीं हुआ।

सावधानी से रखना।

इस अद्भुत बात के क्या अर्थ होते हैं!

कैसी सावधानी? कैसे सावधान रखा जाए? वास्तव में 'सावधान' शब्द के कोई अर्थ भी है क्या?

भूदेव तो कुछ भी नहीं बता गये हैं।

पानी से बचा कर रखना होगा या आग से? नाखून, दाँत और सींग के आक्रमण से या साँप के डर से?....

यह कैसा अनिर्णायक परवाना है?

क्या व्याकुल मातृहृदय, ऐसी एक सीमारेखाहीन काल के धुंधले, अनजाने रास्ते से आती, घोर नियति को रोक सकता है या उसके लिए सावधान रह सकता है?

भूदेव चटर्जी के पीछे-पीछे दौड़ कर कोई जाये और कुछ पूछे, ऐसा साहस किसी में नहीं। जब वे प्रसन्न रहते तब 'और दो गोकुल की मिठाई' खानी ही पड़ेगी कह कर जबरदस्ती की जा सकती है। लेकिन अचानक अगर गम्भीर हो जाएँ तो! तब उनसे बात करना तो दूर, उनके सामने कोई मुँह तक खोलने का साहस नहीं कर सकता है।

अतएव मँझली नानी चित्रवत् खड़ी रह गईं। यह न कह सकीं, 'दादा भइया, चले कहाँ जा रहे हो? छोटी बहू तुम्हारे लिए नाश्ता ला रही है।'

स्थिर पत्थर से सभी खड़े-खड़े उनके चले जाने की आहट सुनते रहे।

खट्-खट्-खट्-खट्।

भीतर के आँगन से बैठकखाने के विराट् बरामदे को पार करती आवाज विलीन होती गई।

अचानक इसी आवाज को, जैसे किसी ने टुकड़े-टुकड़े कर के तोड़ डाला। एक बारीक काँच टूटने की-सी आवाज।

प्रभुचरण को तो ऐसा ही लगा।

जबकि ऐसी आवाज बहुत बार सुन चुके थे।

तब तब।

नहीं, काँच टूटने की नहीं, हँसने की आवाज थी।

उस आवाज के साथ एक सुरीली आवाज भी सुनाई पड़ी—'सुना है, आजकल सिपाही पर नींद की गोली का असर नहीं हो रहा है। खिक-खिक....कब भोर से उनके

यहाँ पंडाल बाँधने के लिए बाँस कटना शुरू हुआ है, खट खट की आवाज़ से मेरा तो सिर दर्द हो गया। और पिताजी को देखो...खिक खिक...शरीर पर, मुँह पर धूप लग रही है फिर भी....।'

नाटी धोती और मोटे जीन का कोट पहने एक लड़का जैसे गुड़गुड़ा कर कहीं लुढ़क गया।....प्रभुचरण ने आश्चर्य से देखा, सचमुच काँच की खिड़की से हो कर धूप उनके शरीर एवं मुँह पर लग रही थी।

आह!

मानो सीने पर से एक पहाड़ हट गया।

उस सुख के कारण प्रभुचरण देर तक सोते रहने के लिए लज्जित होना तक भूल गये। भूल गये इस नींद के बारे में जो अभी टिप्पणी की गई, उसके लिए क्षुब्ध होना।

आह!

यह टिप्पणी अभी अगर चेतना को आघात न पहुँचाती तो अब तक उस गुड़-मुड़ा कर लुढ़के लड़के को चीख-मार रोने लगना था।....उस समय तो उसे भयंकर रुलाई आ रही थी। रोते-रोते कहना चाह रहा था—'ओ विभू, बारह बजे रात को जोनू फ़क़ीर की कब्र पर जा कर जरूर कुछ कर आया है तू। कब्र की आड से किसी और आदमी ने बात नहीं की थी—फ़क़ीर ही कब्र में से बोला था। तू डिस्टर्ब करने गया था इसीलिए गुस्से में आ कर.

प्रभुचरण को रोना न पड़ा।

कैसी शान्ति!

कैसा चैन!

और शायद—ऐसी शान्ति, ऐसा चैन मिलने के कारण ही बिल्कुल ही अलग-थलग एक बात याद आई प्रभुचरण को।....

नीता की आवाज, आश्चर्य रूप से सुरीली है।

कैसा घिसा-पुछा फाइन। मानो उस स्वर-यन्त्र के भीतर बैठा-बैठा कोई पॉलिश कर रहा है।

जबकि नीता गाना-वाना नहीं गाती है।

कम से कम प्रभुचरण ने किसी दिन नहीं सुना था। अब लग रहा है नीता सीखती तो अच्छा करती। तब कम से कम ऐसा सुन्दर, सुरीला घिसा-घिसा कण्ठ स्वर बरबाद न होता।

अचानक प्रभुचरण को न जाने क्या सूझी।

सुबह-सुबह बिना किसी की मदद के जिन्हें बिस्तर पर बैठना तक मना था, वह ही इस बात को भूल कर हड़बड़ा कर उठ बैठे।

बिस्तर से उतर कर उस धूप आती खिड़की के पर्दे खींचने के इरादे से पाँव नीचे उतारते ही चौंक पड़े। नहीं, लगता है किसी ने देखा नहीं है। देख लेते तो आफत आ जाती।

सुबह-सुबह प्रभुचरण को तूफान का सामना करना पड़ता। उस तूफान की वजह से जो डाल, तिनके, पत्ते फटाफट चेहरे और शरीर पर आ लगते, वे होते धिक्कार, विस्मय, समालोचना, सदुपदेश, डांट-डपट और प्रभुचरण के हार्ट की हालत कैसी गंभीर और शोचनीय स्थिति में है, यह याद दिला देना।

पर इस तूफान का सामना तो करना ही पड़ेगा। सारे घर के लोग मिल कर धन-सामर्थ्य से जिस आदमी को जिन्दा रखने का प्रयास कर रहे हैं, वही आदमी अगर व्यर्थ की दुर्बुद्धिवश स्वयं मृत्यु की ओर पाँव बढ़ाये तो कौन अच्छा कहेगा ?

जरा-सा लड़का राजा तक, प्रभुचरण को इधर-उधर करते देख कर आँख दिखाता है। बड़ी-बड़ी आँखें करके कहेगा, 'बाबाजी, आप फिर अकेले-अकेले बाथरूम में जा रहे हैं ? तुमने सोचा क्या है, बताओ तो ?'

चिरस्वाधीन प्रभुचरण मानों जेलखाने में क़ैद हो गए हैं।...उनके हर कदम पर नियन्त्रण रख रहे थे डाक्टर, वैद्य और शुभाकांक्षीगण।

इसी को क्या जीना कहते हैं ?

सारी पृथ्वी को खो कर, छोटे से एक कमरे में, बैठे-बैठे साँसें गिनते रहना, और खुशी से विगलित होते रहना, यह सोच कर कि अभी भी पृथ्वी पर हूँ।

पृथ्वी की टुकड़ा भर मिट्टी से चिपके रहने के लिए यह लटके रहना कैसी हास्यास्पद निर्लज्जता है !

और इसी के लिये यह जी-जान से साधना हो रही है। इतने से के लिए सबकी डाँट सुनो, धिक्कार सहो।...अचानक प्रभुचरण की इच्छा हुई कि चिल्ला पड़े, क्यों ? क्यों मैं अभी भी उनकी बात सुनूंगा ? मेरी क्या जरूरत है ? वनशोभा तो है नहीं, जिसके लिए जीने की एक बात समझ में भी आती है।

लेकिन चिल्लाए नहीं।

सिर्फ डरते-डरते देखा, किसी ने उनकी यह गलती देखी तो नहीं।

मैं अब तुम लोगों के 'हाय-हाय' के जाल में फँस कर बैठा नही रहूँगा। मैं वही करूँगा जो मेरी मर्जी होगी। उठूंगा, घूमूंगा, जो मर्जी वही खाऊँगा, तुम लोग मना करोगे तो भी नहीं सुनूंगा। बस।...तुम लोग नाराज होगे। तो मेरा क्या बिगड़ेगा ?

मैं क्यों जी-जान से जिन्दा रहने की साधना करूँ। मेरे जीने की जरूरत क्या है ?.... किसके लिए ? मेरे बगैर किसका क्या नुकसान होने वाला है ?....

खूब चिल्ला कर यह बातें प्रभुचरण कहते रहे। खूब चिल्ला कर।....जैसे दूसरे के लाभ-हानि के कारण ही आदमी जीवित रहने की कोशिश करता है, जैसे मनुष्य सिर्फ जीवित रहने के लिए जीवित रहना नहीं चाहता है।....क्या प्रभुचरण ने अपनी इतनी लम्बी जिन्दगी का रास्ता पार करते वक्त कभी देखा नहीं था कि आदमी सिर्फ जान भर बची रहे, इसी के लिए कितनी तकलीफ उठाता है ?

× × ×

कम से कम खड़दाह की खान्तो दादी तो याद ही रहनी चाहिए प्रभुचरण को, याद रहने चाहिए रिसड़ा के हारान फूफा भी।....छेनू ग्वाले के बाप के बूढ़े मामा का आखिरी दृश्य ही कहां भुलाने लायक है ?

माँ-बाप ने बहुत सारी सन्तानों को जन्म दिया था और शायद उसी जन्म के अपराध बोध-वश खान्तो दादी का नाम रखा था खान्तो....अर्थात् 'अब बस करो।'

मानो विधाता पुरुष के आगे हाथ जोड़ कर प्रार्थना की, बहुत हुआ है भगवान् बहुत दिया है, अब शान्त हो जाओ। अब मत भेजो।....लेकिन कोटि-कोटि कर्मों में व्यस्त अन्यमनस्कतावश विधाता पुरुष क्या सुनने की जगह क्या सुन बैठे, कौन जाने ? देखने में आया कि खान्तो दादी के तीन कुल में, जो जहाँ था, वहाँ रथ भेज-भेज कर स्वर्गारोहण का पर्व सम्पन्न कर दिया विधाता पुरुष ने। सिर्फ खान्तो दादी के ही वक्त यह ले जाने का काम बन्द कर बैठे वे।....बिल्कुल ही कोई सम्बन्ध नहीं रहा, न गाड़ी भेजना, न ही दूत के द्वारा सन्देश भेजना।

अतएव खान्तो दादी अनिश्चित काल के लिए पृथ्वी पर रह गईं। रह गईं निस्संग, अवलम्बहीन। दादी के लिए कोई न था, दादी किसी के लिए नहीं रहीं।

प्रभुचरण के लिए यह कल्पना करना सम्भव न था कि यौवन काल में दादी की शक्ल कैसी रही होगी। परन्तु सुनने में आता है कि उन दिनों उनकी तुलना सुन्दरियों में की जाती थी।....बाबाजी के मरते ही उन्होंने न सिर्फ कलाइयों को ही सूना कर डाला, बल्कि सिर के बाल तक कटवा कर उसी सुन्दरता के बारह बजा दिये। और उसके बाद राजा राममोहन राय को भला-बुरा कहती, फिरने लगीं।

एक बार रिश्ते की किसी महिला ने पूछा था—'पति की चिता पर सहमरण के लिए जातीं तो उनके छोटे-छोटे बच्चों को देखता कौन ?'....खान्तो दादी ने तेजस्वी स्वर में कहा था—'देखता भगवान् जो देखने के लिए जिम्मेदार है। बुद्धिहीन राजा राममोहन ने विधवा के सहमरण के रास्ते में काँटे बोये हैं। लेकिन समस्त जगत्-संसार के पानी, आग और विष के बोझ को तो जेब में भर कर नहीं ले जा सका है ? इन अपदार्थों को उनके पैरों पर खड़ा करके खान्तो भी अपना रास्ता देखेगी।'

'कौन सा रास्ता देखोगी ? आत्महत्या करोगी ?'

'सुन कर होगा क्या ? जो भी करूँ, वह तो मेरे मन में है।'

अचानक प्रभुचरण को न जाने क्या सूझी।

सुबह-सुबह बिना किसी की मदद के जिन्हें बिस्तर पर बैठना तक मना था, वह ही इस बात को भूल कर हड़बड़ा कर उठ बैठे।

बिस्तर से उतर कर उस धूप आती खिड़की के पर्दे खींचने के इरादे से पाँव नीचे उतारते ही चौंक पड़े। नहीं, लगता है किसी ने देखा नहीं है। देख लेते तो आफत आ जाती।

सुबह-सुबह प्रभुचरण को तूफान का सामना करना पड़ता। उस तूफान की वजह से जो डाल, तिनके, पत्ते फटाफट चेहरे और शरीर पर आ लगते, वे होते धिक्कार, विस्मय, समालोचना, सदुपदेश, डाँट-डपट और प्रभुचरण के हार्ट की हालत कैसी गंभीर और शोचनीय स्थिति में है, यह याद दिला देना।

पर इस तूफान का सामना तो करना ही पड़ेगा। सारे घर के लोग मिल कर धन-सामर्थ्य से जिस आदमी को जिन्दा रखने का प्रयास कर रहे हैं, वही आदमी अगर व्यर्थ की दुर्बुद्धिवश स्वयं मृत्यु की ओर पाँव बढ़ाये तो कौन अच्छा कहेगा?

ज़रा-सा लड़का राजा तक, प्रभुचरण को इधर-उधर करते देख कर आँख दिखाता है। बड़ी-बड़ी आँखें करके कहेगा, 'बाबाजी, आप फिर अकेले-अकेले बाथरूम में जा रहे हैं? तुमने सोचा क्या है, बताओ तो?'

चिरस्वाधीन प्रभुचरण मानों जेलखाने में क़ैद हो गए हैं।...उनके हर कदम पर नियन्त्रण रख रहे थे डाक्टर, वैद्य और शुभाकांक्षीगण।

इसी को क्या जीना कहते हैं?

सारी पृथ्वी को खो कर, छोटे से एक कमरे में, बैठे-बैठे साँसें गिनते रहना, और खुशी से विगलित होते रहना, यह सोच कर कि अभी भी पृथ्वी पर हूँ।

पृथ्वी की टुकड़ा भर मिट्टी से चिपके रहने के लिए यह लटके रहना कैसी हास्यास्पद निर्लज्जता है!

और इसी के लिये यह जी-जान से साधना हो रही है। इतने से के लिए सबकी डाँट सुनो, धिक्कार सहो।...अचानक प्रभुचरण की इच्छा हुई कि चिल्ला पड़े, क्यों? क्यों मैं अभी भी उनकी बात सुनूंगा? मेरी क्या ज़रूरत है? वनशोभा तो है नहीं, जिसके लिए जीने की एक बात समझ में भी आती है।

लेकिन चिल्लाए नहीं।

सिर्फ डरते-डरते देखा, किसी ने उनकी यह गलती देखी तो नहीं।

मैं अब तुम लोगो के 'हाय-हाय' के जाल में फँस कर बैठा नहीं रहूँगा। मैं वही। जो मेरी मर्जी होगी। उठूंगा, घूमूंगा, जो मर्जी वही खाऊँगा, तुम लोग मना तो भी नहीं सुनूंगा। बस।...तुम लोग नाराज़ होगे। तो मेरा क्या बिगड़ेगा?

मैं क्यों जी-जान से जिन्दा रहने की साधना करूँ। मेरे जीने की जरूरत क्या है ?.... किसके लिए ? मेरे बगैर किसका क्या नुकसान होने वाला है ?....

खूब चिल्ला कर यह बातें प्रभुचरण कहते रहे। खूब चिल्ला कर।....जैसे दूसरे के लाभ-हानि के कारण ही आदमी जीवित रहने की कोशिश करता है, जैसे मनुष्य सिर्फ जीवित रहने के लिए जीवित रहना नहीं चाहता है।....क्या प्रभुचरण ने अपनी इतनी लम्बी जिन्दगी का रास्ता पार करते वक्त कभी देखा नहीं था कि आदमी सिर्फ जान भर बची रहे, इसी के लिए कितनी तकलीफ उठाता है ?

× × ×

कम से कम खड़दाह की खान्तो दादी तो याद ही रहनी चाहिए प्रभुचरण को, याद रहने चाहिए रिसड़ा के हारान फूफा भी।....छेनू ग्वाले के बाप के बूढ़े मामा का आखिरी दृश्य ही कहाँ भुलाने लायक है ?

माँ-बाप ने बहुत सारी सन्तानों को जन्म दिया था और शायद उसी जन्म के अपराध बोध-वश खान्तो दादी का नाम रखा था खान्तो...अर्थात् 'अब बस करो।'

मानो विधाता पुरुष के आगे हाथ जोड़ कर प्रार्थना की, बहुत हुआ है भगवान् बहुत दिया है, अब शान्त हो जाओ। अब मत भेजो।....लेकिन कोटि-कोटि कर्मों में व्यस्त अन्यमनस्कतावश विधाता पुरुष क्या सुनने की जगह क्या सुन बैठे, कौन जाने ? देखने में आया कि खान्तो दादी के तीन कुल में, जो जहाँ था, वहाँ रथ भेज-भेज कर स्वर्गारोहण का पर्व सम्पन्न कर दिया विधाता पुरुष ने। सिर्फ खान्तो दादी के ही वक्त यह ले जाने का काम बन्द कर बैठे वे।....बिल्कुल ही कोई सम्बन्ध नहीं रहा, न गाडी भेजना, न ही दूत के द्वारा सन्देश भेजना।

अतएव खान्तो दादी अनिश्चित काल के लिए पृथ्वी पर रह गईं। रह गईं निस्संग, अवलम्बहीन। दादी के लिए कोई न था, दादी किसी के लिए नहीं रहीं।

प्रभुचरण के लिए यह कल्पना करना सम्भव न था कि यौवन काल में दादी की शक्ल कैसी रही होगी। परन्तु सुनने में आता है कि उन दिनों उनकी तुलना सुन्दरियों में की जाती थी।....बाबाजी के मरते ही उन्होंने न सिर्फ कलाइयों को ही सूना कर डाला, बल्कि सिर के बाल तक कटवा कर उसी सुन्दरता के बारह बजा दिये। और उसके बाद राजा राममोहन राय को भला-बुरा कहती, फिरने लगीं।

एक बार रिश्ते की किसी महिला ने पूछा था—'पति की चिता पर सहमरण के लिए जातीं तो उनके छोटे-छोटे बच्चों को देखता कौन ?'....खान्तो दादी ने तेजस्वी स्वर में कहा था—'देखता भगवान् जो देखने के लिए जिम्मेदार है। बुद्धिहीन राजा राममोहन ने विधवा के सहमरण के रास्ते में काँटे बोये हैं। लेकिन समस्त जगत्-संसार के पानी, आग और विष के बोझ को तो जेब में भर कर नहीं ले जा सका है ? इन अपदार्थों को उनके पैरों पर खड़ा करके खान्तो भी अपना रास्ता देखेगी।'

'कौन सा रास्ता देखोगी ? आत्महत्या करोगी ?'

'सुन कर होगा क्या ? जो भी करूँ, वह तो मेरे मन में है।'

लेकिन जो कुछ मन में था, वह दादी के मन मे ही रह गया था, इसका प्रमाण प्रभुचरण के पास है। प्रभुचरण के स्मृतिपटल पर जो चित्र रह गया है, वह है, दादी की झुकी हुई कमर और धनुप-सी मुड़ गई पीठ लिए-लिए लगभग घिसटती हुई खाना बनातीं, मसाला पीसतीं, सब्जी काटतीं और गंगा किनारे जाकर सिर हिला-हिला कर बर्तन माँजतीं। बार-बार छोटे से एक घड़े को भर-भर कर लातीं। घर में रखे घड़े को भर कर रखतीं....ताकि बेवक्त काम आ सके।....पड़ोसी अगर कृपा कर कुछ करना चाहते तो मना करतीं। बेहद छुआछूत मानती थीं। उनके लिए सभी का जल अचल' था।

पड़ोस की बैद्यनाथ की माँ कहती—'अरे ताई, गंगाजल का तो छूत नहीं होता है, लाओ न, मैं घड़ा भर कर ला दूँ....'

खान्तो दादी हाँ-हाँ कर उठतीं।

कहतीं, 'जब तक आँख है, क्षमता है, तब तक करती रहूँ। अक्षम हो जाऊँगी तब तो तुम लोग करोगे ही।'

परन्तु इस 'अक्षम' होने के विरुद्ध कम अभियान नहीं चला रही थीं दादी। हर सुबह गंगा नहाने के बाद लाठी टेकतीं बिसू वैद्य के दरवाजे पर जरूर पहुँचतीं। नींद से जागते ही वैद्य जी चौकन्ने रहते, अभी फटी-फटी कफ से घड़घड़ाती आवाज में शिकायत करेंगी, 'ओ बिसू, बिसू क्या 'खाक' दवा दी थी कल? कुछ नहीं हुआ। रात भर खाँसते-खाँसते जान निकली है। सीने में दर्द .. जान निकली जा रही थी।....जरा देख-सुन कर ठीक से दवा दे तो।... साथ ही जरा हाजमें की दवा भी देना, जो कुछ खाती हूँ, पेट गड़बड़ हो जाता है—पसलियों में जैसे सुई चुभती हो।'

वैद्य का घुँघराले बालों वाला वह चेला कह उठता, 'दादी, ऐसा क्या खाती हो?'

'अरे मर! लौंडे की बात सुनो। सुनूँ तो, खाऊँगी क्या? तेरी तरह क्या दिन-रात पुलाव उड़ा रही हूँ? रात को जरा-सा साबूदाना भिगो कर और दो दाना भुने चावल का चूरा। खाने के नाम पर दिन का वही चावल। उस पर क्या दाल-चावल खाती हूँ? महीने भर में तीन-चार बार ही तो दाल चढ़ाती हूँ। खाने के साथ जरा सी सब्जी और खटाई और उसके साथ पोस्तादाने के दो पकौड़े, या एक दाल की पाड़ी या बरी रसेदार।....रोज-रोज सब्जी ला ही कौन रहा है? यहीं गंगा किनारे सागपात वाली बैठती हैं, इसीलिए। पूरे साल की गुड़, इमली, आलू मौजूद रखती हूँ। इसी से बची हूँ वरना तो बिना खाये मरना पड़ता।'

वैद्य जी दवाइयाँ सजाते हुए बोले, 'उम्र कितनी हुई?'

यह सवाल सुनते ही दादी नाराज हो जातीं। कहतीं, 'पैदा होते वक्त जच्चाखाने के दरवाजे पर बैठ कर दिन-तारीख नहीं लिखी थी, बिसे। हुआ होगा, सौ-दो सौ हुआ होगा। इससे क्या? दवा नहीं देगा?'

सुन कर जल्दी से वैद्य जी जीभ काटते हुए हाथ जोड़ कर जो कुछ कहते उसका

अर्थ था—'ऐसी भयानक बात कानों से सुनना भी पाप है। दवा कैसे नहीं दूँगा? दादी जैसे लोग जितने दिनों तक जीवित रहेंगे उतना ही देश का भला होगा।....बिसू के अहोभाग्य हैं कि उनकी चिकित्सा करने का पुण्य मिला है।'

इस पर भी दादी क्षुब्ध और क्रुद्ध होतीं।

'चिकित्सा कैसी? अपनी चिकित्सा की बड़ाई क्या कर रहा है, बिसे? मुझे क्या कभी कोई कठिन बीमारी हुई है जो इलाज करेगा? पुराना कल-कब्जा है—बीच-बीच में यहाँ-वहाँ ज़रा तेल डालना पड़ता है।...इसीलिए तेरे पास आती हूँ। इलाज तू जा कर मेरे दुश्मन का कर। इस वक्त अच्छी तरह से दो पुड़िया-उड़िया दे तो। गोली मत देना, निगलते वक्त गले में फँसती है।'

घुंघराले घने बालों वाला फिर कह बैठता, 'इतने-इतने सहजन के डंठे तो तुम दादी, मसूढ़ों से कुचल-कुचल कर अच्छा खासा खा जाती हो और गोली तुमसे नहीं निगली जाती है?'

खान्तो दादी हाथ बढ़ा कर दवा लेकर, लाठी के सहारे वापस जाते वक्त पलट कर जलती निगाहों से कुछ देर तक उसे देखने के बाद बोली, 'यह अभागा तेरे किस काम आता है रे बिसे?'

प्रश्न पूछती है, लेकिन उत्तर सुनने के लिए नहीं रुकती है।

घने बालों वाला वैद्य जी से बोला—'अभी तक पोस्ते के पकौड़े और दाल की पपड़ी? बाप रे! ऐसे खानदानी माल हम लोगों के पेट में जाकर तो बोलना शुरू कर देते हैं। यह बुढ़िया अभी बहुत दिनों तक पृथ्वी पर रह कर हवा-पानी का आनन्द उठाएगी और आपको तंग करती रहेगी, देखियेगा।'

उसकी भविष्यवाणी झूठी साबित नहीं हुई थी।

और बहुत दिनों तक बिसू वैद्य को खान्तोबाला तंग करती रहीं। कहतीं, 'बुढ़िया समझ कर लापरवाही से कूड़ा-करकट भर कर पुड़िया मत देना, रे बिसू! किताब पढ़ कर, देख-सुन कर जतनपूर्वक दवा दे। सुना है, तेरे शास्त्र में मकरध्वज को अचूक दवा मानते हैं, उसे क्यों नहीं देता है?'

हालांकि अन्त में खान्तोबाला ने प्राण त्यागे थे। खड़दाह के गंगा के किनारे उनकी अन्तिम-क्रिया भी हुई थी। पर किस दशा में, यह अब प्रभुचरण को याद नहीं। ....हाँ, उनसे पहले ही बिसू वैद्य गंगा-लाभ कर चुका था, यह याद है।

और हारान फूफा?

रिसड़ा के हारान फूफा।...रिसड़ा का बड़ा भारी मकान। बरामदा, आँगन और 'झूलनमच' नामक भगवान् के मंदिर समेत विशाल सूने महल में जो सिर्फ दो नौकरों के साथ रहते थे। कोई मिलने जाता तो कह बैठते, 'तुम लोग ज़रा-सा ज़हर ला

कर दे सकते हो ? जरा-सा जहर ।'

हारान फूफा के पास रुपया-पैसा था लेकिन अपना कहने को कोई नहीं था।

वे उठ नहीं सकते थे । हारान फूफा को सोलह वर्ष हो गए पक्षाघात का शिकार हुए । वही नौकर आकर करवट बदल देते तो करवट बदलते, खिलाते तो खा लेते । नहलाते तो नहा लेते ।

फिर भी सभी काम बड़े राजकीय ढंग से हुआ करता था । चिराभ्यास की रीति के अनुसार सुगन्धित तेल आता, क़ीमती तौलिया आता, ऐसे बड़े-बड़े ठंडे और गरम पानी के अलग-अलग गमले आते ।...और खाना ।

कभी-कभी प्रभुचरण की नजर खाने पर पड़ जाती । देखते मछली का सिर, गोश्त का शोरवा, मुर्गी का अण्डा, खालिस दूध, गाय का घी, छेना, सन्देश, गोविन्द भोग, चावल इत्यादि जैसे पुष्टिकर खाद्य फूफा के भोजन में परिवेशित हुआ करते । कारण, डाक्टर ने ऐसा निर्देश दिया है । अच्छा न खाने-पीने से ताकत कम हो जाएगी।

बक्स में पैसा रहे तो बाजार से सामान खुद ब खुद चल कर घर पहुँच जाता है । इसीलिए डाक्टर भी नियमित आया करते और प्रिसुक्रिप्शन मुताबिक दवाएँ भी आ जाती । हारान फूफा उनका सद्व्यवहार करने में कोई कमी नहीं बरतते । फिर भी जैसे ही कोई जाता, शिकायत भरे उदास और करुण स्वरों में कहते, 'तुम लोग मुझे जरा-सा विष दे सकते हो ? थोड़ा-सा जहर ।'

जो सुनता उसे सिर झुका लेना पड़ता क्योंकि इस आग्रह के पीछे एक भयावह इतिहास छिपा था । कभी हारान फूफा की पत्नी, पुत्र, कन्या, भाई की पत्नी इत्यादि परिवार के सोलह व्यक्ति एक साथ गायब हो गए थे । लाच पर कहीं घूमने जा रहे थे कि अचानक लांच के डूब जाने से सब-के-सब को जल-समाधि मिली ।

ऐसी समाधि कि एक भी लाश नहीं मिली । गायब हो जाने के अलावा इसे और क्या कहेंगे ?....

सरकारी आफिस में हारान फूफा अच्छी नौकरी करते थे । उन दिनों कर्मरत थे । कुछ दिनों तक छुट्टी लेकर यहाँ-वहाँ घूम कर फिर रिसड़ा लौट आए और उसी विशाल पुराने महल में आ कर रहना शुरू किया । और पहले के नियम माफिक यथा रीति डेली पैसिंजरी करके आफिस आने-जाने लगे ।

उपाय ही क्या था ? सचमुच ही गले में फन्दा डाल कर लटक नहीं सकते हैं । जहर जुटा कर गले में डाल भी तो नहीं सकते हैं ।

फिर भी किसी के जाते ही कहते, 'लाये नहीं, मेरे लिये जरा-सा जहर नहीं लाये ! बेटा, अगर हिलने-डुलने की क्षमता होती तो तुम्हारी खुशामद नहीं करता । भगवान् ने तो हर तरफ से मारा है । बिस्तर के चादर का फन्दा गले में लगा कर इस यन्त्रणा का अन्त कर सकूँ, वह उपाय भी तो नहीं रखा है । हाथ तक उठाने का दम नहीं है ।'

हारान फूफा की वर्तमान दशा देख कर और अतीत के इतिहास का स्मरण कर,

किसके होंठों तक झूठी सान्त्वना के दो शब्द तक न आते। अतएव इधर-उधर की बातें छेड़नी पड़तीं।

इसी तरह हारान फूफा भी बहर के सन्दर्भ में बातें शुरू कर देते। शुरू करते नौकरों के दुर्व्यवहार की बात। पुराने नौकर होने पर भी वे मालिक के साथ कैसी बेईमानी कर रहे हैं, उसकी फेहरिश्त सुनाने बैठ जाते।...वे लोग उनके दूध में पानी मिलाते हैं, मछली छोटी देते हैं, गोश्त के नाम पर सिर्फ हड्डियाँ ही रहती हैं, अण्डा या मुर्गी अक्सर ही न लाकर कह देते हैं कि मिली नहीं। रिसड़ा के बाजार में अगर नहीं हैं तो कलकत्ते से मँगवाया जा सकता है। पड़ोस के ढेरों आदमी रोज डेली पैसेंजरी नहीं कर रहे हैं क्या? उनसे नहीं मँगवाया जा सकता है? काफी जोर डाल कर कहते, मुझे क्या पैसों की कमी है? और सब कुछ तो मेरे उस गुणों की खान, गुणाधार कालीचरण के हाथों में है, बैंक जा रहा है, रुपये निकाल रहा है। दस्तखत नहीं कर सकता हूँ। सब उसी के भरोसे है। मैंने क्या विश्वास करने में कोई कंजूसी दिखाई है? फिर? फिर मेरे साथ डिसऑनेस्टी क्यों करते हैं?...डॉक्टर का कहना है कि पुष्टिकर खाना और सही तरह की मालिश ही इस बीमारी का इलाज है। सो अगर खाना-पीना ही ठीक नहीं हुआ तो क्या खाक मेरी उन्नति होगी? और यह मालिश? जिस साले को इस काम के लिये रखा है वह महीने में पाँच नागे करता है। यह है दुनिया, समझे!'

. .

सो यही कहता था छेनू ग्वाले का बूढ़ा मामा भी, 'यही पृथ्वी है, समझी माता जी। लड़के खाने को नहीं देते हैं। भाँजा अपने घर ले आया था, पर वह भी मर गया। भाँजे की बहू को औरत कौन कहेगा, वह तो पुलिस की दरोगा है। कहती है, मेरा ही ठिकाना नहीं, इन बच्चों को लेकर कहाँ जाऊँ, क्या खाऊँ, तुम्हें क्या खिलाऊँगी? जाओ, अपना रास्ता देखो। दो, माँ इस अभागे को दो मुट्ठी खाने को दो। जीवन धारण तो करना ही है न!'

यह 'माताजी' हैं प्रभुचरण के दूर के रिश्ते की एक बुआ की सास। किसी काम से प्रभुचरण को कुछ दिनों तक उस घर में रहना पड़ा था, तभी यह दृश्य देखा था। शरीर पर मैली-कुचैली फटी एक ऊँची धोती, शरीर के ऊपरी हिस्से में किसी का दान किया आधी बाँह वाली कमीज का ध्वंसावशेष, तेलविहीन रूखा सिर, धूल धूसरित, शुष्क चमड़ी। यही है छेनू ग्वाले का मामा।

दोपहर होते न होते, शायद किसी खाने की दूकान से एक पत्तल ले आता और सीढ़ियों के नीचे बैठ जाता। रह-रह कर हुँकारता—'कहाँ गईं माता जी, दो दाने डाल जाओ। मेरे पित्त पड़ती है। सूर्यदेव के चढ़ते ही चक्कर आने लगता है।'

सुबह भी यही बात थी।

सुबह ब्रेकफास्ट में विलम्ब होने पर सुना है उसका सिर चकराने लगता है।

इसीलिये चाय-रोटी के फेर में बगल वाले घर में सुबह से ही जा बैठता। जरा ज्यादा बैठना पड़ जाता तो पित्त पड़ने की बात छेड़ देता।

यह सब प्रभुचरण के शैशव-बाल्य काल की घटनाएँ थीं। जब 'गृहस्थ-गृह' नामक एक शब्द था और उस शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक था।

गृहस्थ-गृह के द्वार पर से, मनुष्य तो दूर की बात, कुत्ते-बिल्ली भी अगर भोजन प्राप्त करने के लिए आ बैठें, तो विमुख नहीं किया जाता था।....एक आदमी पत्तल बिछा कर आ बैठे और उस पर खाना न परसा जाये, ऐसे अनाचार की बात सोचना भी पाप है। कहावत ही है, मुफ्त बेहया ने पत्तल बिछाई है, अब कौन बेहया होगा जो खाना नही परसेगा !

इसीलिये इन माताजी को हर रोज के लिए सेर भर मोटे चावल का भात बनाना पड़ता। आखिरकार 'गृहस्थ' के कल्याण का ध्यान भी तो रखना होगा। हर महीने तीस सेर के लगभग चावल का नुकसान क्या कुछ ज्यादा हुआ ! उस नुकसान के फेर मे भौतिक नुकसान कितना अधिक हो सकता है, इस बात का हिसाब और कोई रखे न रखे, गृहस्थ गृहणी अवश्य रखती थी। उन्हे यह हिसाब रखना ही पड़ता है....हो सकता है ग्रहस्वामी की नजर बचा कर ऐसा करना पडता है। या तो वयस्क पुत्र-पुत्रियों से तर्क-वितर्क करना पड़ता है.......'कुसस्कार' का अपवाद भी मानना पड़ता है।

बहू-बेटी ? नही, उनकी बात कहाँ उठ रही है।

उनकी राय मानता ही कौन है ? उन्हे अगर इस 'कुसंस्कार' के जाल में न भी फँसा सके, धमकाया नही जा सकता ? अतएव गृहणी की नीति ही गृहस्थी की नीति है।

इसीलिये अगर किसी को कुछ कहना है, किसी की कोई फरियाद है तो माता जी के सामने पेश करते ही काम बन जाता।...छेदू ग्वाले के इस मामा को प्रभुचरण ने और भी बहुत दिनों बाद देखा था। प्रभुचरण ने उन्ही माता जी के मानिकतला वाले घर में इस आदमी को देखा था। अब चल फिर नही सकता था। उसी घर के पिछवाड़े की एक गली में हर वक्त पड़ा रहता। रात को उठ कर इस घर के लकड़ी-कोयले की कोठरी में जाकर सो जाता। सिर्फ मरते-मरते दो-चार बार अन्दर के आँगन मे आता और क्षीण स्वरों में चिल्लाता, 'दो माँ, जल्दी से दे दो। बैठने की क्षमता नही है, माँ। किसी तरह से मरते-मरते उठ कर आया हूँ। क्या करूँ, जीवन धारण तो करना ही है।'

बात करता तो मुंह से लार टपकने लगती। चेहरा देख कर डर लगता।

उसके पीछे बच्चे हँसा करते, 'जीवन धारण क्यो करना जरूरी है, यह बात दादी, एक बार पूछूं ?'

दादी डाँटने लगती।

फिर धीरे से कहती, 'जीवन चीज ही ऐसी है रे, कि उसे रखने के लिये चेष्टा

करनी ही पड़ती है। .. यह पृथ्वी बड़ी ममतामयी है, माँ की तरह। शिशु जैसे माँ की गोद से उतरना नहीं चाहता है, मनुष्य की भी वैसे ही पृथ्वी की मिट्टी छोड़ने की इच्छा नहीं होती है।'

इतना देखा है प्रभुचरण ने। और भी क्या क्या देखा है, फिर भी प्रभुचरण चिल्ला-चिल्ला कर विद्रोही आवाज़ में कह रहे हैं, 'बता सकते हो मुझे क्यों जीना होगा? किसके लिये? मेरे अभाव में किसका क्या नुकसान होने जा रहा है?

चिल्ला कर ही कह रहे है, 'खूब चिल्ला कर, तब भी घर के किसी व्यक्ति के कानों से उनकी आवाज़ नहीं टकरा रही है। बातें प्रभुचरण के स्वर-यन्त्र से बाहर न निकल कर, उसी में चक्कर काट रही हैं और प्रभुचरण के मस्तिष्क के हर कोष से टकरा रही है। चेतना के बीच उत्तेजना की सृष्टि कर रही हैं।

और!

और अनुच्चारित इस तीव्र विद्रोह-वाणी का भार वहन करते हुए निर्वाक् प्रभुचरण भयभीत होकर इधर-उधर देख रहे हैं। उनका यह गलती से अपने आप खाट से उतरना, किसी गार्जियन ने देखा तो नहीं?

सच पूछा जाये तो उनके गार्जियन बहुत हैं। घर का हर प्राणी। छोटे पोते से लेकर नौकर मधु तक। यहाँ तक कि आने वाले रिश्तेदार भी उसी भूमिका को अदा करने लगते हैं।....हालांकि उन्हें यह मौका देते हैं प्रभुचरण के अपने ही लोग। उनके सामने जैसे ही कोई आता (प्रभुचरण के सामने), अस्वस्थ प्रभुचरण अपनी बीमारी की गम्भीरता को न समझ कर कैसे-कैसे अत्याचार करते हैं, किस कदर बहू-बेटे के सिर हो जाते हैं और डॉक्टर बेहद गुस्सा किया करते हैं...यही बातें विस्तारपूर्वक बताने बैठ जाते।...

जैसे अदालत में जज के सामने मुकद्दमा पेश कर रहे हों।

फिर?

ऐसा अवसर कोई छोड़ता है भला? न्यायाधीश बन बैठने का मौका, राय देने का अवसर!

लेकिन क्या अभी से? या सिर्फ यही लोग? वनशोभा में क्या बुरी आदत नही थी? नाते-रिश्तेदार और दोस्तों के आगे प्रभुचरण की आलोचना करने नहीं बैठ जाती थीं? उस आलोचना में यद्यपि दोषारोपण से अधिक आक्षेप की झलक मिलती।.... 'काम-काम' कर प्रभुचरण किस तरह से शरीर पर अत्याचार कर रहे हैं। समयानुसार नहाना-धोना नहीं। आराम तक समय से न कर के वनशोभा तक को तंग कर देते, इस बात की फेहरिस्त सुनाने बैठ जाती।

ताज्जुब है!...सबसे अधिक प्रिय पात्र को मनुष्य क्यों विपक्षी परन्तु ऐसा ही होता है। यही मनुष्य का स्वधर्म है।....तरुणी माँ भी अपने

शरारतों, जिद्द और बात न मानने की आदत की विशद व्याख्या करने बैठ जाती है।.... कौन जाने, इसके पीछे कौन सा मनोभाव छिपा होता है!

प्रिय प्रसंग का सुख? या प्रिय पात्र को त्रुटिहीन देखने की लालसा से त्रुटियों को उसकी आँखों के सामने कर देना? प्रभुचरण को हालाँकि ध्यान नहीं आता कि वे भी यही काम करते थे। करते हैं।

इन तीन लड़के-लड़कियों से अधिक उनका प्रिय और कौन है? इनके सिर में जरा-सा दर्द भी होता तो सारा संसार अंधकारमय लगता। फिर भी जितनी शिकायतें थीं उन्हीं के विरुद्ध थीं।

मधु मुँह धोने का सामान लेकर कमरे में आया। बगल वाली मेज पर तौलिया, साबुन, टूथब्रश और टूथपेस्ट रखा। कमरे के कोने में रखा स्टूल घसीट कर ले आया। उस पर एनामेल की चिलमची रखी। फिर वही गम्भीरतापूर्वक प्रभुचरण की गर्दन के नीचे एक हाथ डालता हुआ बोला—'बाबाजी, उठिये।'

प्रभुचरण बोले, 'रहने दो, गर्दन पकड़ने की जरूरत नहीं है। मैं ही धीरे-धीरे उठता हूँ।'

मधु और भी गम्भीर हो कर बोला, 'सुबह-सुबह अपने आप उठने के लिये डॉक्टर साहब ने मना किया है न?'

मधु के बोलने का यही तरीका है। 'बाबाजी' की 'सेवा' करने आयेगा तो और रंग जमाने की कोशिश करता है। पर हाँ, काम अच्छी तरह करता है। कभी अगर मधु अनुपस्थित रहता तो रसोईघर में काम करने वाला निमाई आता, इस सेवाकार्य को करने के लिये। वह आकर इतना झंझट पैदा करता कि प्रभुचरण अपना गुस्सा न रोक पाते। चारों तरफ पानी छींटता, मुँह धोने वाली चिलमची के हाथ से बिस्तर छू लेता, उतारे कपड़ों के साथ धुले कपड़े मिला देता। और गुस्सा होने पर कहता, 'बिस्तर पर लेटे मरीज हैं, आपको इतना छुआछूत मानने की क्या जरूरत है?'

प्रभुचरण इस आदमी को फूटी आँख पसन्द नहीं करते थे।

मधु जैसा बातों में संयमी है वैसा ही संयमी है काम में भी।

प्रभुचरण असन्तुष्ट होकर कहते, 'डॉक्टर ने दो-एक बार बाथरूम जाने का हुकुम तो दिया है....और एक बार चला जाऊँगा तो क्या हो जायेगा?'

मधु डाक्टरों की तरह कहता, 'सुबह नहीं। ब्रेकफास्ट के बाद आप जो चाहे कर सकते हैं।'

मुँह धोना खत्म हुआ तो वह नित्य परिचित घिसे-पिटे ब्रेकफास्ट का समान ले आया, मधु। सामने की मेज पर ट्रे उतारी। अलग-अलग बर्तनों में सुन्दर ढंग से सजा लाया था दो टोस्ट, एक अण्डे का पोच, इतना-सा पनीर और जरा-साउबला सेब।

इन चीजों की तरफ चिढ़ कर प्रभुचरण ने एक नजर डाली फिर बोले, 'अण्डे तलने की महक आ रही थी, किसके लिये तल रहा था रे ?'

मधु ने स्थिर आवाज में उत्तर दिया, 'सभी के लिये । आज छुट्टी के दिन की सुबह है । सेकेन्ड राउण्ड चाय के साथ फ्रेंचटोस्ट खाया जा रहा है ।'

फ्रेंचटोस्ट !

प्रभुचरण ने दबी जुबान कहा, 'भइया लोगों से जा कर पूछ न, मुझे भी एक मिल सकती है या नहीं !'

प्रभुचरण को 'बाबाजी' कहता, पर उनके लड़के-बहू को भइया भाभी कहता, मधु ऐसा ही बेहिसाबी सम्बोधन करता है ।

'अरे बाप रे ! मुझसे यह न होगा ।....जो कुछ मिला है खा लीजिये, बाबाजी । भइया लोग अभी यहाँ आएँगे । कुछ कहना है उन्हे आपसे ।'

प्रभुचरण चौंक पड़े ।

क्या बात कहनी है ? कौन सी बात कहनी है ?

क्या बात ? प्रभुचरण की सुबह की असतर्कतापूर्ण घटना किसी ने देख ली है क्या ? या मन ही मन चिल्ला कर प्रभुचरण जो कुछ कह रहे थे उसे समझ लिया है ?

गोद पर तौलिया बिछा कर खाने की प्लेट रखते हुए मुँह बिगाड़ कर बोले, 'मेरे साथ कौन सी बात करनी है ?'

मधु गम्भीर आवाज में बोला, 'नही जानता ! नीचे कहा-सुनी कर रहे थे कि जरूरी कुछ बात है ।'

मधु उनका हाथ-मुँह पोंछ कर चला गया । तकिए पर सिर टिका कर आतंकित हृदय लिये प्रभुचरण सोचते रहे, 'कौन सी बात, क्या बात हो सकती है ?...ये दोनो भाई अलग होना चाहते है ? क्या मकान में हिस्सा कर देने की बात कहने आ रहे हैं ? ....वरना उनसे कौन सी जरूरी बात करनी है ?

नहीं ! सुबह खाट से उतरना ठीक नहीं हुआ । सीने में जाने कैसा-कैसा हो रहा है ।'

आतंक का अन्त हुआ ।

प्रसन्न और मुस्कुराता चेहरा लिए दोनों बेटे कमरे में आए । ध्रुव और शुभ, दो भाई । वनशोभा जिन्हें हमेशा ही एक-से कपड़े-जूते पहनाती थीं, एक ही स्टाइल से बाल काटती थी ।....दोनों के चेहरे में समानता की जगह पर असमानता ही अधिक थी, फिर भी, उन दिनों बहुत लोग पूछा करते—जुड़वे हैं क्या ? . .

प्रधान कारण था शुभ का स्वास्थ्य । उम्र में ढाई-तीन साल का छोटा होते हुए भी बड़े भाई के बराबर लम्बा था । और जितनी भी असमानता क्यों न हो, सहोदर दोनों भाइयों के बीच कहीं न कहीं समानता तो रह ही जाती है । ऐसी समानता जिसे घर वाले भले ही न समझ सकें, बाहरी लोगों की नजरो से न बच पाता ।....उस पर वह

एक-सा पहनावा।

वनशोभा कहा करती, 'क्या करूँ ? और लोगों की तरह बड़े के कपड़े-जूते पहना कर छोटे को मैं पाल नहीं सकती हूँ। ध्रुव कितना छोटा लगता है ? इसके बाद कहीं शुभ के छोटे हो गए कपड़े ध्रुव को न पहनने पड़ जाएँ।'

असल में 'शुभ बड़ा लगता है' कहते हुये माँ की जीभ लड़खड़ाती है। इसीलिए, सारा कसूर ध्रुव पर डाल देतीं। वनशोभा के हाथ से छुटकारा पाकर यद्यपि जिसकी जो इच्छा हुई उसने वही जूता-कपड़ा पहना है।

वनशोभा ने भी कभी उन पर नजर नहीं डाली। वह तब अपनी 'नई गुड़िया' को लेकर, व्यस्त थी। नित्य नई फ्राकें, रिबन, क्लिप में मस्त थी। टूलू भाइयों से बहुत छोटी थी। बचपन में गुड़िया ही लगती थी टूलू।

क्या अब नहीं है ?

बालों के स्टाइल, पेंट की गई भौंहें, सुरमा लगी आँखें, पेंट किये गाल और लिपिस्टिक से रंगे होठ देख कर उसे सिर्फ एक गुड़िया ही कहा जा सकता है। साड़ी कपड़े भी जैसे हल्के बारीक रंग-बिरंगे पहना करती है, वह भी गुड़िया के लायक ही होते हैं।

अचानक प्रभुचरण ने सोचा, टूलू कब आई थी ? क्या बहुत दिनों से देखा नहीं है ? उसके बाद लड़कों की तरफ देखा। इतने दिनों बाद, न जाने क्यों प्रभुचरण को लगा, दोनों का चेहरा बहुत मिलता है। न जाने क्यों ऐसा लगा। दोनों का ही मुस्कुराता चेहरा लग रहा है न ? जब कि पोशाकों में अन्तर है।

ध्रुव की घरेलू वेष-भूषा है, गहरे नीले रंग की सिल्क की लुंगी और आधे बाँह वाली जालीदार बनियान। शुभ का घर-बाहर का एक ही ड्रेस है—चेक ट्राउजर और हल्के एक ही रंग की बुसशर्ट। कुछ दिनों तक कोशिश की थी कि घर की पोशाक के रूप में सफेद पायजामा और लखनऊ के चिकन का कामदार कुर्ता पहने लेकिन चला नहीं। हर वक्त दूध सा सफेद और इस्त्री और क्रीज बनाये रखने में बड़ा हंगामा है।

जबकि इन दोनों चीजों का सफेद होना भी जरूरी है।

शर्ट-पैण्ट के साथ कोई झमेला नहीं। माड़ नहीं चाहिये, लोहा करने की जरूरत नहीं, बस फींच कर डाल दिया।

इसके अलावा इसका एक कारण भी है।

शुभ की भावी मालकिन अन्यत्र रह कर भी, शुभ के आहार-विहार, चाल-चलन पर विशेष नियन्त्रण रखती है।....वह नहीं चाहती है कि शुभ कुर्ता-पायजामा पहन कर लड़खड़ाता फिरे।....इस तरह के लोगों को वह फूटी आँख नहीं देख सकती।

और नीता की 'आधीन' प्रजा तो नीता के नियन्त्रण में है ही। नीता के बाप-भाई सभी घर में लुंगी-बनियान पहनते हैं। उसके अनुसार 'इसमें आराम है।'

परन्तु प्रभुचरण ने उनका पहनावा नहीं, देखा उनका चेहरा। लगा, बिल्कुल एक-सा ही। आँखें, मुख से बोझिल हो उठीं। लज्जित हो कर सोचने लगे, छिः छिः,

अब तक मैं क्या सोच रहा था ? आश्चर्य ! अचानक ऐसी अद्भुत बात मेरे दिमाग़ में आई ही क्यो ?...दोनों भाई अलग होना चाहते हैं, इसीलिये वसीयत लिखने पर जोर देने के लिये वह दोनों प्रभुचरण के पास आ रहे हैं।...दोनों भाइयों मे तो खूब दोस्ती है। यह तो आज के युग में दुर्लभ वस्तु है। लगता है, देवर-भाभी के बीच भी अच्छे ही सम्बन्ध हैं। हालांकि अभी हिस्सेदार आया नहीं है, इसीलिए—आ जाएगी तब नीता की मानसिक दशा क्या होगी, कहना मुश्किल है। परन्तु शादी से पहले ही अलग होना क्यों चाहेंगे ?

लड़की शादी करना क्यों नहीं चाहता है, कौन जाने ?

एक दिन खूकू बता रही थी—'बापी, छोटे भइया की बहू अभी गोकुल में बड़ी हो रही है। वह लड़की पहले पी-एच० डी० करेगी, तभी शादी की पीढ़ी पर बैठेगी।'

उस वक्त प्रभुचरण ने उस बात को ज्यादा महत्व नहीं दिया था। खूकू की भी जैसी बातें ? वह तो हवा में तैरती कोई भी बात पकड़ कर उसे ही सत्य समझ कर उछल-कूद कर सकती है।

लेकिन अब कभी-कभी लगता है कि वह बात निरर्थक नहीं थी। वरना शादी की बात छिड़ते ही शुभ बात काट देता, 'ऐसी भी क्या जल्दी है ?'

प्रभुचरण ने सोचा, आज इस बात का फैसला कर ही डालेंगे। 'छुट्टी है' ऐसा कुछ मधु भी बता गया है न ?

कमरे में घुसते ही दोनों निश्चित आसनों पर जा बैठे।

लगभग अस्पताल वाली व्यवस्था यहाँ भी है। रोगी के पलंग के सामने लम्बा सोफा रखा था—दर्शनार्थियों के लिये। इसके अलावा भी थे इधर-उधर रखे, दो बेंत के मोढ़े, दो हल्की कुर्सियाँ। कई बार तो ज्यादा लोगों के बैठने का प्रबन्ध करना पड़ा है। लड़की दामाद आते है, दोस्त लोग आते हैं।

पूरे घर में यह कमरा ही सब से बड़ा है। अच्छा भी। कभी वनशोभा के आनर में घर का सबसे बेहतरीन कमरा प्रभुचरण के कब्जे में आया था। वह कमरा इन्हीं के पास रह गया। सिर्फ वनशोभा की खाट दिवाल के उधर से हटा कर, टूलू के लिए इसी कमरे से सटा जो छोटा कमरा है, उसमें रख दी गयी है। उसी शून्य स्थान पर यह सोफा रखा है। टूलू के उस कमरे में, उसके कुमारी-काल की सिंगिल पलंग के पास जगह बहुत कम होने पर भी, प्रभुचरण ने लड़की के कमरे में वनशोभा की पलंग रखने का आदेश दिया था। इससे असुविधा कोई खास हुई नहीं। टूलू अगर कभी आ कर दिन भर रहती तो लड़के के साथ उस कमरे में ही डेरा डालती। और अगर कभी 'रात्रि भोज' के लिए निमन्त्रित होती और रात ज्यादा हो जाती तो पति-पुत्र के साथ उसी कमरे में सोती। इससे घर के किसी भी सदस्य को कोई झंझट झेलनी नहीं पड़ती। घर की वर्तमान गृहणी को दामाद के लिये विशेष इंतजाम करने के लिये परेशान नहीं होना पड़ता।

प्रभुचरण इस समय दो तकियों के सहारे अधलेटी अवस्था में हैं। दोनों मुस्कुराते बेटों की तरफ स्वयं भी मुस्कुरा कर देखा। बोले, 'आज किस बात की छुट्टी है ?'

'आज इतुज्जुहा है न !'

ध्रुव ने उत्तर दिया।

शुभ बोला, 'आज लेकिन पिता जी, तुम खूब फ्रेश लग रहे हो।'

धीरे से हँस कर प्रभुचरण बोले, 'शायद आज तुम लोगों की छुट्टी है सुन कर।'

हालांकि यह एक पुरानी बात है।

नीता कहती, 'तुम लोगों के छुट्टी के दिन पिता जी ठीक रहते हैं। वीक-डे पर ही जितना कष्ट, दु:ख-दर्द, तकलीफें रहा करती हैं।....कहिए पिता जी, ठीक कह रही हूँ न ?'

सुन कर प्रभुचरण हँसे। इस घिसे-घिसे सुरीले स्वर में कही गई बात को 'ठीक नहीं है' कहना क्या संभव है? इस तरह, ऐसी आवाज में कही गई बात, कभी फालतू नहीं होती है। इसके अतिरिक्त यह बात तो सच ही है कि जब सभी घर पर रहते, या दूलू लोग आते, घर भरा-भरा लगता। उस दिन दिल में ताजगी आ जाती थी।

यद्यपि उस दिन इसी कमरे में सब नहीं रहते हैं लेकिन घर पर उनकी उपस्थिति ही टॉनिक का काम करती है। कौन, कहाँ, क्या कह रहा है, कौन किससे राजनीति पर बहस कर रहा है, कौन किसके विचारों का समर्थन कर रहा है---यह सब बातें कान लगा कर सुनने लायक होती हैं। और इसी में से तथ्य आविष्कार करने की चेष्टा करना भी तो एक काम है। कर्महीन जीवन का यही एक ऐश्वर्य है।....और बाकी दिन तो भयंकर खामोशी से घिरे रहते। क्योंकि नीता बात कम करती है। धीरे बोलती है। बच्चे तक को धीमे से डाँटती है। नौकरों तक को डाँटती या काम का आदेश देती तो वह भी शान्त स्वरों में।

अतएव यह गूंगे और खामोशी से भरे दिन प्रभुचरण के सीने पर पत्थर से चढ़े रहते। अन्दरूनी तकलीफों की याद दिलाते।

आश्चर्य है ! वनशोभा नामक उस व्यक्तित्व से घर ऐसा भरपूर क्यों लगता था? उस समय प्रभुचरण ने कभी नहीं सोचा था। बल्कि कभी-कभी लगता था, वनशोभा बहुत ज्यादा बोलती हैं। बेवजह, अकारण ही।

तब कभी नहीं सोचा था कि 'शब्द' ही जीवन का परिचय है। 'शब्द' में ही जीवनी-शक्ति संचारित होती है। 'शब्द' 'भाषा' 'बातें'। इन्हीं से तो पता चलता है कि एक दूसरे में अन्तर क्या है....एक हृदय को दूसरे हृदय से युक्त करता है।

शुभ बोला, 'हमारी छुट्टी है इसलिये आप फ्रेश हैं? इसके मतलब कि भाभी जो

कुछ कहती हैं वह सच है ?'

ध्रुव ने कहा, 'जरा चिल्ला कर कहो ताकि असली जगह तक बात पहुँच जाए ?'

शुभ ने उत्तर दिया, 'चिल्लाने की जरूरत क्या है ? पहुँचाने के लिये तुम तो हो ही।'

भाई-भाई या भाई-बहन पिता के सामने ऐसे मजाक हमेशा ही करते हैं। प्रभुचरण को अच्छा लगता है। सोचा करते, क्या बुराई है इसमें ? उनके समय में अकारण लज्जा के भार से दबे रहने में क्या कम तकलीफ होती थी ?

बड़ों के सामने पति या पत्नी के बारे में किसी तरह की बात कहना ? अरे बाप रे ! इससे बड़ा पाप और क्या हो सकता है ?

इसी अवसर पर शुभ उठ कर मेज के पास आया। पिता के लिए रखी दवाओं को उठा कर इधर-उधर करते हुये बोला, 'डॉ० गांगुली को आज कॉल दूँगा।'

प्रभुचरण जरा बिगड़ कर ही बोले, 'बेकार, बेकार ही डॉक्टर क्यों ? ठीक ही तो हूँ।'

'ठीक रहते-रहते ही तो एक बार दिखा लेना चाहिये, जिससे कि अचानक बेठीक न हो जाओ।'

प्रभुचरण बोले, 'अकारण पैसा फूंकना तुम लोगों की बीमारी है।'

शुभ ने कहा, 'इन छोटी-छोटी बातों में तुम्हे दिमाग लगाने की जरूरत नहीं है।'

ध्रुव ने टिप्पणी की, 'जैसे तुम्हारे कहने से ही वह मान लेंगे।'

सुन कर प्रभुचरण दुःखी हुये। आहत स्वर में बोले, 'तुम लोगों की कौन सी बात नहीं सुनता हूँ ?'

यही। यही एक खराबी आ गई है प्रभुचरण के स्वभाव में। सहज बात को भी सहज ढंग से ले नहीं पाते हैं, चट से परिस्थिति को गम्भीर बना डालते हैं। क्योंकि क्षुब्ध प्रश्न का उत्तर कौन हल्के और सहज ढंग से दे सकता है ?

लेकिन आज ऐसा हुआ।

लगता है आज दोनों ही अच्छे मूड मे हैं। उदारता के मूड में। वरना छुट्टी की सुबह का इतना वक्त, इस कमरे में बरबाद करते ? पिता के लिये उद्विग्न होते हैं, चिन्तित होते हैं। पिता के सामने में जरा सा-भी इधर-उधर न होने पाये, इस बात पर हर वक्त दृष्टि रखते।...बस, किसी बात की क्षमता नहीं थी तो वह थी—पिता क्या आशायें उनसे करते हैं, यह समझने की !

लेकिन प्रभुचरण की प्रत्याशायें क्या न्यायसंगत थीं ?

उनके सामने कितना काम है !

उनका जीवन कितना विस्तृत है ? उसमें से वे कितना समय दे सकते हैं एक 'जीवनविहीन' जीवन के लिये ?

लेकिन आज बड़ा उदार हृदय ले कर आये हैं। इसीलिए ध्रुव बोल उठा, 'सचमुच इस बात से हम इन्कार नहीं कर सकते। डॉक्टर गांगुली तक कहते हैं कि अगर हर पेसेण्ट से ऐसा ही कोआपरेशन मिल पाता।'

आवाज में नयापन था।

प्रभुचरण ज़रा आश्चर्य में पड़ गये।

डॉक्टर, दवा, चिकित्सा-पद्धति और लड़कों द्वारा सर्वाधिक सावधान वाणी के साथ 'नॉन-कोआपरेशन' करने का अभियोग ही तो लगाते हैं उन पर। वे लोग पिता को हर समय ही इसी अभियोग का अभियुक्त पाते हैं।

फिलहाल प्रभुचरण लज्जित हुये। नहीं! इनकी भी कुछ गलत धारणाएँ हैं जिसके लिये ज्यादातर मन को ठेस पहुँचती है। ये लोग उनके लिये हर समय चिन्तित रहते हैं, इसीलिये सावधान करते हैं। अगर प्यार न करते होते तो यह चिन्ता उनके मन में क्यों आती?

इधर तो ये लोग अपनी माँ को भी बहुत डाँटा-डपटा करते थे। हर समय 'सावधान रहो' 'समझ-बूझ कर चलो' कहा करते थे। वनशोभा को हाई ब्लड-प्रेशर की शिकायत थी। माँ को उस हालत में काम करते हुये देख लेते तो बिगड़ते। कभी-कभी इस ज्यादती से तंग आकर वनशोभा भी क्रोधित होतीं। कहतीं—'तुम लोगों के 'हाय-हाय' करने से ही मेरा प्रेशर बढ़ जाता है। थोड़ा बहुत काम करने से कुछ नहीं होता। इस तरह से लाड़-प्यार मत दिखाओ। इतनी जल्दी तुम लोगों को मातृहीन कर दूँगी, ऐसी आशा नहीं है।'

आशा न होने पर भी, चली ही गईं।

अच्छा! उस वक्त तो प्रभुचरण भी लड़कों का ही पक्ष लेते थे। वे भी तब वनशोभा को इसी बात पर डाँटते थे।

वनशोभा कहतीं, 'चुप रहो! तुम्हारा प्यार दिखाना तो बस इतना ही है कि उठो मत, काम मत करो।'

अक्सर ही कहती। बस, एक दिन दूसरों का कान बचा कर प्रभुचरण ने उत्तर दिया था, 'और क्या करूँ? पुराने जमाने की तरह से क्या गले में बाँहें डाल कर चूम लूँ?'

बिल्कुल ही मजाक की बात थी लेकिन न जाने क्या हुआ? यह सुनते ही वनशोभा की आँखों से अचानक आँसू निकल पड़े।...उसी दम मुँह फेर कर वह वहाँ से हट गई थीं।

प्रभुचरण तो अवाक् रह गये?....बेचारे, इस आकस्मिक घटना से बड़े ही क्षुब्ध हुए थे।

प्रभुचरण इस अश्रुपात का कारण ही न समझ सके।

बहुत देर बाद फिर मौका मिलते ही प्रभुचरण ने पूछा, 'क्या हो गया बाबा! मैंने ऐसा क्या कह दिया कि तुम बिल्कुल....'

वनशोभा ने आँखें उठा कर उनकी तरफ देखा। गम्भीर हो कर बोली, 'मैं पागल नहीं हूँ कि तुम इस तरह से बात करो। मेरे विचार से तो, इस तरह से किटकिट न कर के, अगर तुम दो घड़ी भी चुपचाप कमरे में बैठे रहो, तो मैं समझूँगी, तुम मेरा बहुत ध्यान रखते हो।'

हृदय की वेदना व्यक्त करने के लिए वनशोभा को उपयुक्त कोई विशिष्ट भाषा ज्ञात न थी। यही घरेलू, रोजमर्रा की भाषा जानती थी वह। हाँ! परन्तु भाषा आँखों में थी। स्पष्ट और एक अद्भुत ही अभिव्यक्ति आँखों द्वारा करती थीं। क्रोध, दुःख, वेदना, अभिमान, क्षोभ, लज्जा, कुण्ठा या अपमान....सब कुछ व्यक्त करती थी उन आँखों से। किशोरी काल से ही वह इस प्रकार करती थी।

प्रभुचरण वह भाषा न समझते हों, ऐसा नहीं था, परन्तु सच यह था कि हर समय उस भाषा को महत्त्व नहीं देते थे। सोचा करते, शास्त्रों में जो कहा है, वह ठीक ही है कि स्त्री-जाति कभी भी बालिग नहीं होगी।

वरना, भयंकर रूप से कर्मव्यस्त प्रभुचरण पर जब तब अभियोग लगाती हुई अनुरोध करती वनशोभा कि दो घड़ी के लिए घर में नहीं रह सकते हो?

प्रभुचरण ने कभी भी उस वक्त इसे महत्त्व नहीं दिया था। जान-बूझ कर बढ़ावा नहीं देते थे। हँस कर बात टाल जाते थे। कहते, 'तुम्हारी उम्र कभी नहीं बढेगी।'

अब अचानक ही लगता है, वनशोभा के प्रति, कभी-कभी वे बड़े अकरुण हो जाते थे। प्रियसान्निध्य के लिए क्या कोई उम्र होती है?

अब तो स्वयं ही प्रभुचरण, अपने बेटों का साथ पाने के लिए, प्यासे चकोर की तरह बैठे रहते हैं? कब वे घर लौटेंगे, कब एक बार इस कमरे में आएँगे, यह आशा क्या अस्वाभाविक है? या सिर्फ प्रभुचरण का पागलपन है?

हो भी सकता है।

फिर भी लड़के आ कर कुछ देर कमरे में बैठते हैं तो मन कैसा कृतार्थ हो जाता है? खुशी से भर जाता है। यदि आ कर किसी तरह से कुशलक्षेम पूछ कर खिसक जाते तो अभिमान से दिल भर आता।....और तभी मन में हलचल-सी मच जाती। क्षोभ, दुःख और अपमान के कारण मन अपने को धिक्कार उठता।

लगता, ये ही अगर इतने उदासीन हैं तो मैं ही क्यों इतना व्याकुल रहूँ? मैं भी उदासीनता दिखाऊँगा, बात करने आएँगे तो गर्दन तक नहीं घुमाऊँगा। दीवाल की तरफ मुँह फेर कर कहूँगा, 'ठीक हूँ।'

लेकिन ऐसा कहाँ कर पाते हैं?

अभिमान के प्रथम चरण में तो मन में तूफान-सा उठता, मन में बातों की लहरें उठा करती। लगता चिल्ला-चिल्ला कर कहे, 'बहुत अच्छा हूँ। तुम लोग इतना ख्याल

रखते हो, इतना खर्च कर रहे हो, इस पर ठीक नहीं रहूँगा ? क्या कह रहे हो ? मैं क्या इतना ही अकृतज्ञ हूँ ?....इस पर भी तुम लोग, दया करके, मेरा हाल-चाल पूछने आये हो....इस पर तो गद्गद् हो जाना चाहिये ।....कहा करते, लेकिन मन ही मन । इसीलिए कष्ट होता । हाँ ! अभिमान के कारण ही मन्त्रणा का भार वहन करते रहते प्रभुचरण । लेकिन कहाँ उदासीन रह पाते ?

ज्यों ही बड़ा बेटा स्वाभाविक सौजन्यपूर्ण, भाषा में कुशल-क्षेम पूछता, त्यों ही उत्तर दे बैठते । हालांकि उस उत्तर में 'अच्छा हूँ' की जगह डॉक्टर और इलाज के विरुद्ध अभियोग अधिक रहता । ध्रुव गम्भीर हो उठता । दो-एक बातें करके ही चला जाता ।

शुभ्र दूसरे ढंग का है ।

वह सौजन्यता के फेर में नहीं पड़ता ।

खटाखट पूछता, 'दवाएँ ठीक से खाई हैं न ? या गोल कर रहे हो ? खाने-पीने में तो कोई गड़बड़ी नहीं कर रहे हो ?....तबियत कैसी है ? डॉक्टर को क्या फोन करना पड़ेगा....'

उसके सामने डॉक्टर के खिलाफ कुछ कहा तो कह बैठता, 'डॉक्टर क्या तुम्हारे मन के माफिक होगा ? ऐसा डॉक्टर पृथ्वी पर कहीं नहीं है, पिताजी ।'

डॉक्टर भी क्या स्वयं रोगी के मन की भाषा नहीं समझते हैं ?

और वही डॉक्टर प्रशंसा करते हुए कहता है, 'सभी पेशेण्ट अगर इसी तरह से को-आपरेशन करते ।'

ऐसा हुआ कैसे ?

प्रभुचरण सन्देह प्रकट करते हुए बोले, 'यही बात कही है क्या ?'

'कहा ही तो है ।'

प्रभुचरण बोले, 'फिर तो अच्छा ही है । मैं तो समझता था, बहुत परेशान करता हूँ, खूब डाउन करता हूँ ।'

इस बात का कोई क्या उत्तर देता, क्या पता—उसी वक्त मधु एक गिलास में हॉर्लिक्स ले कर आया, 'बाबाजी, पी लीजिये ।'

प्रभुचरण मुंह बना कर कह बैठे, 'यह देखो ! अब फिर पीना पड़ेगा ? अभी तो तू खिला कर गया है ।'

मधु ने निर्लिप्त भाव से कहा, 'भाभीजी ने भेजा है ।'

भाभी !

अर्थात् नीता ? मधु के उल्टे-सीधे सम्बोधन ! प्रभुचरण जल्दी से बोले, 'अरे बाप रे ! तब तो कोई बात ही नहीं उठती है । दे बाबा दे, क्या लाया है ?'

कहते ही उन्हें लगा गले की आवाज कुछ खुशामदी-सी और कहने का ढंग विगलित हो जाने-सा हो गया है । बड़ा बुरा लगा । क्यों ऐसा होता है ? फिर भी हो ही जाता है ।

नीता के बारे में बात करने चलते हैं तो ऐसे ही, सम्मान का भाव आ जाता

है। जबकि ठीक सम्मान नहीं है, क्यों उस वक्त मन में जो बातें रहती हैं वह तो बड़ी सम्मानजनक नहीं होती हैं। फिर? यह कमजोरी कैसी? खूकू बहुत चालाक है। पिताजी की इस कमजोरी को खूब समझती है। इसीलिए एक दिन झट बोल बैठी थी—'बापी, तुम तो भाभी से ऐसे बात करते हो जैसे वह तुम्हारी बॉस हो और तुम क्लर्क। यह कैसा सम्मान है सुनूं तो?

प्रभुचरण इसका उत्तर क्या देते?

स्वयं ही इसका उत्तर नहीं जानते हैं।

मान लेते कि सब नक्षत्रों की करामात है। वनशोभा ने कहा था न, 'इस घर के उपयुक्त ही गृहणी आई है। नई बहू है, फिर भी डर के मारे सब तटस्थ हैं....ऐसा है व्यक्तित्व।'....यह बात सच है।

इतनी बातें सोचने के बाद भी, हॉलिक्स, जो प्रभुचरण को फूटी आंख नहीं सुहाती, पीकर गिलास नीचे रखते ही 'आह' शब्द निकल जाता, जिसे तृप्तिसूचक भी कहा जा सकता है।....इस तरह से बूंद-बूंद तक पीते ही कब है?

ध्रुव ने चकित दृष्टि डाली।

यह क्या पिताजी को 'अप' करने का फल है? डॉक्टर ने कहा है—'यह पेसेण्ट को-आपरेट' करता है—इसीलिए क्या?

इसका तात्पर्य है कि प्रभुचरण का मूड इस समय अच्छा ही है। इसी वक्त वह बात कह डालनी चाहिये। यद्यपि 'बात कह डालने' की भूमिका तैयार ही थी, बस पिताजी का मन-मिजाज समझे बगैर कुछ कहना....

ध्रुव ने सोचा, मूड को और भी ठीक कर दिया जाये। कह बैठा, 'नीता ने सुबह टूलू को फोन कर दिया है....'

नीता? टूलू को?

प्रभुचरण अचानक कही गई बात से आश्चर्य में पड़ गये।

प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा, क्योंकि लगा, ध्रुव ने बात खत्म नहीं की है। सिर्फ अन्दर से बात को बाहर खींचने से पहले एक 'डैश' खींचा है।

बात तुरन्त ही बाहर खींच लाया।

ध्रुव बोला, 'छुट्टी का दिन है, इसीलिए उन्हें यहां चले आने के लिए कह दिया है। सारा दिन यहां बिता कर जाएंगे।'

प्रभुचरण और अधिक कृतार्थ हुए।

समझ न सके कि यह फोन ध्रुव ने ही किया है। नीता फोन के आस-पास तक नहीं गई होगी। हर इतवार को टूलू का यहां आना निश्चित ही है। उस दिन उसे बुलाने का प्रश्न ही नहीं होता। जन्म लेने के दावे को मान कर ही, वह पति-पुत्र के साथ सुबह यहां चली आती है।...उस पर अन्य छुट्टियां...ननद के नाम पर उत्सर्ग करने की इच्छा किसमें होती है? यद्यपि वैसी कोई बात हो तो आपत्ति करे, नीता ऐसे नीच स्वभाव की नहीं है। 'सिर्फ उसका चेहरा सख्त पड़ जाता है और कण्ठ-स्वर कुछ ज्यादा

ही ठंडा। फिर भी समयोचित आदर-सत्कार में कोई कमी नहीं आती है।

यह बात ध्रुव न जानता हो, यह नहीं है, फिर भी आज उसने फोन करके टूलू को बुलाया है। कोई खास बात नहीं—बस सुन कर पिताजी का दिल खुश हो जायेगा। ...न जाने क्यों लग रहा है आज पिताजी खुश रहें तो ही अच्छा है।

प्रभुचरण बोले, 'अब देखो। फिर बहूरानी पर बोझ लाद दिया। अभी तीन दिन पहले ही तो आये थे वे लोग। तुम लोगों की 'बहन-वहन' करने की बड़ी बुरी आदत है।'

'कैसी बुरी आदत? और बोझ लादना कैसा? नीता को तो तरह-तरह की नई डिशें बनाने का शौक ही है।'

शुभ एक किताब के पन्ने उलट रहा था। अब बोला, 'इसके मतलब तुम मुझे न्यू मार्केट तक दौड़ाओगे भइया।'

भइया कुछ कहे, इससे पहले ही प्रभुचरण बोल उठे, 'क्यों, न्यू मार्केट क्यों? तुम्हारे यहाँ के बाजार में ढाई लोगो को खिला सको, ऐसी चीज नहीं मिलेगी क्या?'

शुभ हँसा—'ढाई क्यों, ढाई सौ आदमी के लिए भी मिल जायेगी। ढाई मिनट में ही, लेकिन जिन्हें यह शौकिया खाना बनाने का शौक है, उन्हें उस शौकिया बाजार की चीजो के अलावा और कहीं की चीज पसन्द नहीं।'

ध्रुव ने कहा, 'ठीक है। तुझे दौड़ने की जरूरत नहीं है। मैं तो अभी निकलूँगा जरा देर में...'

शुभ और भी हँसा—'तुम्हारा खरीदा सामान सभी को पसन्द आये तब न?'

'यही न! तूने उसकी आदत बहुत बिगाड़ दी है।...खैर, निकलने से पहले वह फॉर्म-वॉर्म एक बार ले तो आ।'

चलो...कह डाला गया।

ध्रुव ने बड़ी जल्दी काम निपटा लिया है।

शुभ बोला, 'वह तो तुम्हारे ही पास था न?'

जल्दी से ध्रुव ने कहा, 'पास-वास क्या? वहीं मेरे कमरे की मेज पर पड़ा होगा। जा कर देख।'

शुभ जानता है, भइया जान-बूझ कर ही मेज पर छोड़ आया है। अतएव सामने ही होगा। फिर भी पूछा, 'तुम्हारी मेज पर? वह क्या मुझे मिल सकेगा?'

'मिलेगा...जा न।'

प्रभुचरण जरा आश्चर्य करते हुए बोले, 'किस चीज का फॉर्म?'

'वही, उस दिन कहा था न...स्वाधीनता संग्राम के वक्त पर....'

शुभ लौट आया।

ध्रुव बोल उठा, 'मिला, ला दे। पिताजी, जरा चश्मा तो पहनो। कुछ साइन करने होंगे।'

अपनी मेज के ड्राँर से प्रभुचरण ने चश्मे का केस निकाला। फिर केस से चश्मा।

हाथों के पास सब कुछ रहे, इसीलिए विशेष रूप से यह मेज बनाई गई थी। यह परिकल्पना नीता की है। बनते वक्त, प्रभुचरण मन ही मन क्रुद्ध होते हुए और ऊपर से क्षुब्ध हो कर बोल उठे, 'लगता है तुम लोगों ने सोच लिया है कि मैं आजीवन-काल तक बिस्तर पर ही पड़ा रहूँगा।'

लड़के ने दोनों ही पक्षों का ध्यान कर जल्दी से कहा था, 'क्या कहते हो? यह तो तब तक के लिए, जब तक डॉक्टर ने उठने के लिए मना किया है। बाद में यह राजा बाबू के पढ़ने की मेज हो जायेगी। उसकी हाइट के लिए भी ठीक है।'

चश्मा निकाल कर पोंछते हुए प्रभुचरण ने चिन्ता व्यक्त की, 'मामला क्या है? कैसा साइन?'

'मामला कुछ विशेष नहीं है।' ध्रुव आसानी से कह सका—'वही कह नहीं रहा था....' गर्दन घुमा कर, 'शुभ, पिताजी को जरा समझा दे न।'

अचानक शुभ हाथों के पास पडी किताब को उठा कर बडे ध्यान से देखते हुए बोला, 'उसमे समझाना क्या है? तुम तो बता ही रहे हो...'

अतएव ध्रुव क्या करे? निरुपाय हो कर उसने भौंहे सिकोड़ीं।

ध्रुव को पिता के और पास खिसक आना पडा। फिर हाथ में लिया कागज फैला कर समझाने लगा। मामला यह है—सरकार की तरफ से जो 'पोलिटिकल सफरर' को पेंशन देने की व्यवस्था है, हाल ही में उसकी एक नई शाखा खुली है। यह कागज उसी का आवेदन-पत्र है। प्रभुचरण इन तीनों प्रतियों पर हस्ताक्षर कर दें। कारण—तीन जगहों में भेजना पडेगा। उसके बाद जो कुछ करना होगा ध्रुव ही कर लेगा। जिस आदमी पर इस आवेदन को स्वीकार करने का जिम्मा है वह ध्रुव के साले का बहुत परिचित है। इसलिए सिर्फ दस्तखत ही करना है।

शायद गलती से ही या आदतन प्रभुचरण ने चश्मे को फिर से केस में रख कर शांत स्वरों में कहा, 'इस फॉर्म पर मैं हस्ताक्षर करूँगा? क्यों?'

'क्यों नही?'

तीखी आवाज में ध्रुव ने जो कुछ कहा उसका अर्थ हुआ—'क्यों नहीं? कभी क्या प्रभुचरण ने देश के लिए आत्मोत्सर्ग नहीं किया था? 'आराम हराम है' सोच कर, जीवन-मृत्यु को पांव तले रौंदते हुए, मुसीबत के सामने कूदे नहीं थे? भूखे-प्यासे, वस्त्र-हीन नहीं रहे? पुलिस की मार नही खाई? नेताओं की खिदमत करते-करते नाकों चने नहीं चबाये थे? जेल नहीं गये? और खटते-खटते बीमार नहीं पड़ गये थे क्या?

'फिर?'

उसी जानलेवा तकलीफ का पुरस्कार प्राप्त करने का जब आज मौका आया है—क्यों नहीं लेंगे? जल्दी हस्ताक्षर कर दीजिये। फिर मैं अभी इन आवेदन पत्रों के साथ, जा कर साले से मिलूँगा। छुट्टी के दिन जितना काम कर लिया जा सके।'

सभी बातें प्रभुचरण ने धैर्यपूर्वक सुनीं। ध्रुव की आवेगभरी भाषा और गम्भीर ऊँची आवाज़ ने अच्छा-खासा मोह-जाल बिछा दिया था। बात खत्म होते ही जैसे होश

ही ठंडा। फिर भी समयोचित आदर-सत्कार में कोई कमी नहीं आती है।

यह बात ध्रुव न जानता हो, यह नहीं है, फिर भी आज उसने फोन करके दूलू को बुलाया है। कोई खास बात नहीं—बस सुन कर पिताजी का दिल खुश हो जायेगा। ...न जाने क्यों लग रहा है आज पिताजी खुश रहें तो ही अच्छा है।

प्रभुचरण बोले, 'अब देखो। फिर बहूरानी पर बोझ लाद दिया। अभी तीन दिन पहले ही तो आये थे वे लोग। तुम लोगों की 'बहन-बहन' करने की बड़ी बुरी आदत है।'

'कैसी बुरी आदत? और बोझ लादना कैसा? नीता को तो तरह-तरह की नई डिशें बनाने का शौक ही है।'

शुभ एक किताब के पन्ने उलट रहा था। अब बोला, 'इसके मतलब तुम मुझे न्यू मार्केट तक दौड़ाओगे भइया।'

भइया कुछ कहे, इससे पहले ही प्रभुचरण बोल उठे, 'क्यों, न्यू मार्केट क्यों? तुम्हारे यहाँ के बाजार में ढाई लोगों को खिला सको, ऐसी चीज नहीं मिलेगी क्या?'

शुभ हँसा—'ढाई क्यों, ढाई सौ आदमी के लिए भी मिल जायेगी। ढाई मिनट में ही, लेकिन जिन्हें यह शौकिया खाना बनाने का शौक है, उन्हें उस शौकिया बाजार की चीजों के अलावा और कहीं की चीज पसन्द नहीं।'

ध्रुव ने कहा, 'ठीक है। तुझे दौड़ने की जरूरत नहीं है। मैं तो अभी निकलूँगा जरा देर में...'

शुभ और भी हँसा—'तुम्हारा खरीदा सामान सभी को पसन्द आये तब न?'

'यही न! तूने उसकी आदत बहुत बिगाड़ दी है।....खैर, निकलने से पहले वह फॉर्म-वॉर्म एक बार ले तो आ।'

चलो...कह डाला गया।

ध्रुव ने बड़ी जल्दी काम निपटा लिया है।

शुभ बोला, 'वह तो तुम्हारे ही पास था न?'

जल्दी से ध्रुव ने कहा, 'पास-वास क्या? वहीं मेरे कमरे की मेज पर पड़ा होगा। जा कर देख।'

शुभ जानता है, भइया जान-बूझ कर ही मेज पर छोड़ आया है। अतएव सामने ही होगा। फिर भी पूछा, 'तुम्हारी मेज पर? वह क्या मुझे मिल सकेगा?'

'मिलेगा...जा न।'

प्रभुचरण जरा आश्चर्य करते हुए बोले, 'किस चीज का फॉर्म?'

'वही, उस दिन कहा था न...स्वाधीनता संग्राम के वक्त पर....'

शुभ लौट आया।

ध्रुव बोल उठा, 'मिला, ला दे। पिताजी, जरा चश्मा तो पहनो। कुछ साइन करने होंगे।'

अपनी मेज के ड्रॉर से प्रभुचरण ने चश्मे का केस निकाला। फिर केस से चश्मा।

हाथों के पास सब कुछ रहे, इसीलिए विशेष रूप से यह मेज बनाई गई थी। यह परिकल्पना नीता की है। बनते वक्त, प्रभुचरण मन ही मन क्रुद्ध होते हुए और ऊपर से क्षुब्ध हो कर बोल उठे, 'लगता है तुम लोगों ने सोच लिया है कि मैं आजीवन-काल तक बिस्तर पर ही पड़ा रहूँगा।'

लड़के ने दोनों ही पक्षों का ध्यान कर जल्दी से कहा था, 'क्या कहते हो? यह तो तब तक के लिए, जब तक डॉक्टर ने उठने के लिए मना किया है। बाद में यह राजा बाबू के पढ़ने की मेज हो जायेगी। उसकी हाइट के लिए भी ठीक है।'

चश्मा निकाल कर पोंछते हुए प्रभुचरण ने चिन्ता व्यक्त की, 'मामला क्या है? कैसा साइन?'

'मामला कुछ विशेष नहीं है।' ध्रुव आसानी से कह सका—'वही कह नहीं रहा था....' गर्दन घुमा कर, 'शुभ, पिताजी को ज़रा समझा दे न।'

अचानक शुभ हाथों के पास पड़ी किताब को उठा कर बड़े ध्यान से देखते हुए बोला, 'उसमें समझाना क्या है? तुम तो बता ही रहे हो...'

अतएव ध्रुव क्या करे? निरुपाय हो कर उसने भौंहें सिकोड़ीं।

ध्रुव को पिता के और पास खिसक आना पड़ा। फिर हाथ में लिया कागज फैला कर समझाने लगा। मामला यह है—सरकार की तरफ से जो 'पोलिटिकल सफरर' को पेंशन देने की व्यवस्था है, हाल ही में उसकी एक नई शाखा खुली है। यह कागज उसी का आवेदन-पत्र है। प्रभुचरण इन तीनों प्रतियों पर हस्ताक्षर कर दें। कारण—तीन जगहों में भेजना पड़ेगा। उसके बाद जो कुछ करना होगा ध्रुव ही कर लेगा। जिस आदमी पर इस आवेदन को स्वीकार करने का जिम्मा है वह ध्रुव के साले का बहुत परिचित है। इसलिए सिर्फ दस्तखत ही करना है।

शायद गलती से ही या आदतन प्रभुचरण ने चश्मे को फिर से केस में रख कर शांत स्वरों में कहा, 'इस फॉर्म पर मैं हस्ताक्षर करूँगा? क्यों?'

'क्यों नहीं?'

तीखी आवाज़ में ध्रुव ने जो कुछ कहा उसका अर्थ हुआ—'क्यों नहीं? कभी क्या प्रभुचरण ने देश के लिए आत्मोत्सर्ग नहीं किया था? 'आराम हराम है' सोच कर, जीवन-मृत्यु को पाँव तले रौंदते हुए, मुसीबत के सामने कूदे नहीं थे? भूखे-प्यासे, वस्त्र-हीन नहीं रहे? पुलिस की मार नहीं खाई? नेताओं की खिदमत करते-करते नाकों चने नहीं चबाये थे? जेल नहीं गये? और खटते-खटते बीमार नहीं पड़ गये थे क्या?

'फिर?'

उसी जानलेवा तकलीफ का पुरस्कार प्राप्त करने का जब आज मौका आया है—क्यों नहीं लेंगे? जल्दी हस्ताक्षर कर दीजिये। फिर मैं अभी इन आवेदन पत्रों के साथ, जा कर साले से मिलूँगा। छुट्टी के दिन जितना काम कर लिया जा सके।'

सभी बातें प्रभुचरण ने धैर्यपूर्वक सुनीं। ध्रुव की आवेगभरी भाषा और गम्भीर ऊँची आवाज़ ने अच्छा-खासा मोह-जाल बिछा दिया था। बात खत्म होते ही जैसे होश

में आ गये। धीरे से चश्मा सहित केस ड्रॉर में रख कर ऐसे हाथ हिलाया जिसका केवल एक ही अर्थ निकलता था अर्थात् ये कागजात हटा लो।

ध्रुव हड़बड़ा उठा, 'क्या हुआ? तबियत खराब लग रही है? अभी नहीं कर सकेंगे?'

प्रभुचरण ने स्थिर आवाज में कहा, 'न कर सकने की बात नही है, करूंगा नहीं।'

'नहीं करेंगे?' ध्रुव के गले से जैसे आवाज फिसल कर निकल आई।

प्रभुचरण बोले, 'नही।'

यह वह आवाज नहीं, जिस आवाज में हॉलिक्स पी कर 'आह' बोले थे।...बोले थे, 'तुम लोगों की बहन-बहन करने की आदत है।'

यह अन्य आवाज है। जैसे किसी गहरे धरातल के नीचे से निकल आई अपरिचित आवाज हो। लड़के इस आवाज से परिचित न थे।

इसी अपरिचित आवाज में प्रभुचरण बोले, 'तुम लोगों ने जो बड़ी-बड़ी बातें कही, मैंने वैसा कुछ भी नही किया था। विभू—जो करना था विभू ने ही किया था। मैं तो सिर्फ उसके साथ रह कर, उसे बचाता फिरता था।'

जिद्दी स्वर में ध्रुव बोला, 'वाह! यह कहने से कैसे होगा? उनके मरने के बाद भी तुम काफी भटके हो। पढ़ना-लिखना तक छोड दिया था।'

'छोड़ी चीज फिर पकड़ भी ली थी।'

'फिर भी तुमने बहुत कुछ किया है। हम लोगों ने सुना नही है क्या? युद्ध में सेनापति न सही, उस मुक्ति-युद्ध में एक सैनिक तो थे।'

प्रभुचरण को ऐसा लगा जैसे ध्रुव इन बातों को रट कर आया है। वरना उसके मुँह से कभी ऐसी अच्छी बंगला भाषा सुनी थी?...पर यह बात कही नही जा सकती। शांत स्वर में बोले, 'ठीक है, वही सही। लेकिन इससे क्या हुआ? क्या इतने दिनों बाद तनखाह वसूल करने जाऊँगा?'

'क्या कह रहे है, पिताजी?'

ध्रुव सचमुच में आहत और उत्तेजित हो उठा।

इस समय प्रभुचरण को भी उत्तेजित होना चाहिये था। लेकिन इसके विपरीत वे और भी अधिक शांत स्वर में बोले, 'सो तनखाह नहीं तो भिक्षा सही। 'इतने दिनों में मुझे भी कुछ मिलना चाहिये' कहते हुए भिक्षा-पात्र हाथों में ले कर खड़ा हो जाऊँ? कभी जो सहकर्मी थे उनके द्वार पर खडा होना पड़ेगा?'

ध्रुव और भी उत्तेजित होकर बोला, 'जो लोग चालाक थे उन्होंने तो इन्तजाम कर लिया है। मन्त्री-वन्त्री बन कर सिंहासन दखल कर चुके हैं। शिखरस्थ हो बैठे हैं। तुम लोग तो....खैर, भिक्षा कैसी? कहो न्यायोचित अधिकार है।'

'नहीं, मैं ऐसा नहीं कह सकता हूँ।'

प्रभुचरण कहते रहे, 'हम लोग, अर्थात् तुम्हारी राय में हम जैसे बेवकूफ लोगों

ने, तब किसी तरह की स्वार्थ-भरी प्रत्याशा लेकर काम नहीं किया था। एकमात्र प्रत्याशा थी पराधीनता से मुक्ति। समझ लो, वह काम हो गया। अब कहाँ अधिकार की बात उठती है ? मैं तो इसे भिक्षा ही कहूँगा। आवेदन-पत्र का अर्थ भिक्षा-पात्र ही तो है।'

ध्रुवचरण को जैसे किसी ने कोने में धकेल दिया हो। रुद्ध कण्ठ से बोला, 'मेरी राय में तो ऐसी बात नहीं है। यह एलाउन्स तो एक प्रकार की स्वीकृति है।'

प्रभुचरण के स्वर में व्यंग्य था—'स्वीकृति नहीं विकृति। स्वीकृति क्या माँग कर लेनी पड़ती है, ध्रुव ? देने की गरज तो होनी चाहिए उन्हें, जो देशवासी हैं या जो तुम्हारी सरकार है।'

'यही तो सरकार कर रही है....'

और जिद् करते हुए ध्रुव बोला, 'सब लोगों को देने की घोषणा भी हो गई है। लेकिन कौन कहाँ हैं, जिन्दा हैं या मर गए हैं, यह कैसे पता करेंगे ? घर-घर जाकर पता करेंगे क्या ?'

बहुत देर तक बैठने की वजह से प्रभुचरण ने थकावट महसूस की और लेट कर आहिस्ता से बोले, 'कभी तो उन्हें इसी तरह से ढूंढ निकाला गया था, ध्रुव ! सिर्फ घर-घर घूम कर क्यों, शहर-बाजार, ग्रामों में, पहाड़-पर्वतों में, बस्तियों और नालों तक में, जमीन के नीचे, पेड़ों के ऊपर....कहाँ नहीं ? ढूंढ तो निकाला था न ? तब उस सरकार ने किया था....अब क्यों नहीं कर सकते हैं ?'

ध्रुव बार-बार गुस्से से छोटे भाई के किताब से ढंके चेहरे को देखने की कोशिश कर रहा था। क्रोध से उसके सिर की नसें फट रही थी। समझा-बुझा कर, पटा-पुटा कर उसे इस कमरे में लाया क्यों गया था ? बात समझाने के लिए ही न ? यह न करके, साहब ऐसे किताब में डूबे हैं जैसे परीक्षा की पढ़ाई कर रहे हैं।

और अधिक गुस्सा रोका न गया। कह बैठा, 'यह एक गलत धारणा है—आश्चर्य ! शुभ, तू भी तो कुछ नहीं कह रहा है ?'

शुभचरण न अब जाकर हाथ में ली किताब बन्द करके रखी। सुबह-सुबह लम्बी एक जँभाई ले कर बोला, 'कहने को और है ही क्या ? देख ही तो रहे हो, पिता जी इसे लाइक नहीं कर रहे हैं।'

'लाइक नहीं कर रहे, हैं, एक असत्य धारणा के कारण....सम्मान को भिक्षा समझ बैठने पर....'

'सम्मान ?' प्रभुचरण फिर उठ बैठे।

इस बार वे उत्तेजित हो उठे। बोले, 'इसके-उसके साले, बहनोई या साढुओं के द्वार पर जाकर, धर-पकड़ कर, मंजूर हुए 'सम्मान' से मुझे घृणा है, समझे ! नहीं, घृणा नहीं...नफरत। समझे ! नफरत करता हूँ'....लेट गए प्रभुचरण।

कुछ देर पहले कितना अच्छा लग रहा था।

सुबह-सुबह आकाश में बिखरे रंगों का प्रभाव प्रभुचरण के सदा असन्तुष्ट रहने वाले हृदय पर भी पड़ा था। मन ही मन जरा अनुताप की भावना भी सिर उठा रही थी। इनके बारे में प्रभुचरण शायद कुछ ज्यादा ही अन्यायपूर्ण चिन्ता करते हैं।... पिता से प्यार करते हैं तभी न ऐसी सतर्क दृष्टि उन पर रखते हैं ? प्रभुचरण इस बात को अगर 'सख्ती' समझें तो प्रभुचरण की ही यह गलती है।

इसके अतिरिक्त, सदैव वे पिता की रोग-शय्या के आस-पास बैठे नहीं रह सकते हैं। इसको 'अवहेलना' सोचा जाए, यह क्या उचित है ! उनके पास भी काम है। प्रभुचरण स्वयं जब काम के चक्कर मे घनचक्कर से घूमते तब चारों तरफ देखने का उन्हे समय मिलता था ? इधर-उधर कितने बुड्ढे-बुड्ढियाँ रिश्तेदारी में थीं, जो प्रभुचरण मिलने भर को एक बार पहुँच जाते तो खुशी से वे गद्गद् हो जाते, उनसे मिलने क्या प्रभुचरण जा पाते थे ?....लड़कों के साथ बातें करते हुए इसी तरह की एक चिन्ताधारा मन के अन्तःस्थल में बह रही थी। अत्यन्त उदार हो कर स्वयं को वृद्ध आत्मीयों की श्रेणी में डाल बैठे थे। लेकिन अचानक ही सिर गरम हो गया। समस्त शिराएँ भनभना उठीं। सूख गया—ठंडा रसीला प्रलेप....अच्छा लगने का सुर ही मानों भग हो गया।

उन परमप्रिय हास्योज्ज्वल दो चेहरों की निर्मल हँसी के पीछे, एक गन्दा षड्यन्त्र, चोरी-चोरी झाँक रहा है, देख कर प्रभुचरण का मन घृणा से भर उठा।

ओह, इसीलिए ! इसीलिए दोनो भाई सलाह करके बाप के कमरे मे घुसे थे। मतलब से, षड्यंत्र रच कर।

प्रभुचरण की उत्तेजित सत्ता, मानो घृणा की अनुभूति के खदेड़ने से छटपटाती हुई, बिस्तर से उठ कर, कमरे में चहलकदमी करने लगी। न केवल इस कमरे में बल्कि दीवाल भेद कर बहुत दूर अवलम्बनहीन शून्यता में भी।

लेकिन इतना भी क्या उत्तेजित होना ? प्रभुचरण के लडको ने क्या कोई नयी 'चाल' चली थी ? स्वाधीन सरकार के भण्डारगृह से 'पोलिटिकल सफररों' के लिए ज्यों 'हरिलूट' के बताशे बाँटने की व्यवस्था हुई, त्यों ही तो स्वाधीनता के युद्ध में भाग लेने वाले प्राचीन योद्धा लाइन लगा कर आ खड़े हुये। केवल पन्द्रह दिनों के लिए जेल गया योद्धा भी दौड़ रहा है, प्रमाण-पत्र के दाखिले के लिए, कभी इसके साले को, कभी उसके साढ़ू को, फुफेरे भाई को, ममेरे मामा को पकड़ रहा है। हाथ-पाँव जोड़ रहा है उनके आगे।

हर महीने पेंशन मिलना, कोई मामूली बात है ? या पेंशन नहीं, एक तरह की वृत्ति....हाथ खर्च। इस वृत्ति के अंक, शीर्ण या शुष्क हो, ऐसा भी नहीं....जैसे झाड़ी देख कर अगर कुल्हाडी चलाई जाए तो....अच्छी मात्रा मे प्राप्ति हो सकती है। ऐसा मौका कौन छोड़ेगा ?

सब जैसा कर रहे हैं, प्रभुचरण के लड़के भी वैसा करने की कोशिश कर रहे हैं। उनकी युक्ति भी काटने वाली नहीं, कम से कम उनके या उन जैसों के हिसाब से। उनके अनुसार यह वृत्ति 'सम्मानसूचक' है। लेकिन जिद्दी प्रभुचरण का कहना है कि यह 'भिक्षा' है।

हाँ, जिद्दी प्रभुचरण किसी भी हालत में मानने को तैयार नहीं हैं कि यह सम्मान-सूचक है। इसीलिए उनकी उत्तेजित शिराएँ भी शान्त नही हो रही है।....बार-बार प्रभुचरण को ढकेलती बाहर ले जा रही हैं। ले .जा रही है जगल-मैदान-पानी के ऊपर से, अन्दर से....कहाँ-कहाँ से।

× × ×

अच्छा! घृणा को और भी अच्छी तरह से व्यक्त करने के लिए किसी को 'घिन' कहते सुना था न? उस समय तीव्र तीक्ष्ण स्वर में उच्चारित यह शब्द, प्रभुचरण के कानों के पर्दे फाड़ता अंतःमन तक पहुँच गया था।

प्रभुचरण की स्मृतियो की कोठरी भी अद्भुत है। जिस कोठरी का दरवाज़ा धकेलते ही सोती स्मृतियाँ तस्वीर बन जातीं और फिर धीरे-धीरे जीवित मनुष्य का शरीर धारण कर लेती।

शिराओं का धक्का खा कर प्रभुचरण बाहर आ गए, फिर बाहर से और दूर। जहाँ जा पहुँचे वहाँ एक झटका-सा खा कर प्रभुचरण रुक गए।...दिखाई पड़ीं दो काली आँखें जिनसे आग निकल रही थी और उसी के होंठों से उच्चारित हो रहे थे ये तीखे तीव्र स्वर।

'घृणा? क्या कहा? उससे घृणा करती हूँ? नहीं....इस तरह के फँसी शब्दों से समझाना कठिन है। उसे मैं घृणा नही, उससे 'घिन' है मुझे, समझे? हाँ, घिन।'

प्रभुचरण को दिखाई पड़ा, विह्वल दृष्टि से देखता एक तरुण, उस जलती आग के सामने खड़ा, लड़खड़ा कर बोला, 'फिर भी....वे तो आपके प....पति हैं।'

'पति!'

उन होंठों पर फिर तीक्ष्ण हँसी नाच उठी। एक व्यंगबाण-सा बाहर निकल आया—

'कानूनन यही है। अग्नि-नारायण को साक्षी मान कर पिता ने मुझे उसी के हाथों में सौंपा था। औरत जाति की अपनी कोई सत्ता भी तो नही। आत्मा नहीं है, चिन्ता नहीं है। ज़मीन-जायदाद, बर्तन, कपड़े और सोने-चाँदी की तरह से उसे भी दान कर दिया जाता है। एक मालिक के हाथों से निकल कर दूसरे मालिक के हाथो में चला जाना....और क्या? और मालिक माने ही तो प्रभु, पति—है न?'

उस तरुण युवक ने इससे पूर्व कभी क्या घृणा, व्यंग्य, तीखेपन की ऐसी अभि-व्यक्ति देखी थी?....नही देखी थी। इसीलिए लगभग मुँह फाड़े देखता रह गया था।

'बुद्धू की तरह मुंह फाड़े देख क्या रहा है?'

वही दोनो काली आँखें चमक उठीं।

इस धिक्कार ने तरुण को होश में ला दिया। बोला, 'मैं देख रहा था, आप मनुष्य है या पत्थर की तरुदी ? आप पकड़वा देंगी तो वे लोग आपके पति का खून कर डालेंगे। जानती हैं न ?'

उस अग्निशिखा का नाम 'वल्लता' था। भाग्य का कौतुक समझिए। पृथ्वी पर नाम और नामधारी के बीच कौतुकपूर्ण भिन्नता तो हर समय दिखाई पड़ती है।

तरुलता आँखों से आग उगलना भी जानती है और बिजली गिराना भी। वही बिजली चमका कर बोल उठी, 'जानूँगी क्यों नहीं ? देश के परमशत्रु को हाथों में पाकर खून नहीं करेंगे तो क्या 'सन्देश' खिलाएँगे ?'

युवक बरामदे के एक किनारे धप् से बैठ गया। हाँफते-हाँफते बोला, 'जानती हैं ? जान-बूझ कर पकड़वा देंगी ?'

'हाँ', तरुदी कठोर स्वर में बोली, 'अचानक डर के मारे चूहे की तरह बिल में जा छिपा है। आस-पास कोई भाई-बिरादरी भी नहीं—यही तो वक्त है पकड़ा देने का।'

युवक उस भयावह निष्ठुरता की ओर देखने का साहस न कर सका। दूसरी तरफ देख कर तीव्र स्वर में बोल उठा—

'पुलिस साहब का खून हो गया तो आप विधवा हो जाएँगी इसका ख्याल है ?'

तरुदी बरामदे का खम्भा पकड़े खड़ी थी। अब ज़मीन पर बैठ गई। बोली, 'तुच्छ एक औरत का विधवा होना पृथ्वी के लिए ऐसी कौन-सी बड़ी घटना है ? इसके लिए देश के स्वार्थ को बलि दे डालूँ, प्रभु। तब तू देश को क्या खाक प्यार करता है रे।'

अतएव यह स्पष्ट हो गया कि लड़का प्रभु है।

प्रभु निर्जीव-सा बैठा जरूर है लेकिन उसके कण्ठ-स्वर में जिद् है। जिद् के कारण आवाज काँप रही थी। रुँधी आवाज में बोला—'तो क्या अपने पति को पकड़वा देंगी ? उनका खून करवा देंगी ?'

तरुदी थक चुकी थीं। मुरझाई हँसी हँस कर कर बोलीं, 'मेरे भाग्य में अगर गन्दा, घिनौना, चूहा, छछुन्दर किड़हा कुत्ता पति के रूप में बदा हो तो उसकी पूजा कैसे कर सकती हूँ ?'

'फिर भी....'

प्रभु नामक लड़का अब कड़क कर बोला, 'तब भी तो उसके साथ रह रही हो।'

'हाँ, रहती हूँ।'

तरुलता अजीब-सी हँसी हँस कर बोली, 'इसका घर छोड़ कर निकलूँगी तो देश में और जितने चूहे, कुत्ते, सूअर हैं, सब मेरे साथ रहना चाहेंगे रे प्रभु।'

'मतलब ?'

प्रभु ने आश्चर्य से देखा।

तरुलता हँस कर बोली, 'इतनी उम्र हो गई, फिर भी तू वैसा ही बुद्धू रह गया

है, प्रभु ! इसके अतिरिक्त औरत होकर जन्म लेने में कितना कष्ट है, इसे तू क्या समझेगा ! विधाता पुरुष भी तो 'पुरुष' ही है। इसीलिए तो औरतों को ढीठ रखने के लिए ऐसी एक मशीन बनाई है। घृणा हो गई है जीवन से।'

अब प्रभु गम्भीर हुआ—'अगर यही बात है तो पुलिस साहब के मरने पर आप पर और मुसीबत आएगी। आपकी रक्षा तो फिलहाल कर ही रहे हैं। तब ?'

अचानक तरुलता का चेहरा उज्ज्वल हो उठा। बोली, 'तब ? तब पूर्णतः तेरे दल में आकर सहयोग दूँगी ? उस आश्रय में कम से कम ऐसे गन्दे जीव-जन्तु तो नहीं हैं। अपने दल में मुझे लेगा नहीं ?'

पर तरुलता नामक 'आग के गोले' की अर्जी क्या मंजूर हो सकी थी ?

नहीं !

प्रभु नाम के उस 'विप्लवी बनने के अयोग्य' संस्कारबद्ध लड़के ने देश के हित के आगे, एक तुच्छ नारी के विधवा हो जाने की सम्भावना को महत्व दिया। क्यों न देता भला ? जब से उसने होश सम्भाला था तब से उसने स्त्री जाति के वैधव्य की विभीषिका का भयंकर चेहरा देखा था। पहले 'शॉक' ने एक शिशु की समस्त चेतना को मानो पटक कर बेहोश कर दिया था। यह 'शॉक' था नीरू मौसी का वैधव्य।

नीरू मौसी प्रभुचरण की किस रिश्ते से मौसी होती थीं, यह प्रभु नहीं जानता था। उन्हे नानाजी के घर में देखा था। देखा करता था कि अक्सर ही वह ससुराल से सज-धज कर हँसते हुए आती थीं। कुछ दिनों बाद उन्हे फिर रोते-रोते सूज आई आँखें लिए, ससुराल वापस जाते हुए भी देखा था।

गाड़ी से उनका उतरना और गाड़ी पर आकर बैठने के बीच का समय, जैसे एक उत्सव था। कम से कम प्रभुचरण को ऐसा ही लगता था। घर का चेहरा ही जैसे बदल जाता था।

मँझली नानी कहतीं—'बाप रे ! घर में एक आदमी आया है या सौ, यह समझ पाना मुश्किल हो रहा है।'

गहना, कपड़ा और हँसी से झिलमिला उठतीं वह। हँसते-हँसते लोट जातीं। कहती, 'पर भई, यह कह कर बदनाम न करना कि नीरू सौ जनों का खाना भी खा रही है।'

मँझली नानी भी हँस कर कहतीं—'यह भी कह सकती हूँ। तेरी वजह से रसोई में रोज ही उत्सव का भोज तैयार होता है। लड़की ससुराल से आने पर उसे अच्छा-बुरा खिला कर आदर-सत्कार करने का नियम है—यही तो जानती थी। यह नहीं, घर भर के लिए भी बनवाना पड़ेगा, वरना लड़की खाएगी नहीं। तो फिर ? इस पल्टन को रोज अगर दावत खिलानी पड़े तो सौ जनों का खर्च नहीं कहलाएगा ?'

'ओ बाबा, मँझली नानी, नीरू मौसी फिर लुढ़क जातीं—'पिछले जन्म में तुम अवश्य ही बनिये के घर ब्याही थीं। इतना पक्का हिसाब रखती हो ?'

नीरू मौसी प्रभुचरण के नानाओं को 'मामा' कह कर पुकारती थी। सभी नाना,

नीरू के नाम पर गद्‌गद् हो उठते। और उसे हर बात के लिए प्रश्रय भी मिलता। वह अगर जिद् कर बैठें, 'मामा, मामियों के साथ चण्डी मंदिर जाऊँगी।'

मामा लोग स्तब्ध रह जाते, फिर भी हँस कर कहते, 'क्यों रे? तेरे ऐसे गन्दे ख्यालात क्यों?'

नीरू मौसी भी कहती—'लो और सुनो! भगवान्-दर्शन को गन्दा ख्याल कह रहे हो? ब्राह्मण के घर के लड़के होकर तुम लोगों के होंठों पर ऐसे शब्द? भगवान् के दर्शन करना क्या बुरी बात है?'

मामा लोग शर्मिन्दा होते—'अरे, वह बात नहीं है। दूरी के कारण कह रहा था। चण्डी मंदिर क्या यहाँ है?'

नीरू मौसी भमक कर कह बैठतीं—'तो क्या तीर्थस्थल तुम्हारे दरवाज़े पर होगा, मामा?' वह जब मुँह भमका कर कुछ कहतीं तो उनके गहने-कपड़े भी झिलमिला उठते—'तीर्थस्थल जितनी दूर होगा उतना ही तो पुण्य मिलेगा। वरना लोग केदार-बद्रीनाथ क्यों भागते? अमरनाथ ही क्यों जाते? गया, काशी, वृन्दावन जाने के लिए ही क्यों मरा करते हैं? उन सबकी तुलना में तो चण्डी मंदिर इतना पास है। समझ लो घर के आँगन में....सिर्फ तीन कोस का रास्ता है। मामियाँ तो कभी निकल नहीं पाती हैं। जब से इस घर में आई है, चौका-चूल्हा में ही व्यस्त रहती हैं। तुम लोग खुद तो रह-रह कर धर्म-कर्म के लिए निकल पड़ते हो।'

भौजी के इस सीधे आक्रमण से मामा विचलित हों, यह तो स्वाभाविक ही था। मामा विचलित होकर ही बोले—'अपना कहीं जाना और महिलाओं को लेकर जाना, फर्क नहीं है? इसमें कितना झंझट है जानती है न?'

'जानती हूँ।'

नीरू मौसी ने एक तरफ गर्दन झुका कर कहा—'पता क्यों नहीं रहेगा? सब पता है। तुम लोगों के लिए महिला का अर्थ ही झंझट होता है। यह सब बातें तो शादी से पहले सोचनी थी। गले में जब लटकाया है....'

नीरू मौसी की हिम्मत देख कर सभी चकित रह जाते। नीरू मौसी की माँ, प्रभु की 'मोटकी नानी' तक कहतीं, 'मामाओं से कैसे तू जबान लड़ाती है, रे नीरो? मेरे तो सुन कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।'

नीरो उत्तर देतीं, 'क्यों बाबा! मैं क्या तुम्हारे भाइयों को गाली दे रही हूँ? बिल्कुल ठीक ही तो कह रही हूँ? डरने की क्या बात है?'

कह कर पार भी पा जाती थी।

मामा लोग इसके बाद भी नीरू से बोलना बन्द नहीं करते, मुँह तक नहीं बिचकाते। वही पहले की तरह नीरू के नाम पर गद्‌गद्।

प्रभु की छोटी दीदी धीरे से कहती, 'पैसा है न, सभी सातों खून माफ हैं। और कोई इस तरह से कह कर तो देखे ज़रा? अभी मज़ा चखा देंगे।'

'नहीं, ऐसी हिम्मत किसी में है नहीं।'

असल में हिम्मत होनी चाहिए। हिम्मत ही बड़ी चीज़ है। नीरू मौसी हिम्मती थीं। या फिर उनका पैसा ही हिम्मत का जन्मदाता था। उनके पास पैसा है, यह बात स्पष्ट थी। रंगीन साड़ी का पीठ पर लटका आंचल इसका प्रमाण था। वह आँचल का छोर पैसे से भरा एक पोटली की तरह पीठ पर लटका करता था। और बात-बात पर नीरू मौसी उस आंचल की गांठ खोला करती।

घर के जितने भी नौकर-चाकर, नौकरानी, दूध दुहनेवाली, भूसा कूटनेवाली, मछली काटने वाली, धान कूटने वाली थीं—सभी नीरू मौसी से अपने दुःख की गाथा गातीं। और उस गाथा को रोकने की दवा नीरू मौसी की पीठ पर गांठ बँधी अवस्था में लटकती होती।

प्रभु लोग यानी कि घर के छोटे-छोटे लड़के-लड़कियां क्या नहीं समझते थे कि नीरू मौसी के पास पैसा है? नीरू हँस रही है, गप् मार रही है, घूम-फिर रही है, पड़ोस में जा रही है, लगातार बोल रही है और अजीब-अजीब किस्म के हो-हल्ले की योजना बना रही है।

अचानक नीरू ने योजना बनाई, गरमी के दिनों में चांदनी रात में, छत पर सोया जाएगा। दासियां घड़े भर-भर पानी लेकर छत धोने चलीं। चटाई, दरी, गद्दा, तकिया-बिस्तर का पहाड़ खींच-खींच कर ऊपर ले गईं। छत की चहरदीवारी के सहारे बांस बांध कर, मसहरी टांगी गईं, एक के बाद एक। घड़ा-सुराही भर-भर छत पर ठंडा पानी पहुँचाया गया, उसके साथ पानी पीने का गिलास, लोटा, अँगोछा और पखा भी पहुँचा।

'जो भूत से नहीं डरते है, वही आयेंगे।' नीरू मौसी आवाज़ लगाती—'जिनके दिलो में भय का घर है, वह यहां न आयें। डरपोक मज़ा किरकिरा कर देंगे।'

'डरपोक' कहलाने के डर से और नयेपन की उत्तेजनावश, लगभग सभी ऊपर पहुँच जाते। शायद ही एक-आध रह जाते, वह भी अपनी माताओ के मना करने के कारण। अर्थात् माताएँ डरपोक थी।

हालांकि गृहणियो में से दो-एक जने पहरा देने के नाम पर ऊपर आती थीं और हँस कर कहती भी थीं, 'बाप रे नीरी, तेरा दिमाग इतना काम भी करता है। खैर, यह अच्छी अकल लगाई। कमरे के अन्दर गरमी में सड़ने से यह कहीं ज्यादा अच्छा है।'

सोने से पहले गाना गाया जाता, नाच होता, कहानी सुनाई जाती और साथ-साथ मुंह भी चलता रहता। जगे रहो तो भूख क्या नहीं लगती है? इसमें आश्चर्य की बात तो यह थी कि न जाने नीरू मौसी कैसे 'आओ खाना', 'खाना आओ' कह-कह कर हाथ हिलातीं और आसमान से खाना उनकी मुट्ठी में आ जाता। खुरमा, मीठी पपड़ियां, जलेबी, छेने की मीठी लड्या....अतएव नीरू मौसी की मुट्ठी पकड़ने के लिए मार-पीट की नौबत आ जाती।

ऐसा लगता कोई बड़ा भारी उत्सव हो। विभू कहा करता, 'मन्त्र नहीं हाथी है। पहले से चद्दर और मसहरी के नीचे छिपा कर रखती हैं। मन्त्र पढ़ने के बहाने हाथ की सफाई दिखा कर निकाल लेती हैं।'

ऐसा हो सकता है।

लेकिन इससे क्या होता है? मिठाई की मिठास तो कम नहीं होती है।

× × ×

हालांकि जब तक नीरू मौसी उपस्थित रहतीं, मिठाई का स्वाद जीभ से उतरता ही नहीं था। जब तब, नीरू मौसी के आंचल की गांठ खुल जाती और उसमें से चमचमाता हुआ एक या दो चांदी का गोल रुपया, लड़कों के नेता के हाथों में चला आता!

उनका चेहरा कौतुक से भरा, उज्ज्वल हो उठा। कहतीं—'ऐ, खुशबू आ रही है न? जरूर जगन्नाथ की दुकान पर घी की जलेबी तली जा रही है। गरमागरम खाने में जो मजा आयेगा....आह।'

या तो चुपचाप सुबह-सुबह बुला कर कहतीं, 'अरे सुन, जगन्नाथ की दूकान खुल गई है?'

आशा, आग्रह से आवाज कांप उठती। कांपते हुए कई स्वर निकलते—'क.... ब...की।'

'तब ये ले। दौड़ कर चला जा। दो रुपए की पकौड़ी लेकर सीधे आम के बाग में पहुँच जा। मैं बाकी लोगों को साथ लेकर पहुँच रही हूँ।'

लेकिन जिसको रुपया दिया गया उसकी आंखें भी तो उसी रुपए के बराबर हो गई थीं।

'दो रुपए!'

'अरे जा! दो रुपए से होता क्या है? देख लेना, समुद्र में दो बूंदें छींटे-सा होगा। फिर कहीं न दुकान दौड़ना पड़ जाए। सुबह-सुबह गरम पकौड़ी—आह! मजा आ जाएगा।'

शान्त स्वभाव के प्रभु ने हमेशा ही देखा है, नीरू मौसी कितना भी शोर क्यों न मचाएँ, खुद बहुत कम ही खाती हैं। स्पष्ट है लड़कों की खुशी के लिए ही यह सब करती हैं।

कभी-कभी बड़ों को खुश करने का प्रबन्ध भी करती थीं नीरू मौसी। वह था आम के बाग में वन-भोजन। सपरिवार, सारा दिन जुट कर हुल्लड़ करना।

चूल्हा बनाया जाता, लकड़ी का बोझ इकट्ठा होता, घर के बड़े कामों के लिए हटा कर रखे गए बड़े बर्तन, करछुल, कड़ाहे निकाले जाते। क्योंकि पड़ोसियों को भी हिस्सा दिया जाता था। गृहणियाँ लग जातीं खिचड़ी और खीर का झमेला झेलने, उनसे छोटी बहुएँ तलने बैठतीं बेगन और पापड़ी। नीरू मौसी कहतीं, चटनी लेकिन मैं बनाऊँगी क्योंकि जब तक आँखें बन्द रख कर मीठा नहीं पड़ेगा तब तक चटनी, चटनी नहीं कहलाएगी। तुम लोग तो मीठा डालते वक्त जरूर आँखें खुली रखोगी।'

लेकिन आँखें बन्द रख कर खर्च कौन करता था?

नीरू मौसी ही।

मानो वही प्रबन्धकर्ता हों। या फिर निमन्त्रण देने वाली।

मामा मामी, सभी कहते, 'पैसा है, इसलिए क्या इस तरह से लुटाया जाता है बेटी।'

नीरू मौसी हँस कर उत्तर देती, 'अगर न लुटा कर उठा कर रख दूँ तो बेकार है न। तुम्ही बताओ। अगर एक टोकरी रुपया उठा कर रखो, खर्च न करो तो कैसे पता चलेगा, रुपया है? कोई फर्क होगा? खर्च करने पर ही तो पता चलेगा न कि यह चीज़ रुपया है।'

नीरू मौसी के पति, सुना था, दूर पर रहते हैं। लगभग आधे साल बाहर-बाहर ही रहते हैं। उसी समय नीरू मौसी मायके आतीं क्योंकि उस घर में औरत अथवा सास जैसी कोई महिला नहीं थी। पत्नी मर गई थीं ऐसे एक जेठ और कुंवारा एक देवर.... यही उनका परिवार था। अतएव विदेश-यात्रा के समय नीरू मौसी के पति अपनी पत्नी को बाप के घर पहुँचा जाते और लौटने वक्त ले जाते।

लेकिन उसी ले जाने के नियम को क्या बरकरार रख सके थे नीरू मौसा? अचानक ही नियम की लकीर मिटा कर स्वयं अदृश्य हो गए।

शैशव, बाल्य-काल की कोई भयावह स्मृति मानो चेतना की गहराई तक बींधती चली गई।

इसीलिए उस भयानक दोपहर की दमघोंटू याददाश्त ने प्रभुचरण को मूर्ख बना दिया। क्या करे यह लड़का? पुलिस साहब को पकड़वाने के लिए हो रहे षड्यन्त्र के वक्त, वह फँस गया।....

गरमी की उमसभरी दोपहर थी। प्रभु स्लेट पेंसिल लेकर सवाल लगाने की व्यर्थ ही कोशिश कर रहा था कि अचानक चिल्लाने की आवाज़ ने उसकी चेतना पर मानो हथौड़ा मारा।

'क्या हुआ?'

क्या अचानक भूचाल आ गया है? जिससे छत के गिरने से लोग कुचल कर मर गए हैं? यह आर्तनाद उसी का है क्या?

या कहीं आग लगी है?

हो सकता है! कभी प्रभु ने धान के खलिहान में आग लगते देखा था, वही याद आ गया। उस दिन भी इसी तरह की भयानक आवाज़ सुनी थी। एक साथ कई कण्ठ-स्वरों का आर्तनाद।

इसी तरह का आर्तनाद सुन कर, डर के मारे पत्थर बन गया प्रभु। बहुत देर तक हाथ-पाँव तक नहीं हिला सका।

उसके बाद वह आर्तनाद, धीरे-धीरे, टूट-टूट कर बिखरने लगा। तब पता चला कि यह फलाने की आवाज़ है।

लेकिन सब कोई मिल कर ऐसी हृदय विदारक आवाज़ में रो क्यों रहे हैं? 'क्यों' अपने हृदय पर धक्के मार रहा था पर उठ कर जाने और पता करने का साहस

न था। छोटे होने पर भी प्रभु को समझते देर नहीं लगी कि यह रोना, मृत्यु का रोना है।

लेकिन किसकी मृत्यु ?

डर के मारे हाथ-पाँव ठंडे पड़ने लगे, हृदय धड़्-धड़् धड़क रहा था, फिर भी उठ न सका।

स्वयं उठ न सकने पर भी, खबर कानों तक आ ही पहुँची—मृत्यु का रोना ही है। नीरू मौसी की ससुराल से दोपहर में यह रोने वाली खबर आई है।.... खबर जान लेने के बाद प्रभु को बहुत से अन्य दृश्य देखने पड़े। नानियों ने छाती कूट-कूट कर लाल कर डाला। मोटकी नानी दिवाल पर सिर पीट-पीट कर खून से लथपथ हो गईं। नाना लोग, उनके बड़े-बड़े लड़के, सभी बारामदे में टहल रहे थे। घर की दूसरी औरतें इतना रोईं कि कुहराम हो गया। छोटे बच्चे कठपुतली की तरह चुपचाप खड़े रह गए। नौकर-नौकरानियों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। पड़ोस की गृहणियाँ भी आ कर जमा होने लगीं।

लेकिन नीरू मौसी ?

नहीं, प्रभु ने उन्हें बड़ी देर बाद देखा था। बहुत सारी महिलाएँ उन्हें खींचती-घसीटती तालाब की तरफ लिए जा रही थीं। इन्हीं में से कोई कहती जा रही थी—'नहीं जाऊँगी' 'नहीं करूँगी' 'नहीं हो सकेगा' कहने से कहीं काम चलता है, बेटी ? भगवान् ने जब तुम्हारे भाग्य पर जलते अंगारे डाल दिए हैं तब सभी कुछ कर सकोगी।....इतने दिनों तक राजरानी बनी रहीं। अब तो कंगालिनी का जीवन शुरू हुआ।'

इसी के बीच-बीच में चल रही थी चर्चा....भगवान् की निष्ठुरता की, बात चल रही थी पृथ्वी की अनियमितता पर।

उसके बाद ?

उसके बाद की बात, सोचते ही प्रभु के हाथ-पाँव ठंडे हो जाते हैं। कितनी बार मानो साँस रुक-सी गई है। भगवान् ही जानते थे नीरू मौसी को ले जा कर क्या कर लाए।

उन्हें क्या तालाब में डुबो आए ?

या कहीं जमीन में गाड़ कर रख आए ? और उनकी जगह पर भयानक चेहरे वाली किसी और को, लेकर रोते-चीखते घर लौट आईं।

उस चेहरे को फिर कभी उन लोगों ने नीरू मौसी कह कर नहीं पुकारा था। उस चेहरे ने फिर कभी उस बालक वाहिनी की तरफ पलट कर देखा तक न था। कौन जाने कहाँ खो गईं वह....कभी ट्रेन पर बैठ कर वापस जाते भी तो प्रभु लोगों ने नहीं देखा था।

लौट कर अब जाएँगी कहाँ ?

किसके पास ?

शायद आखिरी बार वह गाड़ी पर बैठी थीं जब इतनी बड़ी पल्टन लेकर चण्डी मदिर गई थीं। कभी-कभी स्मृति-पटल पर, रोते हुए आते-जाते दल की झलक बिजली सी कौंध जाती है। बिजली-सी एक रोशनी आँखो के आगे चमक कर गायब हो जाती थी....वह था नीरू मौसी के कान में झिलमिलाता एक गहना, उसका हिलना-डुलना।

लेकिन उसके बाद कितने दिन बीत गए थे।

अच्छा, सचमुच ही क्या नीरू नाम की लड़की को, इन लोगों ने चुपचाप मार डाला था ? प्रभु विभू के ननिहालवालों ने ?

विभू ने ही यह बात कही थी, 'खून के अलावा और क्या हो सकता है ? जिसे 'नीरू नीरू' कहा करते हैं, वह क्या नीरू मौसी है ?'

नहीं, कभी नहीं ! फिर भी वे लोग इसी नाम से उसे बुलाते थे। एक गन्दी मैली, तेलचिट्ठे कपड़े में लिपटी बदसूरत बुढिया को नीरू पुकारते। हाँ, बुढ़िया ही। बुढिया के अतिरिक्त अन्य कौन होगा जो अपने को गन्दे मैले कपड़ों में लपेटे फिरेगा ?

उस बुढ़िया को वे लोग सदैव डांटते फटकारते। यहां तक कि वह मोटकी नानी तक।

'अच्छा नीरी, अभी तक सारा काम पड़ा है ? तुझे क्या कभी अक्ल नहीं आएगी रे ?....ये नीरी, पूजा के बर्तन अभी तक पड़े हैं ? कब मांजे जाएँगे ? नहीं कर सकती थी तो बताया क्यों नहीं था बेटी, कोई और कर लेता ?....नीरी, बरी की दाल अगर भिगाई भी तो इतनी जरा-सी क्यों ? तू बेटी, बेहद कामचोर है, काम के नाम पर तुझे साँप सूंघ जाता है।'

नीरी....नीरी....नीरी।

लेकिन नाना लोग ?

मामा लोग ? वे सब भी क्या 'नीरू' शब्द उच्चारित करना भूल गए थे ? क्या पता, हो सकता है, किसी को कभी बुलाते तो सुना नहीं।

जीवन में यही पहला 'शॉक' था।

उसके बाद और भी कई बार इसी तरह से चिल्ला कर रोते देखा था। प्रभु-चरण नाम के लड़के ने देखा था, सभी स्त्रियाँ कैसी बदल जाती हैं। वह बदल जाना कितना भयंकर था, वीभत्स था।

अतएव तरुलता के 'पुलिस साहब' पति, स्वयं पकड़े न जाकर, एक 'राजद्रोही' दल को बड़े उत्साह से पकड़वा कर पदोन्नति का मेडल पा गए।

लेकिन तरुलता ?

उसने प्रभु के पास बड़े आग्रह से आश्रय माँगा था। उसका क्या हुआ ?

जेल में रहते वक्त कितनी बार प्रभुचरण ने सोचा था, 'उसके लिए कैसी सजा मंजूर हुई ?"

शंकर मछली की खाल का चाबुक ?

या अंगुली के पोरों में आलपिन चुभोना ? शरीर पर जलती सिगरेट छुलाना ?

मेज के किनारे सिर झुका कर लटके रहना, कई-कई घंटे, जब तक कि आँखों से, होठों के पोरों से खून न चूने लगे ?

अथवा अकेली—सेल में ?

या हमेशा के लिए पृथ्वी पर से उठा दी गई ?

जेल से निकल कर, उस लड़के ने, यह खबर जानने की क्या कम कोशिश की थी ?

क्या हुआ तरुदी का ?

नहीं पता चला था।

मन ही मन कहा था, 'विभू, तू अगर रहता, तू जरूर पता चला लेता।'

स्वाधीनता संग्राम की सेना।

धत् !

प्रभुचरण अपने ही मुँह पर जैसे बालू फेंक कर मारते।

शौक !

फैशन !

दो एक बार जेल न गए तो युवा-समाज में मुँह दिखाना मुश्किल था। इसीलिए जेल जाना पड़ा था। मन में आग रहे तो कुछ न भी जला सको, स्वयं जल सकते हो।

पर कुछ नहीं हुआ था।

कुछ होता भी नहीं। प्रभुचरण में वह क्षमता नहीं थी। दूसरों की आग से कब तक जला जा सकता है ?

अतएव प्रभुचरण ने अन्त में जीवन का वही रास्ता चुन लिया था जिसके अन्तिम चरण में मौजूद थी यह सुख शय्या, मेज पर सजा कर रखी गई तरह-तरह की अनगिनत दवाएँ, परिवार के हर सदस्य की सदा सतर्क दृष्टि, सेवा की सुव्यवस्था। और कहते हैं कि....

मन ही मन चहलकदमी करते हुए प्रभुचरण फिर लौट आए। सामने की दीवाल पर उभर आई तस्वीरें धीरे-धीरे धुंधली पड़ कर अदृश्य हो गईं। सिर्फ दीवाल पर कलेण्डर लटकता रह गया।

दूध से सफेद विस्तर पर लेटे प्रभुचरण धिक्कार उठे—'स्वाधीनता संग्राम के सैनिक ! उसके लिए मजदूरी वसूल करनी होगी....छिः छिः।'

अन्त में लड़का ही विद्रोह की घोषणा कर बैठा।

पिता के घर जाने के लिए अलमारी के दोनो पट खुले छोड़ कर लड़के की पोशाक तीन-तीन बार बदल चुकी थी। चौथी बार टूलू जब उसके कपडे निकाल रही थी, अचानक बबुआ छिटक कर दूर खड़ा हो गया। माँ के हाथो से सबसे बढ़िया पोशाक झपट कर उसने दूर फेंकते हुए धमका कर घोषणा की—'मैं कुछ नहीं पहनूँगा। मामा के घर भी नही जाऊँगा। मैं तो नंगे बदन ही रहूँगा।'

कहने के साथ-साथ उसने करनी और कथनी में समता बनाए रखने के इरादे से बदन पर चढ़ी बनियान भी उतार डालने की कोशिश की और सिर निकाल कर उतारने में किसी हद तक सफल भी हो गया। जालीदार सैंडो बनियान को खींच कर कन्धे से नीचे उतार डाला।....यह सब क्षण भर मे घटित हो गया। अन्त में बनियान पाँव के नीचे से उतार कर लात से हटाते हुए, दोनों हाथो से संवारे हुए बालों को बिगाड़ने लग गया।

इस नारकीय काण्ड के बाद भी मिजाज ठीक रख सके, ऐसी स्नेहमयी जननी जगत् में कहीं किसी जगह है, इस पर सन्देह है। उस पर पहली सन्तान की तरुणी जननी।....

सुना है जो अचानक ही एक विशाल साम्राज्य की अधिकारिणी बन बैठी है। नए प्राप्त इस साम्राज्य की परिचालना के लिए वह सर्वोच्च अंक प्राप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ है, और छल-बल हो, अथवा कौशल, उसे प्राप्त करने का प्रयास करती जा रही है।

उसी का लड़का अगर सर्वश्रेष्ठ नही हुआ अर्थात् अ-साधारण जीनियस न हुआ तो माँ किसी को मुँह कैसे दिखाएगी ? इसके अतिरिक्त...इस साम्राज्य को मुट्ठी में न रख सकी तो सुख कहाँ ?

अतएव मनोवासना तथा मन की धारणा चरितार्थ करने के लिए उसी जननी को अनुशासन करना पड़ता। समझा-बुझा कर, डाँट-डपट कर खुशामद करती पड़ती। हर तरह की शक्ति का प्रयोग करने वाली नीति अपनानी पड़ती।

लड़के को रूप-गुण में, बुद्धि विद्या में, सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में लोगों के सामने अगर सर्वोत्तम प्रस्तुत न कर पाई तो जननी का अहंकार परितृप्त नही हो पाता है। रूप तो नितान्त ही विधि का विधान है। विधाता अगर उधर कृपणता करें तो अन्य अनेक उपकरणों द्वारा उसे छिपाया जा सकता है और उसी छिपाने के प्रयास में साज-सज्जा का हथियार कब्जे में लाने का मात्राएँ अथक प्रयास करती हैं।

हालांकि संसार में अन्य अनेक काम अपनी इच्छा से कर पाना संभव होते हुए भी अपनी ही संतान को परिचालित कर पाना कदापि संभव नही। लेकिन ज्ञानचक्षु उन्मीलित होते-होते तो जिन्दगी खत्म हो जाती है—यही एक असुविधा है। शैशव सुलभ

शैतानियाँ या बाल सुलभ बदमाशियाँ 'बड़े होने पर ठीक हो जाएँगी !' कहना आसान है । ठीक हुई कि नहीं इसका पता तो बड़े होने पर ही चलेगा न ?

टूलू भी समझती है कि बबुआ बड़ा होने पर सुधर जाएगा । सिर्फ इच्छापूर्ति में होती देर के कारण ही वह धैर्य धारण करने में असफल है । इसलिए लड़के के इस नाटकीय व्यवहार को नाटकीय रूप देने के लिए बाध्य होती है । बनियान उतार कर पाँव से कुचलने तक की घटना को वह आँखें फैला कर देख रही थी, लेकिन बाल बिगाड़ने वाली बात ने उसके धैर्य का बाँध तोड़ डाला । ठाय ठाय—उसने तब से इतने जतन से लगाए गए क्रीम-पाउडर वाले गाल पर दो चाँटे रसीद दिये ।

बताना व्यर्थ है, उसके बाद तो जो हुआ वह केवल नाटकीय नहीं रह गया । रसमिश्रित इस नाटक में बम फटे, गोले बरसे । फलस्वरूप एक तीसरे योद्धा का रणक्षेत्र में आविर्भाव हुआ ।

टूलू का पति ससुराल जाने के लिए इतने तड़के नहाने के लिए बाथरूम में घुसा था । उसी बन्दीदशा में वह बगल वाले कमरे में से आती भयावह शब्द-तरंगों को सुन रहा था । थोड़ी देर के लिए नल बन्द रख कर, बाल्टी की झनझनाहट और हृदय की धड़कन बन्द रख कर, इस गर्जन-तर्जन का कारण जानने की व्यर्थ कोशिश करने के बाद, जल्दी से काम निपटा कर बाहर निकलते ही चिल्लाया, 'क्या मामला है ? क्या हुआ है ?'

टूलू के पति के, अर्थात् आफिस के मिस्टर रॉय के शरीर पर, इस वक्त एक बड़ा भारी तौलिया लिपटा था और कन्धे पर एक छोटी भीगी तौलिया रखी थी । पाँव पोंछ नहीं पाया था, इसीलिए जहाँ खड़ा था वहाँ पानी से गीला हो गया । और सिर पर भी ठीक से सुखा न पाने के कारण माथा और गला भी पानी से तर था ।

टूलू के पति को देख कर यही लग रहा है कि बेचारा उपायहीन होकर ही स्नान-गृह से बाहर निकल आया है ।

उस वक्त इस तरफ का दृश्य था—बबुआ नामक केवल तीन वर्षीय भयंकर शैतान, जमीन पर, अपने दो हाथ एवं दो पाँवों की मदद से चक्की की तरह चक्कर काट रहा था । साथ ही साथ अपनी एकमात्र रसना की सहायता से महाप्रलय के ताण्डव शब्द की सृष्टि कर रहा था ।...और उसकी माँ ? उसकी माँ सिंहनी का रूप धारण कर अलमारी में से तह किए कपड़े निकाल-निकाल कर इधर-उधर कमरे में फेंकते हुए चील की-सी आवाज में घोषणा कर रही थी—'जाए, सब चला जाए । सारी चीजें उठा कर रास्ते पर फेंक दूँगी, भिखारी-बच्चों को बाँट दूँगी, नाली में बहा दूँगी । तू देहाती लड़कों की तरह एक फटा पैन्ट पहन कर घूमेगा । बदन पर तेरे मैं कीचड़ मल दूँगी....पाजी, शैतान, बिच्छू, नीच...'

एस० के० राय अर्थात् सरित कुमार ने एक दृष्टि क्लाइमैक्स पर पहुँचे इस दृश्य पर डालते हुए घटना समझने की चेष्टा की। फिर व्यंगोक्ति की—'तुम यह क्या कर रही हो?'

चिल्लाहट पचाने में सिद्धहस्त टूलू कभी विचलित नहीं होती है, परन्तु व्यंगोक्ति, वह भी टूलू की तरफ देखते हुए....अर्थात् टूलू को अपराधी समझ कर कटघरे में खड़ा किया गया? तब? तब भी क्या वह विचलित न हो? पति की चिल्लाहट सुन कर जैसे अविचिलित रहती है वैसी ही रहे?

टूलू मुड़ कर खड़ी हो गई। आवाज और तेज करते हुए चिल्लाई, 'दिखाई नहीं पड़ रहा है क्या कर रही हूँ? मैं इस जानवर के गले में चेन बाँध कर रख दूँगी। फिर पिताजी के पास चली जाऊँगी। यह नीच-बज्जात-शैतान लड़का बिच्छू है।'

अब सरित कुमार के होंठों पर नाच उठी व्यंगात्मक हँसी।....उसी हँसी का प्रलेप वाणी में लगता हुआ बोला, 'जो भी दोष क्यों न हो, जानवरों तो कम से कम जानवर ही रहता है। इतनी चीजें एक साथ नहीं हो सकती हैं।'

बापी को कमरे में आते देख कर बबुआ ने चक्कर काटना सामयिक रूप से रोक दिया-था। वह बाप के मनोभाव का निरीक्षण कर रहा था। ठीक से समझ न सका कि बापी उसका समर्थक है या माँ का। इसीलिए निज कर्तव्य पर पुनः ध्यान देते हुए चिल्लाना आरम्भ किया, 'मुझे जानवर कहा है? अब मैं सबको काटूँगा। बापी को, माँ को, सुबल को, खोखा की माँ को, हाँ-हाँ करके काट लूँगा।'

बाप ने पूछा, 'काट खाएगा?'

'क्यों नहीं काटूँगा? मैं तो जानवर हूँ। जानवर तो काट खाते हैं।'

'वाह कितना अच्छा लड़का तैयार हो रहा है?'

बबुआ के पिता, इतना कह कर सारा उत्तरदायित्व कटघरे में खड़े अपराधी के सिर पर थोप कर, इस कमरे से निकल गए, अपने निजी ढंग से कन्धे नचा कर। यद्यपि नंगे बदन में यह मुद्रा उतनी उभरती नहीं है।

अचानक टूलू चुप हो गई। कुछ सेकण्ड स्थिर खड़ी रही। उसके बाद ही, शायद आदत के अनुसार लगभग खाली हो गई आलमारी के पल्ले धम् से बन्द करके, उसी दूसरे कमरे की तरफ चल पड़ी।

सरित उस वक्त गीले बालों में कंघी फेर रहा था और कंघी का पानी झाड़ कर कमरे के फर्श पर फेंक रहा था।

उधर देख कर टूलू बोली, 'यह क्या हो रहा है?'

सरित ने उत्तर नहीं दिया, सिर्फ भौंहे सिकोड़ कर देखा।

जोर डालते हुए टूलू बोली, 'मैं तो बहुत ही असभ्य लड़का तैयार कर रही हूँ। पर तुम्हारी माँ ने भी कोई सु-सभ्य लड़का नहीं तैयार किया है।'

लेकिन क्या यही कहने के लिए उस कमरे से यहाँ छिटक कर चली आई थी टूलू? इतनी-सी तुच्छ बात? सिर पर खून सवार हो जाने की वजह से कुछ कह बैठने

का संकल्प उस वक्त सिर उठा रहा था। तो फिर ? बुद्दू की तरह इतनी तुच्छ बात के वक्तव्य को ऊपर क्यों चढ़ा बैठी ?

सरित कुमार समाज के सामने बीसवीं सदी के पति की भूमिका निभाए जा रहा है और उसी के साथ-साथ टूलू भी प्रेम में डूबी प्रिया की भूमिका अदा करती जा रही है।

बबुआ के होश सभालने के पूर्व तक, इसी नाटक का नित्य अभिनय हो रहा था। लेकिन अब लड़के को उपलक्ष्य मान कर परस्पर में जब-तब 'एक-एक हाथ' हो जाता है।

जैसे, टूलू जब बबुआ को खाना खिलाने बैठती तो उसे समय का होश नहीं रहता। उस समय टूलू मेज पर सजा कर रखे गए हर खाद्य पदार्थ को लड़के के पेट में भरने के इरादे से हर तरह के खुशामद भरे वाक्यों की वर्षा करती रहती थी। संभव-असंभव वादे करती। अकारण ही लालच देती।

जैसे, बबुआ अगर इतनी मछली खा लेगा तो उसकी माँ उसे स्कूल में भर्ती नहीं करेगी....हमेशा अपने पास रख कर पढ़ायेगी।....स्कूल क्यों भेजे ? मास्टर लोग डाँटते नहीं हैं ? क्लास के दुष्ट लड़के परेशान नहीं करते हैं क्या ? बबुआ की माँ तो उसे डाँटेगी भी नहीं, परेशान भी नहीं करेगी।....बबुआ अगर इस पूड़ी को खत्म कर देगा तो उसे लेकर वह लोग (यहाँ बात विश्वसनीय बन जाए इसलिए दोनों की तरफ से वचन दिया गया) कल ही रेलगाड़ी पर बैठ कर बड़ी दू....र घूमने जाएँगे, व....हु....त दू....र ....तब रेलगाडी की खिड़की से बबुआ जो इच्छा होगी वह खरीद-खरीद कर खा सकेगा। जो इच्छा ! खट्टी लाजेन्स, हाजमे की गोलियाँ, चना चुरमुरा....। बबुआ अगर एक ही साँस में गिलास का दूध पीकर गिलास खाली कर देगा तो बबुआ की माँ बबुआ को इतना बड़ा 'बिग साइज' का बॉल खरीद देगी। ऐसी गेंद, जैसी उसके दोस्तों ने आज तक आँख से देखी ही नहीं है।...कहाँ मिलता है ?....न्यू मार्केट में मिलेगा।

बबुआ अगर कहता, तब फिर अभी चलो न्यू मार्केट, तो तभी उसका जवाब तैयार मिलता, 'वह क्या यहाँ के सड़े न्यू मार्केट में मिलेगा ?...मिलेगा दिल्ली की बढ़िया न्यू मार्केट में। वहाँ से पार्सल द्वारा मँगवा देगी बबुआ की माँ।'

ऐसी अनेक 'असली मशीन वाली रेलगाड़ी,' 'सचमुच का उड़ सकने वाला हवाई जहाज', 'चाभी वाला हालुम शेर', 'तीन चक्के वाला स्कूटर,' 'गर्दन हिलाने वाला भालू', 'सलाम करने वाला हाथी,' बबुआ की प्राप्ति सूची में लटका करतीं।....ज्यों ही बबुआ दावा करता त्यों ही दूसरी कहानी गढ़ ली जाती....जल्दी न मिल पाने के कारणस्वरूप ... इसके अलावा एक दूसरा रास्ता भी है।

बबुआ अगर अच्छी तरह से खाना नहीं खायेगा तो बबुआ की माँ अचानक एक दिन हवा में गायब हो जाएगी, चिड़िया बन कर उड़ जाएगी। इसी तरह की अन्य पद्धतियाँ भी अपनाई जायेंगी।...तब बबुआ अकेला पड़ा-पड़ा रोएगा।....

ऐसे समय मे पिता का अकस्मात् आविर्भाव प्रायः सब कुछ तहस-नहस कर देता।

सरित का वक्तव्य है कि छोटे बच्चों को झूठी लालच देकर, उससे काम करा लेने से बढ़ कर अन्य कोई अन्याय नहीं हो सकता। और भी गिरी हुई बात है, डर दिखा कर काम कराना। इससे माँ लड़के का विश्वास खो बैठती है। डरपोक बन जाएगा और वह कभी भी यथार्थ कारण नहीं समझ सकेगा...इत्यादि, इत्यादि।

इस वक्तृता से क्रुद्ध होकर टूलू कहती, 'तब फिर बाप ही लड़के को खिला-पिला कर जिन्दा रखने की जिम्मेदारी संभाल लें। स्वतः ही देख लें, बिना बोले काम हो सकता है या नहीं।'

'ठीक है। इससे अच्छा होगा, राजारानी के किस्से सुनाओ। जैसे हम लोगो के वक्त होता था! मेरी दादी....'

'बात-बात पर अपनी दादी को मत लाया करो, कहे देती हूँ,' कठिन स्वरों में टूलू कहती, 'मैं बबुआ की दादी नहीं हूँ। क्यों, तुम्हारी माँ कहाँ रहती थीं?'

'माँ? क्या पता, शायद रसोईघर की गुफा में रहती थीं।'

तभी तो ऐसा फूहड़ लड़का तैयार हुआ है।....यह लड़का कितना खतरनाक है तुम्हारी धारणा नहीं होगी। इस तरह से न खिलाया जाए तो उपवास करके मर जाएगा।'

'साइकोलॉजी ऐसा नहीं कहती। दो दिन छोड़ कर देखो, खाता है या नहीं।'

'एबसर्ड बातें मत कहा करो। दो दिन कोशिश के नाम पर बैठी रहूँगी?'

'मैं तो ऐसा ही उचित समझता हूँ।'

'तुम अपनी बुद्धि दफ्तर में खर्च किया करो। मेरे काम में नाक मत डाला करो।'

'बबुआ मेरा भी लड़का है। उसके अच्छे-बुरे के लिए कहने का अधिकार मुझे भी है।'

उस दावे को नकारते हुए टूलू कह बैठी, 'ठीक है, लड़का बड़ा हो जाए तो वह अधिकार जताना। इस समय बच्चे पर अधिकार जताने की जरूरत नहीं है।....ज्यादा कहोगे तो लड़का तुम्हारे कन्धे पर डाल कर पिताजी के पास चली जाऊँगी, इतना कहे दे रही हूँ।'

उसके बाद लडके के ही सामने, उसकी माँ को इस तरह से नीचा दिखाने के लिए टूलू आलोचना करने बैठ जाती। पूछती—इससे लड़के की तालीम गड़बड़ नहीं होगी? लड़का बातें कैसे निगल रहा है, क्या सरित को दिखाई नहीं पड़ता है। इत्यादि....

अन्त तक बबुआ के पिता को ही रणक्षेत्र में पीठ दिखानी पड़ती। बबुआ तीक्ष्ण दृष्टि से देखता, ध्यान रखता, देख कर आश्चर्यचकित रह जाता—इतने झगड़े के बाद दोनो फिर मिल जाते।

बबुआ को यही बात नापसन्द थी।

उसकी इच्छा होती, माँ-बापों में खूब लड़ाई हो। इतनी लड़ाई हो कि फिर

कभी दोस्ती हो ही न सके। माँ बबुआ को अलग छोटी सी खाट पर न लिटा कर, दूसरे कमरे में अपने साथ लेकर लेटे। उसकी तरफ मुँह करके और बापी अगर बात करना भी चाहें तो माँ उन्हें ठेंगा दिखा दें, जीभ बिरा दें या दूसरी ही हिंसात्मक कुछ बात करें। परन्तु बबुआ को निराश होना पड़ता। बबुआ देखता झगड़े के बाद दोनों और भी हँस-हँस कर लुढ़कते, बातें करते।....

× × ×

आज जब बबुआ के रण-ताण्डव के बाद माँ पाँव पटकती उस कमरे में चली गईं, बबुआ बड़ी आशा से कान लगाए पड़ा रहा।...तीन साल का होने पर भी माँ-बाप को पढ डालने के मामले में वह बूढ़ा हो गया है।

उस वक्त भी वह चक्कर लगाता जा रहा था, हाँ गति कम हो गई थी। घिसटता हुआ दोनों कमरों के बीच के दरवाज़े के पास जा पहुँचा।....अब सभी कुछ सुनाई पड़ रहा था।....

बबुआ ने सुना बापी कह रहे हैं—'मेरी माँ का नाम लोगी तो मुझसे बुरा कोई न होगा।'

माँ कह बैठी, 'नाम लूँगी, जरूर लूँगी। तुम क्यों हर वक्त मेरे काम को क्रिटीसाइज करते हो ?'

'लड़के को बिगाड़ कर रख दिया है इसीलिए कहता हूँ...'

कितने मजे की बात है। बबुआ खुशी से उछल पड़ा। बबुआ और ज्यादा शरारत करेगा जिससे माँ और बापी मे जबरदस्त झगडा हो जाए।...

'तुम्हारी हालत तो ऐसी है जिसे कहते हैं रस्सी को साँप समझ बेठना। छोटे बच्चे की शैतानियों को तुम विषवृक्ष का नन्हा पौधा समझते हो।'

'अगर छोटे बच्चे की शैतानी समझती हो तो स्वयं क्यों टेम्पर लूज़ करती हो ? हँस कर इंग्न्वाय क्यों नहीं करती हो ? मारती क्यों हो ?'

'चुप रहो, चुप रहो। कब किस माँ को देखा है जो बिना डाँटे-मारे लड़का पाल कर बड़ा कर लेती है ?'

'यही तो ! कितना 'पाल' कर बड़ा करोगी इसी बात का तो मुझे शक है। फिर भी सख्ती उचित है लेकिन खुशामद....खुशामद असहनीय है। तुम अपने लड़के की खुशामद करती हो, इतना घूस देती हो, कि वही सही जगह पर काम में लातीं तो मन्त्री-वन्त्री बन सकती थी।'

'मुझे गुस्सा मत दिलाओ....कहे दे रही हूँ....'

'ठीक है। तो फिर आज वहाँ नहीं चल रही हो न ?'

'जाऊँगी ? मेरे कहीं जाने की हालत रह गई है ? अन्य लड़की होती तो फेंट हो चुकी होती। नर्व पर ऐसा दबाव पड़ा है। तुम अगर अपनी व्यंग-विद्रुप की आदत नहीं छोड़ोगे तो बताए दे रही हूँ—मैं ही तुम्हारा घर छोड़ दूँगी।'

बबुआ और भी उत्तेजित होता—आः बापी माँ को और तंग करें तो अच्छा हो।

टूलू इस कमरे में आकर सर्पिणी की तरह फुंफकारने लगी और सरित कुमार सुबह का पढ़ा अखबार लेकर फिर से उलटने लगे। बबुआ तिरछी नजरों से यह सब देखता हुआ, जमीन पर फैले कपड़ों को पांव से घिस-घिस कर फेंकता रहा।....मामला कुछ जमा नहीं। यूं लगा था कि माँ उस कमरे में जाते ही बापी पर कूद पड़ेगी और उन्हे मार लगाएँगी...पर कहाँ, कुछ भी तो नहीं हुआ।

कुछ देर तक अजीब-सा एक सन्नाटा छाया रहा।...अब क्या ?बबुआ उठ कर माँ को धकेले ? कहे, 'मुझे भूख लगी है ?....बापी क्या कहीं चले गये ?'....अचानक बबुआ ने फ्रिज खुलने की आवाज सुनी।...माँ तो यहाँ लेटी हैं....तब फिर बापी ही होंगे। जरूर फ्रिज खोल कर खा रहे हैं। आज तो श्यामल की छुट्टी कर दी गई है, क्योंकि खाना नहीं बनेगा। जिस दिन मामा के घर जाना रहता है, उसी दिन श्यामल की छुट्टी कर दी जाती है। बापी उसे होटल में खाने के लिए पैसा दे देते हैं।....आज मजा आएगा....खुद ही उपवास करो।

बापी फ्रिज से निकाल कर क्या खा रहे हैं ?

आइसक्रीम तो नहीं ?

माँ ने कहा था वह सिर्फ बबुआ के लिए है। और कोई नहीं खाएगा।....इश, बबुआ जाकर देखे क्या ?

बबुआ की चिन्ता में बाधा पड़ी।

टेलीफोन की घंटी बजने लगी।

बापी ने उठाया, उसके बाद ही इस कमरे में आकर गम्भीर आवाज में कहा—'तुम्हारा फोन। भाभी का...'

माँ गुस्से से उठ बैठी, 'कह क्यों नहीं दिया कि मेरा जाना संभव नहीं....'

'मैं क्यों कहूँ ? तुम्हे पूछ रही हैं....'

मन ही मन बबुआ हँसा, 'माँ ठीक उठेंगी। जाएँगी भी....।'

इस बार बबुआ की गणना गलत नहीं हुई।....टेलीफोन के पास से टूलू की आवाज सुनाई पड़ी, 'कुछ पूछो मत भाभी, आज ही कार को अस्पताल भेजने की क्या जरूरत थी ? क्या कह रही हो ? ही-ही-हीं-ही ! तुम बहुत ही असभ्य हो।....खैर, तुम लोग हमारे लिये बैठी मत रहो।...क्या कहा ? कार भेज रही हो ? अरे....बेकार ही में...हालाँकि ही ही...यथानियम श्यामलाल बाबू की छुट्टी किये बैठी हूँ। बबुआ तो मामा के यहाँ जाने के लिये तैयार नहीं हो रहा है। वह कपड़े उतार कर बैठा है। उसने तो विद्रोह की घोषणा कर दी है। अब जाऊँ फिर...नवाब पुत्र की खुशामद करके उठाऊँ ?....क्या कहा...स्वयं नवाब को भी ? हीं-हीं....ऐसा भी करना पड़ता है। विश्वास करो या न करो....अच्छा रख रही हूँ।'

इसके बाद नाटक की लय द्रुत हुई।

माँ ने आ कर बबुआ को उठाया—'अरे उठ उठ,....अभी गाड़ी आ जाएगी। मामी भेज रही हैं। जल्दी से कमीज़ पहन ले।....जो मर्जी तुम पहनो बाबा....उससे पहले एक बार चल कर मुँह तो धो लो। ऐसा चेहरा बना है...जैसे वन-बिलाव।....क्यों? उठ नहीं रहे हो? शैतान लड़के, अभी मज़ा चखाती हूँ। ऐसी गुदगुदी लगाऊँगी, तब समझोगे।....क्या?....कैसा है?....'

अरे, इससे कहीं टूलू की इज्जत कम होने जा रही है? अपराधी तो सिर्फ तीन साल तीन महीने का है।

उधर, दूसरे अपराधी के सामने भी झुकना पड़ा। भाभी द्वारा भेजी गई कार पर 'जमाई बाबू' को चढ़ते न देख कर ड्राइवर क्या सोचेगा?....इसके अतिरिक्त 'वे नहीं आये' कहने में सिर नहीं झुकेगा?

वह मेरा आँचल छोड़ कर स्वाधीन बना घर बैठा रहेगा? असम्भव! इससे प्रेस्टिज बनी रहेगी?

प्रेस्टिज बनाये रखने के लिये ही निर्लज्जों की तरह, हँस कर टूलू को कहना पड़ा, 'न! दो घड़ी कोपभवन में पड़ी रहूँ, भगवान् को यह सुख भी अखर गया। लो, अब उठो, ताम-झाम पहनो, सलहज सिपाही भेज रही हैं...आता ही होगा।'...

कार आ गई।

अतएव सज-धज कर पति-पुत्र को साथ लेकर, झिलमिलाती हुई टूलू मायके की कार में जा बैठी।

धूर्त बबुआ ने उनके चेहरे का निरीक्षण करते हुये अन्तर ढूँढ़ा।....कोई अन्तर नहीं मिला।....माँ मुस्कुरा रही थी। बापी के चेहरे पर वही मधुर कोमल भाव, साथ ही फैशन की छाप स्पष्ट थी....जिसे देखने का बबुआ अभ्यस्त हो गया है।

कार चलते ही, बबुआ अचानक तेज आवाज़ में बोल उठा, 'माँ, तुमने उस वक्त झूठ क्यों कहा?'

माँ हा-हाकार कर उठी, 'यह कैसी बात कर रहा है? मैं कब झूठ बोली? झूठ बोलना चाहिये क्या? छिः-छिः, अचानक कभी-कभी ऐसी बात कर बैठता है तू....'

ड्राइवर बंगाली भी है और घर की एक-एक बात का साझीदार भी है।

बबुआ ने क्या, माँ को व्यस्ततापूर्वक बोलते हुये भी, आँखों का इशारा करते नहीं देखा है? ड्राइवर सुखमय की तरफ इशारा करते हुये दबी आवाज़ में बबुआ के लिये निषेधवाणी का प्रयोग नहीं किया था?... बबुआ क्या इतना अबाध्य हो गया है? टूलू के घर की महरी तो हर समय कहा करती है, 'भाभी जी, तुम्हारा यह लड़का, देखने में इतना-सा जरूर है लेकिन बुद्धि में परबाबा हो रहा है।...कहावत है न, उड़ती चिड़िया की आँखें गिनता, यह वही है।'

फिर?

फिर क्यों माँ की बात खत्म होते ही बोल उठा,—'टेलीफोन पर उस वक्त तुम

झूठ नहीं बोलीं ? हमारी कार अस्पताल कहाँ गई है ?'

टूलू समुद्र को बालू से बाँधने की कोशिश करती है ।

टूलू उस पर भी लगभग चिल्ला उठी, 'गई है या नहीं, यह खबर तुझे है ? तेरे बापी कितने तड़के जा कर कार रख आये हैं !....अच्छा कब दे आये हो, बताना तो ?'

सरिता कुमार बेझिझक बोल उठे, 'करीब पौने सात रहा होगा ।'

'ठीक कहा है । उस वक्त तो बबुआबाबू बिस्तर में थे ।'

'दे आये हो ? मजे से मामा की कार पर लौटोगे इसीलिये मिण्टू के गैरेज में नही रख आये हो ?'

'देख रहे हो ? शैतान लड़के की बातें सुनो । तूने उसे गैरेज में भी देख लिया ? बा....वा ! बड़ा होकर तू ज़रूर लेखक बनेगा बबुआ !....अभी से जैसी कहानियाँ गढ़ लेता है तू ।'

बबुआ खूब समझ रहा है कि माँ इस वक्त मन ही मन सोच रही है कि घर लौटूँगी तो तुम्हें बताऊँगी। अभी सुखमय के सामने यह सब कहा जा रहा है। खुद ही माँ बना-बना कर बातें करती है । झूठी कहीं की....बापी भी कम नही, कह रहे हैं—पौने सात बजे ।

ऐसी अनेक बातें सोचते हुये बबुआ चला लेकिन फिर कुछ बोला नही । वरना माँ फिर झूठ बोलने बैठ जायेगी । खुद बड़ा सत्यवादी है बबुआ, ऐसी बात नहीं है । दूसरों के सामने माँ-बाप को झुठलाने में उसे बड़ी खुशी होती है ।

सभी की उम्र समान नियमानुसार नही बढ़ती है । बबुआ की उम्र शायद साल में दो-दो बार बढ़ती है । यद्यपि बबुआ की माँ इस बात को नही समझ पाती है । इसीलिये लड़के के मन से 'इस झूठ' को मिटाने के लिये अन्य प्रसंग छेड़ देती है । 'बबुआ, अंग्रेजी की जो नई कविता सीखी है वह मामा के यहाँ सुनाना ।....राजा दादा कितनी कविताएँ जानता है, बबुआ नही सुना सकेगा तो कहेगा, ए माँ छिः छिः ।.... एक बार नाना के कमरे में जरूर जाना बबुआ, बेचारे नाना बुड्ढे हैं न ?'

ऐसी करुणा मिश्रित वाणी में कहती जा रही थी टूलू जैसे रास्ते के किसी भिखारी की बात कर रही हो ।

'तुम कितना ही क्यों न रटाओ, वह कुछ नही कहेगा,' अचानक ही बबुआ के पिता बोले ।

टूलू ने भौंहे नचा कर कहा, ''अहा ! जैसे बबुआ इतना ही खराब लड़का है ? तुम तो हर समय उसकी बुराई ही करते हो । है न बबुआ ?'

अचानक बबुआ ने अपने दोनों कानों में दो अँगुलियाँ डालते हुये कहा, 'मैं तुम लोगो की कोई बात नहीं सुन रहा हूँ ।'

फिर भी, पिता के घर पहुँचते ही टूलू शोर मचाते हुये बोली, 'ओह भाभी, तुमसे इतना सब होता भी है । ज़रा-सा ढील डाला नही कि बस—फोन आ गया, कार

आ गई।....सारी गलती तेरे इस ननदोई की है।....अच्छा, आज ही कार 'गैरेज' में दे आने की क्या जरूरत थी ?....खैर, पिता जी कैसे हैं ? जाऊँ, पहले उनको प्रणाम कर आऊँ, वरना बूढ़े भद्र पुरुष सोचने बैठ जाएँगे—लड़की भयानक पाषाण-हृदया है।.... अरे, तुम भी आओ, बबुआ....'

प्रभुचरण के श्रवण-यन्त्र का दायित्व बहुत ज्यादा है। हिलने-डुलने से मजबूर प्रभुचरण को गृहस्थी सम्बन्धी हर बात से अवगत कराने के लिये, गृहस्थी की गाड़ी के चक्को की हर आवाज़ 'टेप' करनी पड़ती है। हर समय सजग रहना पड़ता है।

सिर्फ गृहस्थी सम्बन्धी आवाज़ें ही नहीं, टेप करनी पड़ती हैं हँसने की, खाँसने की आवाज़ें उत्तेजित पद संचालन की आवाज़। दरवाजे पर कार के रुकने और चले जाने की आवाज़, टेलीफोन की घंटी, मेज-कुर्सी के हिलने-डुलने की आवाज़, अचानक काँच का बर्तन टूट जाये तो उसकी आवाज़....अर्थात् प्रत्याशित-अप्रत्याशित हर आवाज़ पर ध्यान देना पड़ता।

यही आवाज़ें प्रभुचरण को गृहस्थी के चक्र की गति से अवगत कराती हैं, गृहस्थी का स्वाद देती हैं।....आवाज़ सुन कर ही प्रभुचरण जान जाते हैं, कौन कब आता-जाता है। अभ्यागत कब आये, कितनी देर ठहरे। पता चलता—किस समय मसाला पिसता है, कब रोटी बेली जाती है, कब कपड़े फींचे जाते हैं, कब खाना बनता है और कब मेज लगाई जाती है।

लेकिन इस समय यह यन्त्र निश्चिन्त बैठा है। इतना, जितना कि 'बड़े बाबू' की अनुपस्थिति से छोटे क्लर्क लोग ऑफिस में चैन से बैठे रहते हैं।

इसका कारण है। प्रभुचरण इस समय आँखें बन्द किये, स्मृतिलोक के पाताल तले विचरण कर रहे हैं। इसीलिये प्रभुचरण का सदा सतर्क 'कान' टेप के तार लपेट कर अलसाई मुद्रा में बैठा है। सिर्फ, कभी-कभी दो-एक बातें, फुसफुसाहट, एक-आध टिप्पणी उन तक पहुँच जाती है।

यह बातें, कौन किससे कह रहा है, क्या पता ?

जो कुछ कानों में आ रहा है वह यही है—'आज कल तो ज्यादातर ऐसे ही निदासे से पड़े रहते हैं।....पता नहीं इतनी नींद क्यों बढ़ गई है।...डॉक्टर ? नहीं, नहीं। डाक्टर तो कहता है सोना अच्छा लक्षण है। शायद रात को अच्छी नींद नहीं आती है।...मुझे तो लगता है यह कोई इन्फेक्शन का मामला है।....कहाँ क्या हो रहा है, कौन कह सकता है ? ब्लड और यूरिन एक बार ...अरे हर महीने होता है ? महीना ! एक महीना क्या सीधी-सी बात है ? इस बीच शरीर में कितना कुछ हो सकता है।.... बात ! बात सुनने वाले आदमी हैं वह ?....निहायत ही डॉक्टर का डर दिखा दिखा कर ....नहीं नहीं। मैं तुम लोगों की यह युक्ति मान लेने को तैयार नहीं। उम्र हुई है इसी-

लिये मुझे 'नासमझ' बनने का राइट मिल गया है—यह एक गलत एडवाण्टेज लेना है।....वरना उस फार्म पर हस्ताक्षर करने की बात पर....ओह! अद्भुत!....इसमें अद्भुत कुछ नही है! मैं जानती थी राजी नहीं होंगे। मैंने कहा भी था....याद नहीं है? तुम्हारे पिताजी को मैं तुम लोगों से ज्यादा पहचानती हूँ।'

'यह बात सही है। किसी विषय में दूसरों से एकमत होते, आज तक तो देखा नहीं।....'

कई आवाजें थीं।

स्त्री....पुज्य दोनों की।

समझ में नहीं आ रहा है क्या कह रहे हैं। दबी आवाज में बातें कर रहे हैं।

जाये, सब भाड़ में चला जाये।

इतना उत्सुक होने की क्या जरूरत है। इस समय प्रभुचरण चेतना की गहराई में उत्तर कर, गोताखोरों की मदद से मोती चुन रहे हैं।....या बालू के नीचे से खुद-बखुद मोती उठते चले आ रहे हैं, लहरों के साथ-साथ।

इस समय प्रभुचरण, दीर्घाकार, उज्ज्वल पुरुषमूर्ति के सामने अभिभूत से खड़े हैं ....आश्चर्यचकित से, उनकी गुरुगंभीर वाणी सुन रहे है।—'मेस में? लड़के मेस में रह कर पढ़ाई करेंगे? कलकत्ते में चाचा का घर रहने पर भी? तुम क्या कह रहे हो चैतन्य भाई? यह सब पागलपन छोड़ दो। लड़के मेरे साथ जाएंगे।'

सीधी-साधी रोजमर्रे वाली बात। ऐसा एक उदार प्रस्ताव पेश करते समय शब्दों की कोई कारसाजी नहीं, अति का प्रयोग नहीं, प्रकट करने की मुद्रा में नाटकीयता नहीं—आभिजात्य की पॉलिश नही।

ऐसे सन्देह की झलक तक नहीं थी कि मैं जो 'ऑफर' कर रहा हूँ, वे इसकी इज्जत रखेंगे या नहीं? नही रखी तब तो मेरी इज्जत गई।....नही, वहाँ कोई शक का सवाल ही न था। निश्चित, द्विविधारहित स्पष्ट घोषणा थी—'ये हमारे साथ जाएंगे।' मानो यही अन्तिम बात हो....जैसे इसके बाद कुछ कहने-सुनने को बचता नही था।

इस निश्चिन्तता की भीत थी विश्वास। आत्मविश्वास, अपने सिद्धान्त पर विश्वास और दूसरे पक्ष पर विश्वास करना। और इस विश्वास की नीव में थी असली, मिलावट रहित आन्तरिकता। सिर्फ ऐसी ही आन्तरिकता यह घोषणा कर सकती है—

'ये लोग हमारे साथ जाएंगे।'

जैसे सन्ध्या-आरती के घंटे की हवा में विलीन होती ध्वनि हो।

जैसे भोर के प्रथम प्रहर में, कोई अनाम पक्षी गा उठा हो। गंभीर, पवित्र। पवित्र खुशी से रोमांचित करती।

कम से कम, विह्वल दृष्टि से देखते रह गए, प्रभु नाम के इस लड़के को, ऐसा ही कुछ लगा था।

मेस की जगह देवूचाचा का घर।

जैसे कौड़ी खेलते समय सात कौड़ियाँ चित्त पड़ गईं। विह्वल, विगलित लड़के को लगा जैसे देबूचाचा देवता के 'वर' की तरह आ पहुँचे हैं।

कुछ दिनों से, घर में, इस समस्या पर आलोचना चल रही थी। प्रभु-विभू अगर कलकत्ता जाकर कालेज में पढ़ना चाहे तो कहाँ रह कर पढ़ेंगे ? कलकत्ते में तो ननिहाल नहीं है। इधर विभू पढ़ने की जिद्द कर रहा है। उस पर कलकत्ते जा कर कॉलेज में पढ़ने की जिद्द भी कर रहा है। विभू ही क्यों, प्रभु भी वही कह रहा है। प्रभुचरण को शैशव या बाल्य काल की अपनी किसी भी भूमिका की याद नहीं है। तब जो कुछ हुआ या होता था सभी विभू की जिद्द या उत्साह से। प्रभु को हिस्सा मिल जाता था। यूँ लगता विभू के दिये किराये से प्रभु भी नाव पर चढ़ कर फेरी पार कर लेता।

मेस की बात भी विभू ने ही छेड़ी थी।

हॉस्टल में रहने का खर्च ज्यादा है तो वे मेस में रह लेंगे। दोनों भाई एक साथ ही पास हुये हैं, अब जो भी होगा, एक साथ ही होगा।

लेकिन मेस की बात छिड़ने के बाद से इतनी विरोधी आलोचनाएँ सुनने को आ रही थीं कि मन में आतंक छा रहा था।

सहपाठी गण, जो अब नहीं पढ़ेंगे, किसी भी तरह के काम में लग जायेंगे, ऐसी बातें लगातार सुना रहे हैं। मेस की चारपाइयों में बसे खटमल, खून पीने वाले चमगादड़ों के मौसेरे बड़े भाई है। मेस के रसोइये पानी के अभाव में शरीर के पसीने से सब्जी पकाते है। झाडन न होने के कारण पाँव पोछने वाले अँगोछे से थाली साफ करते है और रसोई में तेलचिट्टों की इतनी अधिकता है कि कभी-कभी निरामिष रसेदार सब्जी भी सामिष सब्जी बन जाती है।....

उस पर ऊपर वालो ने अलग शोर मचा रखा था...छोटे-छोटे नादान लड़कों को मेस में रखने के मतलब हैं उनका सत्यानाश। ऑफिस-कचहरी जाने वाले बड़े-बूढ़ों के साथ रह कर दो दिन में उन्हीं की तरह हो जायेंगे। बीड़ी-सिगरेट पीना शुरू कर देंगे, ताश-चौपड़ खेलेंगे,...बाकी भगवान् जाने, और भी बुरी लतें लगने में देर कितनी लगती है। लिखाई-पढ़ाई कुछ नहीं होगी। क्योंकि नौकरीपेशा लोग शाम को मेस में लौट कर हो हल्ला करेंगे, ताश ले कर बैठेंगे; बेसुरे राग में बेताल गाने गायेंगे। ऐसे लोग छोटे लड़कों को देखेंगे तो काम करवायेंगे।

पडौस में एक थी जिन्हे बुआ कहते थे। वह आकर प्रभु की माँ से बता गई हैं—मेसों में अब नौकरानियाँ भरी पडी हैं। बाबू लोगों के साथ उनकी बड़ी दोस्ती है।....ऐसे सुन्दर कच्ची उम्र के लड़के देखेंगी तो उनका सिर ही चबा डालेंगी।

तब से कमला, कारण हो या यूँ ही, रोने बैठ जाती। लड़कों से पूछती, ज्यादा पढ़ने की जरूरत क्या है ? चैतन्यचरण तो कह रहे हैं, कोशिश करेंगे तो दोनों को रेल-ऑफिस में काम मिल जायेगा। ऑफिस के साहब लोग चैतन्यचरण को नेक नजर से देखते भी हैं।

फिर ? नौकरी के लिए ही तो पास करना पड़ता है ? वही नौकरी अगर मिल

जाये तो दो-चार पास करने के लिये पढ़ने की मेहनत क्यों की जाये ?

उठते-बैठते, खाते-सोते, कमला लड़कों से यही प्रश्न पूछ रही हैं। लेकिन कहावत है न, चोर धर्म की बात नहीं सुनता है। लड़कों की वही एक ही जिद् थी— पढ़ेंगे। आजकल कोई भी बुद्धू की तरह एक ही परीक्षा पास करके नौकरी में नहीं लग जाता है....दो-चार परीक्षाएँ और भी पास करता है।

कमला इस बात का तात्पर्य नहीं समझ पातीं। वह तो जिधर भी देखतीं उधर ही नौकरी के लिये लालायित लड़के ही देखतीं। अपने मायके की तरफ, ससुराल में भी, इसी नीलकान्तपुर के और लड़के भी।

एक भी परीक्षा पास नहीं की है, या पास के लिये पढ़ रहा है, ऐसे कितने ही तो आते हैं रेलबाबू चैतन्यचरण के पास। हालांकि आते हैं अपने बाप चाचा के साथ। लेकिन 'और पढ़ूंगा' ऐसा कहते किसी को नहीं देखा था।

इसीलिये कमला अपने लड़को को समझ न पाती।....जैसे कमला के पास से वे हटते जा रहे है।...

लड़कों की परीक्षा के बाद की छुट्टी के तीन महीने, चैतन्यचरण तब गांव के घर में ही रह रहे थे। छुट्टियाँ तो जमा हो-होकर सड़-सी गई हैं।

बस, लड़कियों की शादी के वक्त एक-एक बार ली थी, फिर कहाँ ? ऑफिस के अन्य लोग जब छुट्टी की अर्जी देते, बड़े बाबू चैतन्यचरण फौरन हस्ताक्षर कर देते। सिर्फ स्वय ऑफिस में रहना पसन्द करते थे...बिना हिले-डुले।

लडके भी तो सात घाट का पानी पीने पर भी अच्छी तरह से पास हो गये हैं। अब कलकत्ते जाकर पढ़ना चाहते हैं। कमला को इस बात का ही तो दु:ख है कि चैतन्य की तरफ से कोई बाधा नही पड़ रही है।....अजीब तरह के आदमी हैं चैतन्यचरण। नौकरी करना चाहते हो, लगवाने की कोशिश करूँगा। पढ़ना चाहते हो पढ़ाऊँगा। बड़े हो रहे हो—अपने जीवन से सम्बन्धित फैसले सोच-समझ कर स्वयं करो।

बड़े हुए है....

पन्द्रह और सोलह साल के दोनों लड़कों को चैतन्यचरण 'बड़े हो गये हो' कह कर बालिगों की श्रेणी में डाल रहे हैं। उन्हे अपने जीवन का फैसला स्वयं करने के लिये कह रहे हैं।

यह सच है कि अब लड़के-लड़कियों की विद्या, बुद्धि, ज्ञान और शिक्षा की परिधि का घेरा बहुत बढ़ा है, बढ़ता जा रहा है। उसके साथ ही बढ़ रहा है आत्माभिमान...। लेकिन बड़े ? नहीं, बडे नहीं हो रहे हैं। उन पर भरोसा नही किया जा सकता— करने से पहले सोचना पड़ता है।

उस समय बड़े हुआ करते थे। दायित्व बोध बड़ा था, कर्त्तव्य बोध में भी बड़े थे। अपने को 'समाज का एक व्यक्ति' सोच कर बड़े होते थे।....इस उम्र की लड़कियाँ तो एक से एक बड़ी गृहस्थी का बोझ कितनी निपुणता से वहन कर लेती थीं।.... इसीलिये चैतन्यचरण ने कुछ असम्भव सोचा हो ऐसा नहीं।....पर हाँ, कोई इस तरह से लड़कों के मन में बड़े होने की चेतना नहीं जगा देता था।

बहुत लोग, लड़को को 'तुम बड़े हुये हो', यह मर्यादा तक देना नही चाहते हैं। चैतन्यचरण ने दी थी। और उसी बात के उत्तर में प्रभु ने अस्पष्ट पर विभू ने स्पष्ट रूप से ही आगे पढ़ने की इच्छा प्रकट की थी। यद्यपि पिता पर गलत दबाव पड़ेगा, सोच कर लड़के कुण्ठित हो रहे थे। उन दिनो शायद उच्चशिक्षार्थियो में यह कुण्ठाबोध रहता भी था। कुछ इस प्रकार से—'मेरे कारण पिता जी को इतना खर्च करना पड़ रहा है।'

जैसा कि शादी के वक्त लड़कियाँ सोचा करती थी, 'मेरी वजह से पिता जी का कितना खर्च हो गया।'

जो मिला है वह उन्हे मिलना था, ऐसा कभी कोई नही सोचता था। दावा करने वाली मनोभावना बन सके, तब ऐसा वातावरण नही था।

प्रत्याशा नही थी—था कृतज्ञता बोध।

जब चैतन्यचरण ने कहा था, 'ठीक है, पढ़ोगे। कलकत्ते में जा कर पता करो। किस कालेज में दाखिला ले सकते हो', तब खुशी और कृतज्ञता से मन का कोना-कोना भर उठा था। लगा, जितना मिलना चाहिये, उससे कही ज्यादा मिल गया है।

तब से वही मेस सम्बन्धी आलोचना चल ही रही थी....जिसके साथ मिली रहती भय, चिन्ता, आतंक की भावना।

ऐसे ही समय में देवूचाचा ने आकर शीतल वायु के लिये रास्ता तैयार कर दिया।

देवूचाचा को दो-एक बार देखा जरूर था। गाँव आते ही कब थे? और आते भी तो बातें बड़ो से ही होती थी।

बड़ों के आस-पास फटकने का हुकुम छोटो को था कहाँ? अपने जीवन का रास्ता चुनने के लिये 'तुम बडे हुए हो' कहने पर भी, इस मामले में वे छोटे ही समझे जाते थे। ...अच्छा, बड़े क्या हर समय गन्दी, गिरी हुई बातें करते थे? अश्लील आलोचनायें करते थे। नही, ऐसा नहीं। फिर भी नियम की एक सीमा रेखा थी....

प्रभुचरण लोग क्या कभी सोच सकते थे कि पिताजी के आचरण की आलोचना करते हुये ऊँची आवाज में कहें, 'यह आप अन्याय कर रहे हैं, पिता जी।....यह आपने ठीक नहीं किया है, पिता जी।'

नहीं.. तेज तर्रार विभूचरण भी ऐसा नही सोच सकता था।

खैर....देवूचाचा की घोषणा के बाद काँपते हृदय से प्रभुचरण नामक लड़के ने पिता के मुँह की तरफ देखा था। वहाँ से क्या राय सुनने को मिलती है। देवूचाचा

के पास रहना, यह क्या कम सौभाग्य की बात है ? जिसकी बातों और हँसी से वातारण आलोकित हो उठता है।

इसी को क्या 'हीरो'-पूजन कहते हैं ?

चैतन्यचरण के चेहरे पर अतुलनीय हँसी खिल उठी। खुशी से, कुण्ठा से, प्रेम-भरी कृतज्ञता से और शायद निरुपाय होकर भी। इस उपायहीनता का जन्म ही उसी प्यार से होता है। इन सब से मिली-जुली आवाज में चैतन्यचरण बोल उठे थे—'आपने जब तय ही कर लिया है कि अपने भतीजो को ले जाओगे तब फिर मुझे क्या कहना है। हाँ, इतना जरूर है कि एक झझट बढा रहे हो....और क्या।'

'ठीक है ठीक है। बेकार में या ठीक ही मैं बोझ लाद रहा हूँ, यह मेरे भतीजे साबित करेंगे—क्यों रे ? चलो, हाईकोर्ट से फैसला सुना दिया गया है, अब कोई चिन्ता नहीं रही। अब माँ से कह कर कपड़े ठीकठाक कर लेना। परसों तड़के सुबह की ट्रेन है ...गर्मी के दिनों में तड़के जाना ही ठीक होगा।

× × ×

कपड़े-लत्ते ठीक करने की चिन्ता थी ही नहीं। यह तो मेस में जाने के लिए पहले से तैयार कर लिए गये थे। कमला ने अपनी शादी में मिले, मजबूत लोहे के बक्स में से, कपूर और कालाजीरा डाल कर रखी शादी की साड़ी, पारसी साड़ी, पहले जाड़े में मिला केरी की कढ़ाई वाला जर्मन शॉल, चैतन्यचरण का शादी का कपड़ा, सिल्क का कुर्ता और सुहागरात में पहनी जरी किनारे की धोती को निकाल कर उन्हे दूसरी जगह रखा। बक्स खाली करके दोनों लड़कों के लिए कपड़े रखे थे। दो-दो जोड़े—चार जोड़े लट्टू मार्का धोतियाँ, चार-चार—आठ टुइल की कमीजें और घर में सिली चार बंडियाँ। यह काम किया था सिलाई-कढाई के लिए प्रसिद्ध प्रभु की चाची ने।...रेल कम्पनी के बदौलत घर में कोरी मार्किन थान-थान मौजूद रहती थी। इंजन के तेल-कालिख को पोंछने के लिए ऐसे थान बोरे भर-भर कर आते थे। जो काम फटे कपड़े से हो सकता है उसके लिए नया थान-थान कपड़ा। देख कर जी जल जाता। इसीलिए रेलबाबू लोग उसी में से थोड़ा-बहुत घर ले आया करते थे सद्व्यवहार के लिए। इसके लिए उनको विवेक के झटके नही झेलने पडते, क्योंकि कहावत है न—कम्पनी का माल, दरिया में डाल।

प्रभु-विभू की चाची ने काफी अक्ल लगा कर बंडियाँ ढीली-ढाली और बड़ी बनाई थी। क्योंकि मार्किन का कपड़ा फींचने से सिकुड़ता है। लड़के तो बढ़ेंगे अब।

सिर्फ दोनों के लिए अँगोछा एक था। दो भाई के दो अँगोछे—उन दिनों कोई सोच भी नहीं सकता था।

दोनो भाई तो सोते भी साथ ही थे। अभी तक चिन्ता इसी बात की थी कि मेस में इतना बड़ा तख्त क्या मिल पायेगा ? अब तो देवूचाचा ने उस समस्या का समा-

धान कर ही दिया है। बिस्तर ? बेकार ही के लिए बिस्तर ले जा कर क्या करेंगे? चाचा के यहाँ क्या दो तकिये, बिस्तर नहीं मिलेंगे ? मैं देख चुका हूँ टाँड़ पर बहुत बिस्तर रखा है।

अतएव और भी निश्चिन्त।

परन्तु ज्यादा निश्चिन्तता सबको सहन नहीं होती है। हजम करना मुश्किल होता है।...फिर पड़ोस की बुआएँ तो हैं ही सलाह देने के लिए। इसीलिए कमला कह बैठीं—'लड़के देवू देवरजी के घर में कैसे रहेंगे ? कायस्थ के घर का खाना खाएँगे क्या ?'

× × ×

हाँ, चादर में यह छेद तो है ही। देवू सगे या रिश्ते के चाचा नहीं बल्कि गाँव के चाचा लगते थे। चैतन्यचरण को भइया कहते थे, इसीलिए लड़कों के चाचा लगते थे। मित्र घर के लड़के थे देवनाथ मित्र।

सुनते ही चैतन्यचरण ने, भौंहे सिकोड़ कर बात काट दी, 'देवू के घर में महाराजिन खाना बनाती है।'

'यह मैं जानती हूँ।'

पड़ोस की बुआ आवाज कसतीं—'देवू की बहू तो नम्बरी कामचोर है। महाराजिन के हाथों का पका खाना खाये बगैर देवू के आगे अन्य उपाय ही क्या है ?'

चैतन्यचरण नाराज होते, 'देवू के घर में दोनों वक्त मिला कर पचास पत्तलें बिछती हैं, उतना खाना अकेली महिला कैसे पका सकती है ? देवू की बुआ तो उनके बारह भूतों की रसोई में मदद के लिए नहीं जाएँगी ?'

हाँ, यह भी एक बात है।

यूँ तो देवनाथ मित्र की असली गृहस्थी में कुल पाँच ही सदस्य हैं। लेकिन एक-एक वक्त उनके यहाँ पचीस-पचीस पत्तलें बिछा करती हैं। पाँच से तात्पर्य है सपत्नीक देवनाथ, उनके स्कूल में पढ़ने वाले दो लड़के और एक विधवा बुआ। दोनों नौकरों को अगर परिवार के सदस्य मानते हो तो मान लो। एक छोटा लड़का छोटे-मोटे कामों के लिए है, जो देवनाथ के पीछे-पीछे फिरा करता है। एक मजबूत-सा बिहारी नौकर है बर्तन माँजने के लिए। इसके अतिरिक्त वह मसाला पीसना, पानी भरना, कोयला तोड़ना और सब्जी लाने तक का काम करता है। इतना ही नहीं, घर के पुरुष सदस्यों के कपड़े फींचना भी उसी के जिम्मे है। कुल मिला कर सात जने बाकी सब हैं आश्रित।

यह आश्रितों का दल इधर-उधर से छिटक कर यहाँ आ पहुँचा है। देवनाथ के मातृ-पितृ और ससुर कुल का कोई भी व्यक्ति—खाने-पीने की असुविधा को सुविधा में बदलने के लिए देवनाथ के दरवाजे पर पहुँच सकता है। देवनाथ के घर का दरवाजा इन

लोगों के लिए खुला रहता है।

देवनाथ के फुफेरे भाई का साला कलकत्ते की नौकरी टिकाये रखने के लिए, हर महीने चार-पांच रुपये दे कर क्या कमरा किराये पर लेगा? रोज हाथ जला कर खाना पकायेगा? यह भी कोई बात हुई?

देवनाथ के निकम्मे ममेरे भाई सब, गाँव में गुलेल लिए, दूसरों के पेड़ों पर चढ़ कर नुकसान करते, खपाची काट कर मछली पकड़ने का कांटा तैयार करते और भूख लगने पर आकर माँ को आँखें दिखाते। चीख-चिल्ला कर लाई-चिउड़ा, बासी पानी में भिगो कर रखा चावल, जो भी मिल जाता वही खाकर पेट की आग बुझाते और फिर गायब हो जाते। यह सब देखने के बाद भी देवनाथ क्या चुप बैठे रहेंगे?

जोर-जबरदस्ती से गाँव के पांच-सात लड़कों को वे खींच लाए हैं। स्कूल में दाखिला दिलाने के बाद अपने यहाँ उन्हे रोक रखा है। दो तो भाग भी गए थे। फिर जा कर पकड़ ले आए। अब तो उनका भी यहाँ मन लग गया है।

हालांकि इस बात के लिए मामियाँ खुश नहीं हैं। देवू अपने ममेरे भाइयों को 'कलकतिया' बना कर उनके माँ-बाप का सर्वनाश कर रहा है इसमें क्या सन्देह है। वरना कोई दूसरे का झमेला झेलने बैठता है?

देवनाथ इन बातों की परवाह नहीं करते। जिसे जो सोचना है सोचे। लड़के तो कुछ पढ़ना लिखना सीख जाएँगे, वक्त से ठीक से खाना तो खाएँगे।...

नीलकान्तपुर के डेली पैसेंजरी करने वाले कुछ बिरादरी के लड़कों (और प्रौढ़ो को भी) देवनाथ ने आश्रय दे रखा था। डेली पैसेंजरी करते-करते इनका शरीर गलता जा रहा था। अब सप्ताह में ये लोग साढे पाँच दिन देवनाथ के घर खाते, रहते। सिर्फ शनिवार की रात और इतवार के दोनो वक्त का खाना वे घर पर खाते थे।

इसके अतिरिक्त बगल वाले घर के सुनार की बुढ़िया ने अचानक मर कर बूढ़े पति को क्या कम परेशानी में डाला है? अब उसके मुँह की तरफ कौन देखे? इस घर में जब हर दिन चार चूल्हे जल ही रहे हैं तो क्या उस बूढ़े के पेट की आग नही बुझेगी?

बुआ कहती, 'एक-सी बात हो तो भी समझ में आती है। न हो बीस आफिस के बाबू ही खाना खाएँ या फिर बीस स्कूली लडके।—कुछ नहीं तो इतने ही भिखारी खिला दे। यहाँ यह बात नहीं है। हर तरह के लोग हैं, हर तरह की चीज चाहिए। तूने तो देवू, चिड़ियाखाना खोल लिया है।'

× × ×

दोनों समय उसी चिड़ियाखाने के लिए दाना-पानी का प्रबन्ध करे, देवनाथ की दुबली-पतली पत्नी से ऐसी आशा करना व्यर्थ है।

बुआ तो कहती हैं—'यह क्या है....कहो तेजपत्ता है।'

इससे दोनों ही अर्थ निकलते हैं। यह बात आकृति व प्रकृति (स्वभाव) क ध्यान रख कर कही गई थी। देवनाथ मित्र भी अपनी पत्नी से किसी तरह की आशा

नहीं रखते हैं। उन्हे इस महाराजिन पर ही पूरा भरोसा है और भण्डारगृह की अधिष्ठात्री देवी के रूप में बुआ जी तो हैं ही।

'परन्तु यहाँ महाराजिन खाना पकाने के लिए है, कहने से ही तो समस्या का समाधान नही हो जाता? अगर वह काम छोड़ दे? गाँव चली जाए? अगर बीमार पड़ गई तो? तब क्या होगा?'

चैतन्यचरण और भी नाराज होकर कहते, 'तुम लोगों के पास कुतर्क की कमी नहीं है। जा तो रहे थे मेस में, वहाँ क्या तुम्हारी जाति बनी रहती? मेस का महाराज क्या अजर-अमर है? उसको कभी कुछ नहीं होता क्या?'

पड़ोस की बुआ उस समय घटना-स्थल पर उपस्थित थी। उन्होने जोर देते हुए कहा, 'कुतर्क हम नहीं कर रहे हैं, चैतन्य तू ही कर रहा है। क़ीमत देने से अशुद्ध चीज शुद्ध हो सकती है, यह क्यों भूल रहा है?'

'क्या कहा? मूल्य देने से अशुद्ध चीज शुद्ध हो जाती है?'

चैतन्यचरण जोर से हँसने लगे। ऐसी हँसी उन्हे हँसते बहुत कम देखा है। 'फिर तो बतोदी, होटल का खाना सबसे ज्यादा पवित्र है। तो फिर तीर्थ-वीर्थ जाने के नाम पर सूख-सूख कर कांटा क्यो होती हो? होटल का खाना खा लो, तीर्थ हो जाएगा?'

अन्नपूर्णा आश्चर्य में पड़ कर बोलीं—'मैं होटल का खाना खाऊँगी? तू मुझे कह रहा है?'

'वाह! मूल्य दे कर खाओगी कि नहीं?'

अब अन्नपूर्णा वहाँ खड़ी न रह सकीं। गुस्से में आकर बड़बड़ाती चली गईं, 'अपने लड़के को तुम 'मोछलमान' के हाथों का खाना खिलाओ, मेरा क्या जाता है? मेरा कहने आना ही गलत हुआ।'

डर के मारे कमला को साँप सूँघ गया।

इनका गुस्सा क्या होता है, यह तो पुरुष नहीं समझेंगे।

अतः रुआँसी-सी हो कर कमला बोलीं, 'असली मूर्खता तो देवू देवरजी की है। अपनी गृहस्थी में इन्हे ले जाने की चर्चा उन्हें नहीं करनी चाहिए थी।....कौन जाने, और पाँच जनों के साथ, कतार में बैठ कर खाना पडे। एक दूसरे से छू भी सकते हैं।'

चैतन्यचरण बोले, 'बड़ी बहू, जरा मन को ऊपर उठाओ।'

× × ×

इन बातों को प्रभु-विभू न समझते हों ऐसा नहीं था। विभू ने तो बहुत पहले ही छुआछूत ब्राह्मण-शूद्र के विरुद्ध आवाज उठाई थी। अब यह सोच कर ताज्जुब लग रहा था कि देवूचाचा के मामले में भी ब्राह्मण-कायस्थ का प्रश्न उठ रहा है? देवूचाचा तो उनके लिए 'हीरो' के समान थे।

कहाँ तो उन्हीं देवूचाचा के साथ रेल पर बैठ कर कलकत्ते जाएँगे और कहाँ

ऐसे स्वर्गीय सुख के सामने ऐसी निकृष्ट बात ?

लेकिन उन्ही उज्ज्वल व्यक्तित्व सम्पन्न मनुष्य के पीछे-पीछे घर में घुसते ही वैसी ही बात सुनी दोनों ने ।

दबी किन्तु तीक्ष्ण आवाज़ थी । एक नारी कण्ठ जीभ की आग से झुलसती सी बोली—'वाह ! सुन्दर । अभी भी आशा नही मिटी है । इस बार शालीग्राम की शिला गले से लटका कर ले आए हो ? तुम्हारी इस सात भूतों की गृहस्थी में, इन दो उच्च-कुलीय सर्प छौनो को कहाँ रखोगे, यह तो बताओ ?'

लड़के क्या इस बात का अर्थ नही समझते थे ?....क्यों नही समझेंगे ? यह शब्द तो उनका परिचित है । किसी पूजा पर्व पर पड़ोस की बूढी गृहणियां, जनेऊ हो जाने के बाद से, इन्हीं को 'ब्राह्मण' बना कर, फल-मिठाई खिलाती । यहां तक कि साष्टांग प्रणाम तक करे बगैर मानती नहीं थीं । 'नहीं-नही' करते तो दांतों से जीभ काट कर कहती—'अरे बाबा, ऐसा कही होता है ? तुम लोग हमें कितना ताई-बुआ क्यों न कहो, असल में हो तो उच्चकुल के ही ।'

× × ×

अभी यह बात किसने कही ?

देवू चाची ने ?

परन्तु इस कथन का स्वर क्या उन ताई बुआ की तरह से भक्तिपूर्ण था ?.... ये कहां आ गए हम लोग ?....

चिन्ता के स्रोत में बाधा पड़ी । देवूचाचा हा-हा करके हँस उठे ।

'इतने दिनो से एक विषधर सांप पालने की जगह जब है तब इन दो छोटे बच्चो को न रख सकूंगा ?...आओ, प्रभु-विभू....तुम लोगों को नल कहां है दिखा दूँ ।... कन्हाई कहाँ गया ? जल्दी ।'

छोटे अर्ज की लाल किनारे वाली धोती को लगभग लंगोटे की तरह पहने एक लड़के ने आ कर खीस निपोर दिये, 'बाबू, आप आ गये !'

'हाँ, आ गये । अब इनका बक्स ऊपर सीढ़ी के बगल वाले कमरे में रख तो आ । और इन्हे स्नानगृह दिखा दे ।...नये भइया हैं....समझा ? कॉलेज में पढ़ेंगे, इतनी-इतनी किताबें ।'

प्रभुचरण आज अगर स्मृति-मन्थन कर लड़के-लड़की को यह किस्सा सुनाने लगें तो हँसते-हँसते उनका बुरा हाल होगा । सीढी के बगल वाला वह कमरा, जिसका प्लास्टर निकल रहा था, देवूचाचा का गेस्ट-रूम था । किस्सा सुनाएँ तो विशद रूप से वर्णन भी करना पड़ेगा न ?

टूलू सुन लेगी तो उसकी हँसी ही न रुकेगी । अन्य को सुना-सुना कर कहेगी—'तुम्हारे देवूचाचा के उस वेलफर्निश्ड गेस्टरूम के फर्नीचरों की बात भी बताओ न, पिताजी । एक बार और बता दो । दो तरफ दीवाल से सटी दो चारपाइयां । ...उन चारपाइयों के निजी ढाई पांव ही थे, बाकी डेढ़ पांव ईंटों के....पर, इससे क्या है

है ? उठते-बैठते वक्त जरा हिलते ही तो थे, इससे ज्यादा तो कुछ नहीं होता था ? हाँ, चौड़ाई कितनी थी पिताजी ? ढाई फुट ? और खूब तन कर सोना चाहो तो दोनों पाँव चारपाई के बाहर, दीवाल से जा टकराते। उससे क्या हुआ—दो भाई के लिए दो अलग-अलग चारपाई तो थीं ? यह क्या कम ऐश्वर्य की बात है ?....उस पर दीवाल पर शीशा भी लटका हुआ था।....ओह ! पिताजी, शीशा कैसा था बताओ न ? किनारा टीन से मुड़ा और शीशे के बीच में गुलाब का फूल बना था। जरा सोचो तो वे लोग किस क़दर शौकीन आदमी थे। सुना है, शीशे मे एक विशेष गुण भी था। आँख, मुँह, नाक तिरछे और चौड़े दिखाई पड़ते थे। अहा कैसी मजे की बात थी। ऐसे शीशे में अपने को देख कर खुशी होती होगी कि स्वास्थ्य में सुधार हुआ है।....गेस्ट की सुविधा के लिए और भी इन्तजाम था—न पिताजी ? कपड़े टाँगने के लिए दीवाल पर 'अलगंडी' लगी थी, दोनों कोने में दो दीवाल-अलमारी भी थी।... यद्यपि अलमारी के हर खाने में दीमक का बसेरा था और दीवाल जगह-जगह से झड़ने के कारण, 'अलगंडी' उखड़ आती थी। लेकिन अब किया क्या जाये ? फिर तो गेस्ट की सुविधा-असुविधा का भी उन्हे ध्यान था।'

अवश्य ही टूलू इसी तरह से हँस-हँस कर कहती। गनीमत है कि उसने कुछ सुना न था। अगर किस्से सुनाते प्रभुचरण तब तो यह सब बताते ही। निन्दा करने के लिए नही बल्कि स्वाभाविक तौर से।....लेकिन उनके बचपन के किस्से सुन ही कौन रहा है ?....कहने की कोशिश की है। देखा था कोई ध्यान ही नही दे रहा है। अब कोशिश करते भी नही हैं।....जबकि बचपन की बातों में मजा कितना आता है।....चाहे वह सुख की बातें हो चाहे दुःख की।

सुनता नही है।....और कुछ न सही....तब और अब के 'बाजार भाव' की तुलनात्मक आलोचना में ही कितना मजा आता है। लेकिन ऐसे किस्से छेड़ने का उपाय भी है ? अगर गलती से कभी बात चला ही देता तो तुरन्त सब हँस कर कहना शुरू कर देते —'जानता हूँ बाबा, जानता हूँ। तुम्हारे बचपन मे खडी बारह आने सेर मिलती थी, छह आने सेर रसगुल्ले थे। इतनी बड़ी-बड़ी गंगा की हिल्सा मछलियाँ .. एक-एक रुपये जोड़े मिलती थीं। बड़ी झींगा मछली पाँच आने सेर, तीन पैसे का नारियल। जाड़े में बडे-बडे नैनीताल वाले आलू मिलते थे दो पैसे सेर।'....और बातें भी जोड कर कोई अन्य कहता—'और जूते कपडे ? ढाई रुपये जोड़ी जूता पहन कर तुम बडे हुए हो न ? चौदह आने में छींट का कपडा आता था—है न ?'

तो फिर ? मुँह की खानी पड़ती है या नहीं ? सिर्फ बाजार भाव ही क्यो, प्रभुचरण कुछ भी कहना चाहते, सुनने वालो का रुख देख कर रुक जाते।...यह देखते कि बात करते-करते पिताजी बीच ही मे क्यो रुक गये हैं इस बात पर कोई ध्यान नही देता है।

कितनी बार, अखबार मे छपी किसी खबर पर, देवर-भौजाई, या भाई-भाई, बहन-भाई, साला-बहनोई, ऐसी आलोचना करते, बहस छेड़ देते जैसे किसी एक तरफ

की राजसत्ता उलट-पुलट कर ही मानेंगे अथवा देश के कोने-कोने में जहाँ भी अन्याय पल रहा है, उसे खत्म किये बगैर शान्त न होंगे।

उत्साह में कमी तक नही आती। लेकिन अगर प्रभुचरण देश की गलत नीति या शासन-व्यवस्था पर कुछ कहते तो सभी उदासीन हो जाते। इन्ही विषयों में कभी वे भी इन्टरेस्टेड थे ऐसा याद तक न रहा।....ज्यादा कुछ कहते तो ये लोग उन्हे हार्ट की दशा की याद दिलाते हुए ज़ोर से बोलने के लिए मना करते।

× × ×

अन्त में अपने परम शत्रु हार्ट को ही कोसा करते प्रभुचरण। अच्छा भला चलते-चलते, बीच ही में अगर ऐसी बेईमानी न करता हार्ट तो क्या कभी उन पर हुकुम चलाने का मौका मिलता उसे? जब ये सब चले जाते, इच्छा होती सीने पर मुक्के मारें? क्यों, क्यो इसने इतनी बडी बेईमानी की उनके साथ?

× × ×

मन ही मन इतनी बातें इसलिए करते क्योंकि कोई उनकी बात सुनता नहीं था। *...जबकि एक ज़माना था, प्रभुचरण के गले की आवाज़ सुनते ही सभी सावधान हो जाते* थे। 'वह क्या कह रहे हैं, जा कर सुन।'

घर-बाहर दोनो जगह, लोग उन्हे सम्मान देते थे, आदर करते थे।....अब तो प्रभु-चरण का 'बाहरी' जीवन नाम का कुछ नहीं है। यह कमरा मानों छेद हो गया गुब्बारा हो, क्रमशः पिचकता जा रहा है। यद्यपि गज-फुट से नापो तो पता चलेगा कि प्रभुचरण का यह कमरा अच्छा-खासा बड़ा है। फिर भी लगता है, दीवालें धीरे-धीरे बिस्तर की तरफ बढती आ रही हैं और कमरे की परिधि छोटी होती जा रही है। जी भर कर सांस ले सकें, इतनी-सी हवा भी नही है कमरे में।

× × ×

उसी छोटी चारपाई पर विभू जबरदस्त कलाबाजी खा कर उठ खड़ा हुआ।

'प्रभु, तू देबूचाचा को क्या समझता है, बता?'

हां, 'प्रभु' कह कर ही बुलाता था, कभी-कभार भाई साहब।

प्रश्न समझने मे थोड़ी देर लगी। हमेशा ही बात समझने में प्रभु समय लेता है। विभू की तरह मिनटों में वह कोई बात नहीं समझ पाता है।

'समझता हूँ?'

क्या समझना है?'

'कुछ समझ में नहीं आ रहा है?'

प्रभुचरण ने डरी आवाज़ में कहा—'खूब अच्छे तो....'

'सिर्फ अच्छे हैं?'

उसके बाद ही विभू ने कई एक कलाबाजियां और लगाई, फिर बोला, 'उतना कहना भी कोई कहना हुआ? मुझे तो वे महात्मा बुद्ध, ईसा मसीह, श्रीचैतन्य, राम-कृष्ण सब लग रहे है। जीवन में ऐसा अच्छा आदमी कहीं देखा है?'

× × ×

'तू देख ! पूरा कमरा हम लोगों को मिला है ? सोच जरा ? हम लोग हैं कौन ? कोई नहीं, सिर्फ पड़ोस के लड़के हैं ।'

और भी उत्साह से विभू ने एक ऐसी खिड़की ढूंढ निकाली जहाँ से रास्ता दिखाई पड़ता था । कमरे की एक दीवाल जरा तिरछी थी । उसी तिरछे कोने में एक पल्लेवाली खिड़की छिपी थी । विभू, नजर पड़ते ही—'अरे', कह कर वहाँ जा पहुँचा । सिटकनी खोल कर बाहर देखते हुए चिल्लाया—'प्रभु-प्रभु, यहाँ एक खिड़की है, रास्ता दिखाई पड़ता है ।'

खुश होने की बात ही है क्योंकि सीढ़ी कुछ इस तरह मुड़ी है कि यह कमरा भीतर घुस-सा गया है ।...दरवाजा भी अन्दर के आँगन में निकलता है । खिड़की खोलने से नीचे के मंजिल का आँगन दिखाई पड़ता है । वहाँ जूठे बर्तनों का ढेर लगा रहता है और कभी-कभी नल के नीचे उनको उद्धार होते भी देखा जा सकता था ।

इस खिड़की को खुला छोड़, चारपाई पर लेट कर शुद्ध वायु का सेवन भी किया जा सकता है । यह पतली-सी खिड़की 'कलकत्ता दिखाने' का वादा कर रही है ।.... रास्ता ।

कलकत्ते का रास्ता ।

उस सँकरी खिड़की में दो चेहरे सटे-सटे, दूर-दूर तक देखने की कोशिश कर रहे थे ।....

क्या पता वहाँ कितना रहस्य छिपा है !

'कहाँ रे, तुम लोग नहा-धो चुके ?'

देवूचाचा ने सीढ़ियाँ चढ़ते हुए आवाज लगाई ।

'नहीं अभी....'

प्रभुचरण व्यस्त-सा आगे बढ़ आया ।

'नहाया नहीं है ? खाना तैयार है । अभी तक क्या कर रहे थे ?'

विभूचरण आगे आ कर हँसते हुए बोला—'रास्ता देख रहे थे ।'

× × ×

प्रभु को अकसर ही लगता था कि विभू उससे बड़ा है, लेकिन इस समय अचानक स्नेह से मन गद्‌गद हो उठा ।

'रास्ता देख रहे थे ।'

जैसे कोई छोटा बच्चा हो । सिर्फ बड़े भाई प्रभु का मन ही स्नेह और ममता से नहीं भरा, पड़ोस के देवूचाचा की भी शायद यही दशा हुई । ममता भरी आवाज में बोले, 'नहा-खा कर थोड़ी देर आराम कर लो । शाम को तुम लोगों को घुमाने ले चलूंगा तब जितना जी चाहे रास्ता देखना । एक घोड़े-गाड़ी वाले को कह रखा है ।'

'घोड़ा गाड़ी ?'

गाड़ी पर ले जाएँगे देवूचाचा, प्रभु-विभू को ? अपना पैसा खर्च करके । ऐसा भी कहीं संभव है ? बुद्ध, ईसा मसीह, चैतन्य भी तो बच्चों के लिए कितना कुछ करते थे ।

× × ×

प्रभु-विभू को पता नहीं था कि सिर्फ बच्चों के लिए ही नहीं, बड़ों के लिए भी देवूचाचा इतना ही करते थे। कोई भी आता, चाहे थोड़ी ही देर के लिए घर आया होता, देवूचाचा उन्हें गाड़ी पर बैठा कर कलकत्ता जरूर घुमा कर दिखाते।....अगर स्वयं समयाभाव के कारण न जा सकते तो दूसरे आदमी के साथ भेज कर ड्यूटी पालन करते।

दो प्रकार का अभियान था। बूढ़े, बूढ़ी गृहणियां, विधवाएँ आती तो उन्हे ले जाते कालीघाट, गंगा के किनारे, दक्षिणेश्वर, ठनठन की कालीबाड़ी। और साधारण लोगों को ले जाते, चिड़ियाखाने, राजा राजेन्द्र मल्लिक के घर, हॉग साहब का बाजार, ईडन गार्डन, परेशनाथ के मंदिर।....हालांकि एक चीज़ दोनों दलों के बीच आम थी—वह था थियेटर। गांव से, देहात से कोई पहली बार कलकत्ते आएगा और थियेटर नहीं देखेगा? ऐसा कहीं संभव है? टिकट खरीद कर, घोड़े गाड़ी पर बैठा कर पहले उन्हें थियेटर दिखाते, तब कहीं रेल पर चढ़ने देते।

हां, पर थियेटर में भी अन्तर था।

पहली पार्टी के लिए देवी-देवताओं पर आधारित नाटक चुना जाता और दूसरी पार्टी के लिए सामाजिक या ऐतिहासिक। स्टॉर, मिनर्वा में क्या चल रहा है, यह समाचार आगन्तुकों के कलकत्ता पहुँचते ही देवनाथ प्राप्त कर लेते थे।

× × ×

हालांकि छात्रों को थियेटर ले जाने का नियम नहीं था—इसके बदले में वे दूसरी चीज देखते।.... आते ही, पढ़ाई शुरू करने से पहले इन सब कामों से देवनाथ निपटा देते, जिससे कि बाद में मन भटकने न पाए।

इसी ढंग से देवनाथ चलते ही हैं। प्रभु-विभू जानते नहीं थे इसीलिए देवूचाचा के हृदय की विशालता देख कर मुग्ध हो रहे थे।

रहने देंगे (पूरे एक कमरे में), खाने-पीने को भी देंगे, उस पर गाड़ी किराए पर लेकर कलकत्ता भी दिखाएँगे। ओह, कितनी खुशी की बात है। हिचकिचाहट भी हो रही थी। हिम्मत करके प्रभु ने कह ही दिया—'गाड़ी? बेकार, हम लोगों के लिए....'

देवूचाचा बोले—'बेकार क्यों? कलकत्ता देखने के लिए ही तो? पढ़ाई-लिखाई में लग जाओगे तो ज्यादा घूमने-फिरने का वक्त कहाँ रहेगा? अभी दो-चार दिन घूम लो।'

फिर भी प्रभु कहने जा ही रहा था, 'आप हमारे लिए कितना करेंगे?'

पूरी बात कह नहीं पाया कि जल्दी से विभू बोला, 'बुद्धुओं की तरह बातें क्यों कर रहे हो भइया? गाड़ी पर बैठ कर कलकत्ता देखोगे, यह सोच कर खुश होना चाहिए कि....देवूचाचा क्या हमारे अपने नहीं हैं?'

'गुड'!

आगे बढ़ कर देवूचाचा ने विभू की पीठ ठोकी, बोले, 'ठीक कहा है। प्रभु, यह बात याद रखना।'

× × ×

देर हो गई थी। जल्दी से कन्हाई की निर्देशित पद्धति से स्नान-पर्व समाप्त करके दोनों लड़के रसोई घर के सामने जा कर खड़े हो गये। छोटे लड़के को कैसा लगा, वहीं जाने पर बडा लडका मोहित हो गया।

नाना के यहाँ बडे बरामदे मे अनेक लोगो को एक साथ खाना खाते बहुत बार देख चुके थे, फिर अन्य लोगों को एक साथ खाते देख कर मुग्ध होने की क्या बात है? नहीं—मुग्ध होने का कारण है।

नाना के घर की तरह कलकत्ते में लम्बा बरामदा कहाँ मिलेगा? परन्तु देवूचाचा ने दो कमरो को इतनी कुशलतापूर्वक लम्बे बरामदे में बदल डाला था कि देखते बनता था।

दो कमरों के बीच के दरवाज़े को छोड़ कर दोनों तरफ की दीवालो की ईंटें निकाल ली गईं थीं। मनुष्य की लम्बाई तक की जगह खाली हो जाने से एक बड़ा हाल-सा बन गया था। एक दरवाज़े के दोनों ओर खुली जगह....यह एक मजेदार दृश्य था।

हालांकि मोहित होने के लिये यही सब कुछ नही है। असली कारण था हर थाली के नीचे रखी छोटी-छोटी चौकियाँ।....लाइन से आसन बिछे थे दोनो कमरो में। कुछ टाट के कढ़े हुये आसन थे, कुछ रंग बदलती दरी की आसनें थीं। उन्हीं के साथ कुछ साड़ी के किनारो को जोड़ कर बनाई गई आसनें भी थीं। उन्ही आसनों के सामने बित्ता भर ऊँची छोटी-छोटी चौकियाँ रखी थीं। उन पर खाने की थाली।

ऐसा दृश्य प्रभुचरण ने पहले कभी नही देखा था?

क्या कारण हो सकता है?

समझ नही सके।

हाँ, एक ही तरह की, एक ही नाप की चौकियो को देख कर इतना स्पष्ट था कि आर्डर देकर बनवाई गई हैं।

विभू ने दबी आवाज में कहा, 'मनुष्य के लिए ही आसन रहता है। खाने के लिए सिंहासन कभी देखा है?'

प्रभु की आवाज़ धीमी थी, 'नहीं। यही तो सोच रहा हूँ। क्यों बता तो? इसके क्या माने हैं?'

विभू बोला—'बुद्धू की तरह पूछ मत बैठना। देखता चल, स्वयं सब कुछ समझ आयेगा।'

तभी देवूचाचा ने कमरे में पाँव रखा। चिल्लाये—'महाराज, घण्टा बजाओ।'

'घन्टा बजाओ'—जितना देख-सुन रहे थे उतने मे ही आश्चर्यचकित हो रहे थे। ..। बजाओ' के क्या मतलब हुये? कौन बजायेगा? कहाँ बजायेगा? सोचते-सोचते

ही सन्देह-भंजन हुआ। रसोईधर के दरवाजे के ऊपर ही एक घण्टा लटक रहा था, उसके साथ एक रस्सी बँधी थी। रस्सी पकड़ कर खीचते ही घण्टा बज उठा। बहुत कुछ मंदिरों की तरह।

घण्टा सुनते ही इधर से, उधर से, लोग आ-आकर आसनों पर बैठने लगे।...

छोटे-बड़े, बूढ़े-युवा मिला कर कम से कम तैंतीस-चालीस आदमी बे-झिझक खाने बैठ गये। कौन हैं ये लोग? इतने सारे लोग हैं देवूचाचा के घर में?

प्रभु कुछ समझ न सका।....सभी चुपचाप थे।

देवूचाचा ही शोर मचाते हुये बोले, 'इतनी देर क्यो हुई आज? छुट्टी का दिन है तो क्या पेट की भी छुट्टी है?....रामू उधर नही, उस पर मत बैठ, तू उस खाली थाली के सामने बैठ। आज भी चावल मत खाना, पूर्णिमा है। तुझे मैलेरिया और वादी की शिकायत रहती है...इन दोनो की ही चांद मामा से रिश्तेदारी है। चांद की लीलाओ के साथ-साथ इनकी भी लीलाएँ चलती है। तेरे लिये रोटियाँ आ रही हैं। भोजू चाचा, कह सुन कर जो चाहिये मांग लीजियेगा....महाराज का जो हाल है। एक ही बार में सब डाल गया है। ओ महाराज....बाबा जगरनाथ....एक बार इधर तो आना।....इधर नाना जी की थाली में इतनी ज़रा-ज़रा-सी सब्जी क्यों है? 'चिच्चड़ि' ले आओ और....'

× × ×

हर थाल के सामने जा-जाकर देवूचाचा देख रहे थे।

प्रभु और बिभू देख रहे थे—हर सीट तो भर चुकी है, फिर?

× × ×

देवूचाचा की दृष्टि पड़ते ही, व्यस्त होकर वे चिल्लाये, 'ओ बुआ, हो गया? ये तो खड़े ही रह गये है। कन्हाई....'

'यह है।'

एक महिला कण्ठ स्वर कही से चिल्लाया, 'तेरे जगरनाथ के हाथ-पाँव तो ठूंठ हैं। जल्दी-जल्दी अगर कुछ कर सकता? बहू....ओ बहू, तुम इस समय कहाँ गायब हो गई? इधर आओ तो....'

सामने कमरे के एक कोने में कुछ खाली जगह थी। कन्हाई ने आकर वहाँ दो हाथ से कढ़े कार्पेट के आसन बिछा दिये और दूसरे ही क्षण नियमानुसार दो चौकियाँ भी रख गया। निस्सन्देह दोनों नई थीं। नयेपन की आभा से चमचमा रही थीं।

'रखा?'

दरवाजे के बाहर के पतले से गलियारे में आकर बुआ खड़ी हुईं। शुद्ध भाव संपन्न महिलायें जिस तरह से मांसाहारी कक्ष के सामने कपड़े समेट कर खड़ी हुआ करती है, बिल्कुल वही परिचित मुद्रा थी। जब से होश संभाला था तभी से तो प्रभु-बिभू यही देखते आ रहे थे।

साफ दूधिया रंग, दुबली, लम्बी, रूखा-रूखा-सा चेहरा, सिर के बाल बिल्कुल

छोटे, शरीर पर छोटी अर्ज वाली थान धोती। यह थान धोती बुआ के घुटनों से उतरते ही रुक गई थी। आगे बढ़ना संभव न था।

बुआ के गले की आवाज शारीरिक गठन की तरह ही रूखी थी।

'बढ़ई के यहाँ की चौकी है, अच्छी तरह से धो दिया है न?'

कन्हाई लापरवाही से बोला, 'देख नहीं पा रही हो क्या? अभी तक पानी नहीं सूखा है। तुम्हारा भूषण बढई तो ले बैठा था...कहने लगा अभी भी दो कीलें ठोंकनी बाकी हैं। जल्दी-जल्दी करके कीलें ठुकवा कर....'

'अच्छा अच्छा, बड़ी बहादुरी का काम किया है...आओ भाई....तुम लोग इधर बैठो।....महाराज, नये भइया लोगों को खाना दे जाओ।....तुम लोगों का तो भाई स्पेशल है....ब्राह्मण पोते हो तुम लोग।....सुबह से ही कानों मे बात आई थी कि चैतन्य के लड़के देबू के साथ आए हैं, लेकिन देखने जाने का वक्त ही नहीं मिल रहा था। मिलता कैसे....तुम्हारी छुट्टी और हमारी दौड़-धूप। छुट्टी के दिन देबू की जिद् है कि निरामिष चौके में दो तीन तरह की चीजें बनें। चिन्ता न कर देबू, तिल कूट कर बैगन तले जा रहे हैं....'

हँस कर देबूचाचा बोले, 'तुम्हारे आगे जिद् करने के बाद चिन्ता कैसी? ज्यादा बनाई है न?'

बुआ जरा हँस कर बोलीं—'हो रहा है। तेरी गृहणी तो चावल-दाल भिगोया देख कर खुशी से दोनों बाहे उठा कर नाच रही है। उसके लिए सिल-लोढा शेर की तरह है जो....अरे भाई लोग, ऐसे बैठे क्यों हो? 'आचमन'[1] करके शुरू करो....'

कहते-कहते उनकी आँखें लगभग माथे पर चढ़ गईं, 'अरे मेरा सिर! पानी ही नहीं दिया है!...कन्हाई, नये घड़े से पानी दे जाने के लिये कहा था न तुझे?'

× × ×

कन्हाई दो चमचमाते काँसे के गिलास में पानी रख गया।

इसके मतलब—प्रभु लोगों का सब कुछ स्पेशल।

देबू चाचा पास आकर खड़े हुए, 'जो कुछ भी जरूरत हो, माँग लेना, शर्माना मत। महाराज परोस रहा है। उसके चौके में कन्हाई तो क्या तेरी चाची तक नहीं घुस सकती हैं।...सोलहो आने झक्की है।....कहता हूँ भात-दाल अलग रख दिया करो तब दूसरा आदमी परोस सकता है....पर ऐसा नहीं करेगा। खैर....तुम लोग मेरे ब्राह्मण भतीजे हो, तुम्हें तो महाराज का भरोसा ही करना होगा।'

× × ×

'देबू चाचा, चौकी पर थाली क्यों रखी है?'

'क्यो रे, खाने में असुविधा हो रही है क्या?'

'नहीं-नहीं, खूब सुविधा हो रही है। पर इससे पहले कभी देखा नहीं था न....'

---

१. इष्ट को जल चढ़ाना।

देवूचाचा हँसने लगे, 'जो भी आता है यही पूछता है। असल में खाँदू की माँ माने नौकरानी, ठीक से कमरे की फर्श पोंछ नहीं पाती है। थाली लगाते वक्त पानी देख कर घिन लगती है। उसके बाद हीं मैंने यह अक्ल लगाई।....एक बार एक मद्रासी मित्र के घर में देखा था। देख कर बहुत पसन्द आया था : सुविधा ही हुई, हाथ के पास ही एक बढ़ई मिल गया।'

'हाँ-हाँ, तेरी सुविधा तो हुई ही, भूषण बढ़ई की भी सुविधा हुई। बाप के श्राद्ध का कर्ज इतने दिनों में मिटा सका। तुझे भूषण ने क्या कम ठगा है?'

रूखी आवाज में बुआजी ने टिप्पणी की।

× × ×

एक बर्तन में महकती हुई कोई चीज लेकर बुआ का पुनः रंगमंच में प्रवेश हुआ।....पीतल की एक परात में तली हुई वस्तु लेकर बुआ छूत बचाती हुई कमरे में आईं।....ओह, इतनी देर से प्राणों को जो चीज मतवाला बना रही थी, वह चीज यही थी?

इस महक से प्रभु लोग अनभिज्ञ न थे। ननिहाल में भी निरामिष रसोईघर से अकसर ऐसी ही खुशबू आती थी, लेकिन उसके स्वाद का जायका लेने का सौभाग्य, मांसाहारियों को नहीं प्राप्त था सिर्फ बड़ों को एक-एक या दो-दो टुकड़े मिलते थे। इस तरह का इन्तजाम तो कल्पनातीत है।....

बुआ ने खाली परात न जाने किधर बढ़ा दी। किसी अदृश्य लोक से उसे फिर भर दिया गया।

परोसने के बाद बुआ सीधे आँगन में उतर गईं। किसी ने इमली मिट्टी की सप्लाई की। परात माँज कर वे नल के नीचे बैठ गईं। उसी तरह गीले कपड़ों में वह नहा कर चली आईं।

देवूचाचा बोले—'तुम मुझे दे देतीं बुआ, असमय में इस वक्त तुम्हें नहाना....'

बुआ बोल पड़ीं, 'तेरी बुआ, नहाने से डरती है क्या? मैं मिट्टी की गुड़िया नहीं हूँ, बेटा—जली मिट्टी की ईंट हूँ। अपने हाथों से परोसने में भी कितना आनन्द है। तू भी तो अब बैठ....

—'हाँ बैठता हूँ—एक कोने में एक आसन खाली था जिस पर किसी की नजर नहीं गई थी। देवूचाचा सब की थाली बचाते हुए उस खाली जगह में फिट हो गये। फिर हँस कर बोले—'मैं बहुत जल्दी-जल्दी खाता हूँ इसीलिये देर से बैठता हूँ।'

'लेकिन वास्तव में क्या यही बात है? स्वयं बैठ जायेंगे तो सब के खाने की देख-भाल कैसे करेंगे।'

प्रभुचरण ने किसी को धीरे से कहते हुए सुना।

'क्यों रे जमाई-माधाई, इस अँधेरे कोने में दीवाल की तरफ मुँह करके क्या कर रहे हो तुम लोग ?'

देवूचाचा आकर लड़को के पीछे खड़े हो गए।

उन्होंने देखा, दोनों भाई दो भारी-भारी कांसे के कटोरो में दूध पी रहे हैं।.... देख कर चकित रह गये। लड़को का इस तरह छिप कर दूध पीने का क्या कारण हो सकता है ?

देवूचाचा के ऊपर-नीचे के इन दो लड़को का असली नाम निमाई और निताई है लेकिन उनके गुणमुग्ध पिता ने पुत्र युगल के नाम में कुछ अदला-बदली कर दी है। अधिकतर उन्ही ऐतिहासिक मातृयुगल के नाम से ही उन्हे पुकारते थे।

लड़के पिता को देखते ही सकट में पड गये थे, यह उनके होठो के दोनों ओरो से बह आई दूध की धार बता रही थी।

'धीरे-धीरे पीओ। इतनी जल्दी क्या है ?'

देवूकाका के कण्ठस्वर में कौतुकभरी ममता छलक उठी, 'अचानक भूख लग गई थी क्या ?'

लड़के अगर चुप रह जाते तो 'मौन स्वीकार का लक्षण' है, समझ कर उनके पिता दोनों का सिर प्यार से, एक दूसरे से छुला देते और चले जाते। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। दूसरा लडका निताई स्वभाव और प्रकृति से बडे से अधिक चतुर है। उत्तर देना न पड़े इस इरादे से हाथ उलट कर होठो के किनारे से बह आये दूध की रेखा मिटाने लग गया। इसी मध्य मूर्ख निमाई, घूंट निगल कर अवरुद्ध स्वर मे बोला, 'ग्वाले ने दूध नही दिया है। कहा है कि बड़ी गाय का दूध, बछडे ने पी लिया है। इसीलिये,...'

देवू चाचा जाते-जाते रुक गये। उत्तर अप्रत्याशित और रहस्यात्मक था।

ग्वाला दूध दे जाने की बजाय यह समाचार प्रसारित कर गया है कि बछडे ने दूध पी लिया। फिर भी ये दोनो बेवक्त दो कटोरा भर कर दूध पी रहे हैं ? इस मामले से तो रहस्य की गन्ध आ रही है ? झट से समझना मुश्किल है कि किधर से रहस्य का सूत्र पकड में आयेगा। फिर भी देवूचाचा हँसने लगे और बोले—'बछडे ने दूध पी लिया है जान कर ही शायद तुम लोग बेवक्त दूध पीने बैठ गये हो। ज़रा मामला गड़बड़ लग रहा है। सवाल मिल नही रहा है। बताओ तो असली बात क्या है ?'

अब तो दोनों भाई चुप।

यह 'कोई अच्छा काम' वे नहीं कर रहे है, पहले भी शायद समझ रहे थे। लेकिन इस काम में 'मजा' तो आ ही रहा था। अब पिता की जिरह के आगे लगा कि काम बिल्कुल ही घृणित हुआ है।

उन्हे लगा, पिता जिरह कर रहे हैं।

मन में अगर अपराध-बोध रहे तो प्रश्न 'जिरह' ही लगते हैं।

'क्यों, चुप क्यों रह गये ?'

देवूचाचा के सवाल के ढग से ही लग रहा था कि इस रहस्य का उद्घाटन किये

बगैर वह यहाँ से जाने वाले नहीं ? इस तरह उलझा धागा छोड़ कर वे हिलने वाले नहीं। फिर भी जानबूझ कर या अनजाने में, वे किसी को धमकी नहीं देते थे। जो कुछ भी कहते, धीमी मीठी आवाज़ में कहते। बोले—'क्यों बेटे....अचानक मौन व्रत ले बैठे क्या ? या एक ही साथ दोनों गूंगे हो गये ? कहो, कारण कह ही डालो।'

फिर भी चुप।

'बड़ी मुश्किल है ! जगाई-माधाई को चक्षुलज्जा हो रही है ! तुम लोगों ने तो मुझे चिन्ता में डाल दिया। बोलो-बोलो, अब उगल ही डालो। समझ तो गये ही हो, सुने बगैर यहाँ से जाऊँगा नहीं। मेरा बहुत काम पड़ा है, इसलिये जल्दी से बता डालो।'

तथापि निरुत्तर !

निमाई सिर झुकाये खड़ा था। मानों खामोश, निश्चल एक पत्थर की मूर्ति हो। निताई खड़ा ज़रूर था परन्तु उसके हाथ पाँव हिल रहे थे। रह-रह कर वह पाँव पटक-पटक कर मच्छर भगा रहा था। हाथ उठा कर सिर खुजला रहा था। आँखें छोटी-बड़ी कर रहा था और अपने दोनों कन्धों की पेशियाँ फुलाये बगैर ही हिला रहा था। इसी के साथ-साथ, न जाने क्यों बार-बार बगल वाले दरवाज़े की तरफ ताक रहा था।

देवूचाचा थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद फिर बोले, 'तुम लोगों ने तो गजब कर दिया। क्या किसी ने गले में तीर मारा है ? लेकिन मुझसे, चुप रह कर, छुटकारा मिलने से रहा। मुझे तो जानना ही है कि इसके अर्थ क्या है। गाय पिया गई है फिर भी तुम दोनों सेर भर दूध पीने बैठ गए—यह बात तो सरासर धोखेधड़ी की लग रही है। तुम लोग जानते हो, मैं धोखे में रहने वाला आदमी नहीं हूँ। अब बताओ।'

निमाई का मन बेचैन हो गया। मुंह खुजलाने लगा। लेकिन बताने का उपाय नहीं था। छोटे भाई ने आँख बचा कर ऐसी जगह पर चिकोटी काटी है कि धोती का आवरण भेद कर वहाँ भयंकर जलन हो रही थी।

देवनाथ हताश होकर बोले, 'तुम्हें देख कर तो डर लग रहा है। तुम लोगों की माँ कहाँ है ?'

यह प्रश्न सुनते ही दोनों की दृष्टि खुले द्वार की ओर उठ गई। लड़कों का भाग्य अच्छा है, उनकी माँ दीर्घजीवी होंगी। इसीलिये ज्यों ही उनका नाम उच्चारित हुआ, त्यों ही दरवाज़े के बाहर महिला का कण्ठ स्वर सुनाई पड़ा।

'कटोरे कहाँ रखे रे ? कहा था न पी लेते ही...'

बस ! बात खत्म न हो पाई। कमरे में घुसते ही दुष्यंत-दर्शन से शकुन्तला का जो हाल हुआ था, 'न यथा न तथा'-सी खड़ी रह गई महिला।

देवनाथ अपनी पत्नी की तरफ आश्चर्य से देख कर बोले, 'मामला क्या है बताना तो ज़रा ? लड्डू या मिठाई नहीं, आचार अमावट नहीं, सिर्फ दूध पी रहे हैं। फिर भी ऐसे 'चोर-चोर' क्यों लग रहे हैं ?'

'चोर-चोर' के तात्पर्य ?

हेममाला बात बदलने में सफल न हो सकीं। जल्दी से बोलीं, 'चोरों की तरह'-सा क्या देखा ? दे तो कटोरे, अभी भी वह है, माँजने के लिये दे दूँ।'

देवनाथ आगे बढ़ कर बोले —'पहले मुझे यह बात समझाओ जमाई-माथाई की माँ। कटोरे से दबा कर बात दबाने की कोशिश मत करो।'

'अहा ! बात करने का क्या ढंग है ?' हेममाला बोल उठीं—'दबाओ मत', 'दबा रही हो यह सब क्या है ? धोखे वाली बातें समझना मेरा काम नहीं है।'

अब देवनाथ जरा हँसे—'यह काम तो मेरा भी नहीं है नई बहू। यही तो कह रहा था तुम्हारे लड़कों को। दिवाल की तरफ मुँह कर के दोनों भाई दूध पी रहे थे, कारण पूछने पर बोले, ग्वाला कह गया है बछड़े ने दूध पी लिया है।—अब तुम मुझे इसका अर्थ समझाओ।'

यहाँ एक इतिहास छिपा है। असल में पड़ोस के ग्वाले के पास देवनाथ की गाय रहती है, अर्थात् देवनाथ ने दो गायों को खरीदने का रुपया उसे दिया है। इन दोनों ही गायों का दूध, शर्तानुसार रोज उतना आयेगा जितने की जरूरत होगी। मिलावट वाला दूध आने का प्रश्न ही नहीं था।

यह भी शर्त थी कि किसी दिन अगर कम दूध होगा तो कम ही लिया जायेगा, परन्तु दूध में नाप बढ़ाने के लिये पानी नहीं मिलाया जायेगा।

हालांकि ग्वाला दूध में पानी न मिलाये और सुनार ग्राहक का सोना न चुराये ऐसी अविश्वसनीय घटना जगत् में तब तक नहीं घटेगी, जब तक आकाश में सूर्य-चन्द्रमा निकलेंगे। पर हाँ, यह यथार्थ है कि वह बेपरवाह होकर पानी नहीं मिलाता है। और यह भी सत्य है कि सिर्फ उन्हीं गायों का दूध इस घर में दे जाता है। असल में अब भी, ऐसे 'तथाकथित' निम्नश्रेणी के लोगों का 'पाप-पुण्य' पर विश्वास था।

अतएव बछड़े ने अगर उस 'विशेष गाय' का दूध अपना अधिकार जता कर पी ही लिया है तो ग्वाला सिर्फ यही बता कर चला जायेगा। दूसरे के हिस्से के दूध में पानी मिला कर नाप नहीं बढ़ायेगा। इसका भी यही कारण है। उनमें 'पाप-पुण्य' शब्द का चलन था। वे 'धर्मभीरु' थे, जबकि आजकल बाजार-भाव मन्दा चल रहा है। ऐसी दशा में अगर ग्वाले से कह दिया जाये कि सत्यनारायण की पूजा के लिए दूध चाहिये तो वह बाल्टी धो कर, पानी पोंछ कर दूध दुहता है, जिससे कि दूध में पानी न मिल जाये। हालांकि एक-आध ऐसे नहीं थे जो कि दूध में पानी नहीं मिलाते थे।

शम्भू ग्वाला, आदमी, जरूरत से ज्यादा ही सच्चा था। जिन बाबू ने गाय खरीदने के लिए रुपया दिया है, माँगने पर तुरन्त रुपया देते हैं, उनके साथ तो कम से कम नमकहरामी नहीं कर सकता है। इसीलिए वह कह गया था, 'आज बड़ी गाय का दूध नहीं आयेगा।' छोटी गाय ने जो कुछ दिया था वह पहुँचा गया था। उसके बच्चा होने वाला है, दूध कम दे रही है।

आमनप्रसवा के वट-वृक्ष के गोंद जैसे गाढ़े सेर भर दूध को हेममाला ने और भी

उबाला था। उसके बाद दो काँसे के कटोरे में डाल कर लड़कों के हाथ में दे दिया था। स्पष्ट है, सारा काम एकांत में होना था। कहीं कटोरे गवाही न दे बैठें इसीलिए स्वयं उन्हें लेने भी आई थीं। स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि घटनास्थल पर पहुँच कर उन्हें देवू मित्र को इसका तात्पर्य समझाना पड़ेगा।

ऐसे अवसरों पर गुस्सा दिखाने में सुविधा रहती है।

हेममाला बोली, 'इसके मतलब समझाने क्या बैठूं? एक बच्चा भी इसका अर्थ समझता है।'

'तो समझ लो, मेरी बुद्धि छोटे बच्चे से भी कम है....जब बात समझ में आ ही नहीं रही है, समझाना तो पड़ेगा ही।'

हेममाला और भी अधिक गुस्सा हुई, 'क्यों? क्यों सुनूं तो जरा? क्या मुझे अपने लड़कों को दूध पिलाने तक की आज्ञा नहीं है?'

'कौन कह रहा है नहीं? रोज नहीं पिलाती हो? कटोरा भर कर पिलाती हो। कहो तो एक गाय और खरीद देता हूँ शम्भू को। लेकिन आज का केस तो अलग है। एक तरफ बछड़े ने दूध पी लिया, दूसरी तरफ ये लोग भी दूध पीने बैठ गये...यही तो रहस्य है।'

हेममाला बोली, 'मुझे कटघरे में खड़े करने के लिए ही यह 'रहस्य' है। वरना कुछ नहीं। इतना जरा-सा दूध तुम्हारे कुनबे को तो कम पड़ता न, इसीलिए सोचा कि...'

'रहने दो, समझ गया।'

देवू मित्र गम्भीर हो कर बोले, 'इसीलिए सोचा, जो कुछ भी दूध जुट पाया है उसे सबकी आँख बचा कर अपने लड़कों के पेट में भर दूँ—क्यों? बड़े ही शर्म की बात है, नई बहू—बड़े शर्म की बात है। अपने मन की नीचता तो प्रकाशित हो ही गई, लड़कों के मन में भी नीचता का बीज बो दिया तुमने। जो बीज बोया जायेगा, उसी की फसल घर आयेगी .. इतनी-सी 'सार' बात जानती तो अच्छा होता। भविष्य में ये अपने माँ-बाप को पत्नी पुत्र के आगे फालतू समझ सकते हैं।'

गुस्से से हेममाला फुंफकार उठी। दूध के दोनों कटोरे उठा कर बोलीं, 'हर वक्त राई का पहाड़ करना। सिर्फ इतना ही कह कर शान्त क्यों हो गये? कहो न, बूढ़े माँ-बाप को झाड़ू मार कर निकाल देंगे, मारेंगे।'

और भी गम्भीर हो कर देवू मित्र बोले, 'असम्भव तो कुछ भी नहीं है। 'स्वार्थ-बुद्धि' चीज ही ऐसी है। एक बार उपजी तो नष्ट नहीं होती है। इसकी झाड़ बढ़ती ही जाती है, जिसके धक्के से मनुष्य अपना मनुष्यत्व खो बैठता है। सभ्यता, कर्त्तव्य, दायित्व, चक्षुलज्जा—सारी चीजों की बोध-शक्ति समाप्त हो जाती है। आज अगर तुम कह सकती कि इतना-सा दूध हर कोई आधी कलछुल भर पायेगा और खाने के अन्त में उतना ही दूध गुड़ या चीनी से खा सकेगा... तो तुम अन्दाज नहीं लगा सकती हो इन लड़कों का कितना बड़ा भला करती। तुममें वह क्षमता है ही नहीं, यही तो दुःख है, नई बहू। यह

दूध उनके शरीर में नहीं, मन के विषवृक्ष की जड़ में 'खाद' का काम करेगा।'

देबू मित्र वहां से चले गये। जाते-जाते लड़कों से कहते गये, 'शाम होने को है, जा कर पढ़ने बैठो।'

हालांकि वे गये नहीं। उन्होंने हेममाला के हाथों से भारी कांसे के कटोरे छीन लिए क्योंकि वह कटोरे अपने सिर पर पटकने जा रही थी। इसके साथ ही भगवान् से चिल्ला कर पूछ रही थी—'इतने लोग मरा करते है पर हेममाला क्यों नहीं मरती है? कैदियों की तरह आजन्म जेल में पड़ी है—न जाने कब जज कौन-सी राय दे। क्यों? क्यों इतनी लाछना? क्या लड़कों के लिए ज़रा-सा भी कुछ कर सकूं, इस बात की *स्वाधीनता नहीं है मुझे?'*

हालांकि बात झूठी नहीं है। यह कहा जा सकता है, कि हेममाला का पछतावा युक्तिहीन नहीं है। सिर्फ दो ही तो लड़के हैं। उनके पिता की इतनी आमदनी है फिर भी इतना-सा भी अच्छा-बुरा कुछ उनको खिला नहीं सकती है। दुर्गापूजा के दिनों में शौक से कपड़े-जूते नहीं खरीद सकती है। छुपा कर दो पैसा उनके हाथों में रखने का उपाय तक नहीं है। यह क्या सजा नहीं है? इसे बांध कर मारना नहीं कहते हैं क्या? और भाग्य भी देखो—हेममाला की कोई बात छिपी भी नहीं रहती है।

इस घर से निमाई-निताई की उम्र के जितने भी लड़के स्कूल जाते थे—देबू के भतीजे, भांजे, रिश्तेदारों के लड़के—उन्हीं के साथ टिफिन के लिए निमाई-निताई भी दो पैसे पाते थे। स्कूल में एक फेरीवाला आता है—एक पैसे में दोना भर कर चटपटी लइया और एक पैसे में दो बड़ी-बड़ी मीठी मठरी या चार-चार जलेबी—यही नाश्ता था। पर उस फेरीवाले की टोकरी में और भी अच्छी-अच्छी चीजें रहती थीं जिन्हें बड़े आदमी के लड़के खरीद कर खाते थे। क्या निमाई-निताई बड़े आदमी के लड़के नहीं हैं? उनकी क्या अच्छी चीजें खाने की इच्छा नहीं होती है? या इच्छा का होना पाप है?

अगर हेममाला छिपा कर उनकी जेब में एक आना रख देती हैं तो कौन-सा अन्याय हो जाता है?

हेममाला के भाग्य से यही होता है। इससे ज्यादा घृणित कार्य और क्या हो सकता है। इस बात का पता लग जाने से उस आदमी ने सभी को दो आने देना शुरू कर दिया।

निमाई-निताई बोले, 'वाह! उन्हे दो आने और हम लोगों को दो पैसा—क्यों?'

हँस कर तब देबू ने कहा—'तुम लोगों को देने वाली तो है रे। अपनी जेबें टटोल कर देखो न, 'रुपया या चवन्नी कहीं न कहीं होगी।'

इतना अपमान, इतनी लांछना! हेममाला के भाग्य में इतना अविचार!

ऐसी बातें छोड़ कर लड़के पढ़ने चले जाएं, यह तो हो नहीं सकता है। अन्तिम क्या होता है देखने के लिए खड़े रहे। और अन्त में उस नासमझी का फल भी मिला।

नाटक के अन्तिम चरण में देखा गया कि दोनों लड़कों की पीठ पर घूंसे बरस

रहे हैं और इसका कारण भी बताया जा रहा है। यह सब तुम लोगों की बेवकूफी से हुआ है। तुम लोगों के कारण ही यह अपमान हुआ बेवकूफ कहीं के! ज़रा सी बात छिपा न सके? सब व्यक्त करना ज़रूरी था? क्यों? क्यों तुम लोग इतने बड़े बुद्धू हो? अपना हित अच्छा नहीं लगता है? हर बात इस आदमी को पता क्यों चले भला? उनसे छिपाई भी तो जा सकती है? निकलो, निकलो मेरी आँखों के आगे से। उल्लू कहीं के। यम को भी तुम लोगों से अरुचि है। बाप रह कर भी अनाथ हो तुम लोग।'

थप्पड़, घूँसे की वर्षा के हाथों से बच कर भागे निमाई-निताई। हालांकि पिता की बात मानी होती तो इससे बच जाते। और एक बात न होती—यह है विषवृक्ष के नये पौधे की बुआई।....अब वे खूब समझ गये हैं कि उनके पिता भयंकर अन्यायी और अत्याचारी हैं।

दुबारा, नये सिरे से उसी रात खाने बैठे तो फिर समझे। उनकी दृष्टि पड़ी, थाली रखने वाली चौकी के ऊपर एक कोने में एक-एक सकोरा रखा था। हर किसी की चौकी पर, सिर्फ उन दोनो को छोड़ कर।

'यह सकोरा क्यों है?'

इस प्रश्न का उत्तर खाना जब खत्म होने लगा तब मिला।

देवनाथ दोनो हाथों में दो दही से भरी हाँडी ले कर कमरे में घुसे। जमीन पर उन्हें रखते हुए हँस-हँस कर कहने लगे—'आज शम्भू की गाय के बछड़े ने दूध पी लिया है, इसलिए दूध नहीं मिलेगा किसी को। आज भाग्य खुले हैं केशव के। उसकी दूकान से दो हाँड़ी दही ले आया हूँ। मीठी दही है। उसने तो कहा है बहुत बढ़िया है।'

उसके बाद एक सकोरे से निकाल-निकाल कर देवनाथ सबका सकोरा दही से भरने लगे।

निमाई-निताई चकित रह गये।

कन्हाई बदमाश ने सबको सकोरा दिया। बस, उन्हीं को भूल गया है। चलो मान लेते हैं कि वह भूल गया है लेकिन इतनी बड़ी एक गलती पर, पिताजी की नजर तक नहीं गई? अनमने से अच्छे-खासे वापस चले जा रहे हैं। क़रीब-क़रीब दरवाजा पार करने ही वाले हैं। निमाई से नहीं रहा गया। चिल्लाया, 'पिताजी।'

'कौन? जगाई? क्या कह रहा है रे?'

'हमें सकोरा देना भूल गये हैं।'

लगभग पानी आ गया था आँखो में...इसीलिए सिर सीने तक झुक गया था।

'अच्छा, यह बात है।' देवू मित्र बोल पड़े—'मैं यह सब क्या जानूँ? शाम को उतना सारा दूध पी लिया है न तुम लोगों ने। पेट के बिगड़ने के डर से तुम्हारी जननी ने सकोरा रखने को मना किया हो—मैंने यही सोचा। खूब बच गये। अभी तो ले जा कर महाराज और कन्हाई के लिए दे आता। देखूं कितना बचा है?'

काफी बचा था। दो सकोरे भर-भर कर ही उन्हें दिया गया, लेकिन जाते-जाते यह कहना भी नहीं भूले, 'देखना बेटा, पेट-वेट न खराब हो जाये।'

उस तरफ पहुँच कर फिर बोले, 'ओ बुआ ! तुम्हारे पूजाघर में एक कुल्हड़ दही है । गोपाल को भोग दे कर प्रसाद ग्रहण करना ।'

थोड़ी देर में आ कर खाने बैठ गये ।

× × ×

पाँव पर से कोई चीज सुरसुराती हुई चली गई । नरम-नरम । चूहा है क्या ? चौंक कर पाँव पटकते हुए अपनी ओर खींच लिया प्रभुचरण ने ।

तुरन्त ही चिरपरिचित नखरीली आवाज ने क्षुब्ध हो कर अभियोग किया— 'यह क्या पिताजी ? इस तरह से पाँव क्यों पटका आपने ? आपको बबुआ प्रणाम करने आया था ।'

'बबुआ !'

प्रभुचरण ने आँखें खोलीं । ये सब कब आये ?

अचानक हँसने लगे, 'बबुआ ! कैसी मुसीबत है ? मुझे तो लगा कि पाँव के ऊपर से चूहा दौड़ गया ।'

'इश ! तुमने मेरे बेटे को चूहा कहा, बापी ?' बालिका की तरह टूलू ने होंठ फुला लिये ।

प्रभुचरण बोले, 'अरे, उसे चूहा क्यों कहूँगा ? अचानक लगा, पाँव पर कोई नरम-सी चीज चल रही है—कहाँ गया वह ?'

'अरे बाप रे ! अब वह यहाँ रहेगा ? अपमान से सुलगता हुआ यहाँ से भागा है । कहाँ गया है, यह जा कर देखना पड़ेगा । आह बेचारा ! सात जन्मों में कभी उससे पाँव नहीं छुलवा सकी थी । अचानक क्या सोच कर खाट के किनारे खड़ा हो गया । खुद ही हाथ बढ़ा कर....'

'अरे, तो ! बुलाओ, उसे बुलाओ ।'

'अब बुलाने से आ चुका वह ।'

टूलू ने हाथ और चेहरे की एक अजीब मुद्रा बनाते हुए कहा, 'तुम्हारा नाती बड़ा अभिमानी है । उसके लिए उतना ही काफी है ।'

प्रभुचरण बोले, 'तब तो और जरूरी है बुलाना । ऐसे अभिमानी पुरुष से माफी माँगनी होगी । जा, उसे जा कर बुला ले आ । जो कभी प्रणाम नहीं करता है, उसने क्या सोच कर पैर छुआ, मैं भी सुनूँ ।'

टूलू खाट के पास रखे सोफे पर बैठ गई थी । बड़ी कठिनाई से शरीर के भार को खींच कर खड़ा किया । फिर जाते-जाते बोली, 'लड़का क्या है—बिच्छू है ! हो सकता है कह बैठे—नहीं जाऊँगा । नाना ने लात मारी है ।....'

ही...ही करके हँसती हुई चली गई ।

आश्चर्य से देखते रह गये प्रभुचरण । कितनी आसानी से इतनी बड़ी कठोर बात कह जाते हैं ये लोग । उसके बाद लड़की की सज्जा देख कर आश्चर्य में पड़ गये । घड़ी में कितना बजा है ?....सवा एक ? इसके मतलब, भरी दोपहर है । इस वक्त ऐसी

गहरे बैंगनी रंग की जरी किनारे की साडी पहन कर आई है ? चेहरा तो नौटंकी वालों की तरह पेण्ट कर रखा है।...इस वक्त आई क्यो है ? यहां खाना खाएँगे क्या ? पर खाना खाने तो सुबह ही आ जाते है।....या फिर खा-पी कर आये होंगे ?....पर छुट्टी के दिन इस वक्त खाना खा कर आये, टूलू इतनी बेवकूफ लड़की तो है नही।

प्रभुचरण धीरे से उठ बैठे।

उधर से कई आवाजें सुनाई पड रही थी।....शायद लडकों की, वहू की, दामाद की आवाज थी। उसी में टूलू के गले की आवाज सबकी आवाज को दबाती हुई बज उठी।

मानों बड़ी कौतुकपूर्ण कोई बात हो।

अवश्य ही पुत्र की बहादुरी की बात कर रही है। इन लोगों के पास बातों के लिये विषय-वस्तु तो हैं नही। या तो किसी की बुराई, या पुत्र के गुण और बुद्धिमानी का विस्तृत वर्णन करेंगे। एक-एक दिन तो लड़की सिर्फ 'बबुआ-चरित्र' पर व्याख्यान देकर चली जाती है। 'पिताजी कैसे हो', यह तक पूछना भूल जाती है।

लड़के के गुण की व्याख्या उसके सामने ही की जाती है। और बीच-बीच में उसकी तरफ 'कोपपूर्ण' दृष्टि डाल कर कहेगी, 'आंखें बड़ी-बडी करके क्या सुन रहा है, शैतान ? अभी मैं नाना, मामा, मामी को बताये दे रही हूँ।....ऐसा शैतान है न...इस तरह से कहने पर क्या कहता है जानते हो ? कहता है, कह दोगी तो मेरा क्या बिगाड लोगी ? वह मुझे फांसी दे देंगे ? कहां से ऐसी बडी-बड़ी बातें सीख आता है ! एक नम्बर का बिच्छू है ! एक दिन न....'

× × ×

एक-एक दिन की घटना का वर्णन करते हुये टूलू उस 'शैतान', 'बिच्छू', 'भयकर' लड़के का चरित्र आलोकित करती है।

और निन्दा ?

उस मामले में पात्रापात्र का भेदभाव नहीं करती है।

कोई भी हो सकता है—देश के शासनकर्ता हो, पड़ोस के कोई धनपति हो, या आधुनिक कविता के कविगण। यहां तक कि बर्तन मांजने वाली मेहरी तक इससे बच नही सकती है।

एक दिन तो सिर्फ बर्तन मांजने वाली की समालोचना करके पूरा दिन बिता कर टूलू लौट गई थी।

'अरे, यह क्या, आप उठ कर बैठे है ? अपने आप ही ?'

प्रभुचरण के दामाद का भाग्य अच्छा है। एक बार स्वयं उठ कर बैठे हैं, देख कर बेचारा घबड़ा कर दौड़ा आया है।

प्रभुचरण बोले, 'डॉक्टर ने कहा है। थोड़ा बहुत उठ सकता हूँ।'

'उठियेगा—जब कमरे में कोई रहा करे। जब हार्ट की हालत अच्छी नहीं है:...'

'तुम कह रहे हो कि उठ कर बैठते ही हार्ट फेल हो जायेगा ?'

प्रभुचरण के कहने के ढंग में मजाक का पुट था पर आंखों के कोने से व्यंग की धार झलक उठी। उत्तापहीन हृदय की यह आन्तरिकता भी सावधान वाणी, जिसमें हृदय को छू पाने की शक्ति न हो, सुन कर प्रभुचरण की निस्तेज होती इन्द्रियां भी चटखने लगतीं।

दामाद सरित कुमार इस व्यंगमिश्रित धार को न देख सके, क्योंकि उसमें और भी कर्त्तव्यबोध जाग उठा था। उस समय वह मेज पर रखी दवाओं का निरीक्षण कर रहा था।...प्रभुचरण जानते हैं, अभी एक-एक शीशी, डिब्बा सहित उठा-उठा कर कहेगा, 'यह दिया है ? यह तो नहीं देना चाहिये। हार्ट के लिये तो....और यह भी....'

अथवा कहेगा—'यह दिया है ? करेक्ट ! इस हालत में यही दवा ठीक है....'

ऐसा लगेगा जैसे डॉक्टर हो।

मानो सब जानता हो।

हँसी आती है। कभी-कभी गुस्सा भी आता है। बड़ी मुश्किल से इन भावनाओं को छिपाना पड़ता है। भाव-संवरण की शक्ति ही तो प्राकृतिक शक्ति है—यही तो असली शिक्षा है। सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा, मनःशक्ति सभी का मूल तो वही है—आत्म-संवरण। मनोभाव छिपा लेना।

× × ×

प्रभुचरण कभी-कभी मन ही मन हँसते हैं। एक तरह से मनुष्य मात्र ही सभ्य समझा जाता है। मनोभाव गुप्त रखते हुए ही तो मनुष्य सब के साथ निभाता जाता है।

इस वक्त भी सोचा, 'यही सरित कुमार, यह क्या नहीं सोचता है कि इस जरा-जीर्ण वृद्ध के पीछे कितना अपव्यय हो रहा है। इस तरह अचल होकर बिस्तर पर शरीर ढीला छोड़ दिया है। इस तरह पृथ्वी पर जमे रहने की जरूरत क्या है ?'

जरूर सोचता है। उसी दिन 'पिंजरेपोल' की बात चली तो अनायास बोल उठा था, 'जिन जानवरों की पृथ्वी पर कोई आवश्यकता नहीं है, अकारण ही उन्हें जीवित रखने के पीछे कितना आयोजन हो रहा है, कितना अपव्यय हो रहा है। इसके कोई अर्थ नहीं होते हैं।'

प्रभुचरण हँसे थे—'तुम यथार्थ कह रहे हो सरित। सचमुच इसके कोई अर्थ नहीं होते हैं। यह तो सिर्फ जीव-जन्तु ही क्यों, मनुष्य के लिये भी कहा जा सकता है। अकर्मण्य बुड्ढों को जिन्दा रखने की कोशिश भी भयंकर बेवकूफी का एक नमूना ही है।'

टूनू तो वहां रहती ही है।

सरित कुमार आये हैं और टूनू नहीं, ऐसी दुर्घटना कभी घटित होते देखी नहीं गई। हर बात पर पति का समर्थन करना या प्रशस्ति प्रकट करने जैसा आवश्यक

कार्य कौन करेगा ?

टूलू का स्वर बज उठा था।

हालांकि पति की बात का प्रतिवाद करके नही, पिता के कथन के प्रतिवाद में।

'आह ! पिता जी, आप भी कैसी बात करते हैं ?'

प्रभुचरण लड़की की इस बात पर बोले थे, 'ठीक ही कह रहा हूँ, बेटी।....जब पृथ्वी में जगह की कमी है, यहाँ गेहूँ-धान पूरा नही हो रहा है, इसलिये नये लोगों को आने नही दिया जायेगा, कह कर षड्यन्त्र चलाया जा रहा है, तब सड़े, फटे-पुराने लोगों का इस तरह से पृथ्वी पर दाँत जमाये बैठे रहना, बेवकूफी नही तो और क्या है ?'

प्रभुचरण लड़की का चेहरा देख रहे थे। उसके बाद फिर बोले, 'मूर्खता तो है ही, पृथ्वी के साथ विश्वासघात करना भी है। नये पौधों को जमीन के नीचे से निकलने न देना और सूखी डालें बनी रहे— यह तो पृथ्वी का नियम नही है। ताजे नये पत्तो में हरियाली का जैसा समारोह है....'

'बापी, तुम चुप तो रहो।'

टूलू ने फिर कहा था, 'इतनी बातें क्यों कर रहे हो ? डॉक्टर ने मना किया है न ?'

प्रभुचरण उत्तेजित हुए थे, 'इसी मना करने का ही तो विरोध कर रहा हूँ। उठते-बैठते, चलते-फिरते—मना और मना। ऐसे बूढ़े तो एक ही दस ताजे शिशुओं से कहीं भारी है।'

'ऐसा कहने से क्या होगा ? विज्ञान तो अब मनुष्य को 'अमर' बनाये रखने की साधना कर रहा है।'

प्रभुचरण हँसे थे, 'अच्छा है। जन्म और मृत्यु जैसी दो चीजों पर कब्जा कर लेने पर पृथ्वी का चेहरा क्या होगा वही सोच रहा हूँ।'

× × ×

उस दिन यह बात कही थी प्रभुचरण ने।

तब क्या सचमुच प्रभुचरण मृत्यु की व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रहे है ?

नही ! यह तो सिर्फ जीवित रहने की शर्म के कारण—ऐसा तर्क दे रहे हैं।

× × ×

इस मोहनी पृथ्वी की ओर देखते हैं तो आज भी हृदय भर उठता है। यह प्रकाश, आकाश, यह सुबह-शाम फाक्ते का बोलना—वर्षा की रात होगी और मैं नहीं रहूँगा—सोचते हैं, तो दिल धड़कने लगता है। मन उदास हो जाता है। मैं न रहूँगा फिर भी यह सब होगा—सोचते है तो अभिमान से मन भारी हो जाता है। फिर भी इसी बात पर तर्क करते हैं। करना पड़ता है। हृदय से ऊपर ही तो बुद्धि का स्थान होता है न ?

दामाद अब कमरे से बाहर जाने के लिये बेचैन हो उठता है। जैसे और लोग होते हैं। जितनी सरलता से घुस आते हैं उतनी आसानी से निकल नहीं पाते हैं। कितना बहाना ढूंढना पडता है। बहाना प्रभुचरण ने ही ढूंढ दिया।

'कहाँ ? तुम्हारा बेटा तो नहीं आया। मेरे अहोभाग्य कि आज वे मेरी चरण-धूलि लेने आये और मैं समझ न सका।'

पति की रक्षा की टूलू ने आकर।

'तुम यहाँ जमे हुये हो ? उधर वह लोग खाना शुरू नहीं कर पा रहे हैं।'

'जम कर बैठे हो' सुनने मे बडा वजनदार है—इसीलिये कहा गया। कौन नहीं जानता है कि प्रभुचरण के पास जम कर बैठने की क्षमता किसी में नहीं है।

सरित कुमार ने देखा, खाने की पुकार हो गई है। उसी के कारण लोग खाना शुरू नहीं कर पा रहे हैं, अतएव उसने भी एक भारी भरकम संवाद सुना डाला, 'बापी का कमरा इतना बढ़िया है कि यहाँ से जाने की इच्छा नहीं होती है।'

'वह तो मेरी भी नहीं होती है...'

अब टूलू ने यथार्थ बात कही—'पूरे घर में यही कमरा तो सबसे अच्छा है। जैसी रौशनी, वैसी हवा....सब से अच्छा....'

यह बात क्या प्रभुचरण नहीं जानते हैं ? फिर भी नये सिरे से बात कानों में पड़ी तो शर्म से दिल धडक उठा। इसके अर्थ हुये प्रभुचरण सिर्फ निर्लज्ज ही नहीं स्वार्थी भी हैं।

दिल की धड़कन को वश में करते हुये बोले, 'क्या हुआ ? नाती साहब आये नहीं ?'

'नहीं, खा रहा है।'

टूलू हीं-ही करती हुई हँसने लगी, 'ऐसा असभ्य है।....कहता क्या है....ही-ही, नाना ऐसे आँख बन्द करके पड़े थे कि मैंने सोचा, ही-ही, फूफा के पिताजी की तरह मर गये हैं।....मर जाने पर हीं-ही....प्रणाम करना पड़ता है न।...ऐसी पुरखो की सी बातें कहाँ से सीखता है....'

टूलू की बात हँसने लायक ही है। उच्छ्वासित होकर हँसते हुये उसने लडके की 'पुरखों-सी आदत' की बात कही थी पर बीसवीं सदी का सरित कुमार विडम्बित हुआ। पत्नी को रोकते हुये बोला, 'यह कैसी बात कर रही हो ?'

'वाह, यह क्या मेरी बात है ? बबुआ की भाषा है, मैं तो सिर्फ....'

'तो भी। चलो ! वह लोग बैठे है, कह रही थी न ?'

सरित कुमार के साथ कमरे से निकल कर टूलू कहती हुई चलती है,' 'तुम्हारा

लड़का एक ही चीज है। तुम इतनी-सी बात पर ऐसा कर रहे हो? नाना के पाँव छू गये हैं कह कर उसने कमीज उतार कर फेंक दी है। उतनी अच्छी कमीज पहना कर ले आई थी।'

फिर धीरे से हँसी, 'असल मे बुआ के ससुर जैसी घटना सोच कर वह 'माया' में फँस गया था। धोखा खाकर बुद्धू बन गया तो अपमानित समझ रहा है। अब इस कमरे में आना नहीं चाहता है।'....

लड़की की कही बातों का प्रारम्भिक अंश सुन पाये प्रभुचरण,...शेष नहीं। लेकिन पूरी बात सुन कर करेंगे ही क्या?

कुछ देर तक खुले द्वार की तरफ देखते हुये बैठे रहे प्रभुचरण, उसके बाद लेट गये।

जरा सा हँसे क्या? या दीर्घश्वास खींची? भविष्य का रूप देखा सोच कर।

लेकिन नीता का लड़का राजा बिल्कुल ऐसा नहीं है। वह भी भावी युग का ही नागरिक है। वह कम बोलता है, गिने-चुने, छाँटे-काटे हुये शब्द। एक प्रश्न का एक ही जवाब देता है।....

शुरू में बच्चों का दिल कितना स्पष्ट होता था लेकिन आज? आज ये भी 'सुशिक्षित' हो गए है।....लोगों की नजरों में, देखने-सुनने में ठीक है लेकिन अपने लिए? राजा के अन्दर का 'शिशु' कहाँ गया? छह साल का शिशु?

प्रभुचरण नहीं जानते हैं, इस 'कृत्रिम फूल' से उसके माँ-बाप का हृदय कितना विशाल हो उठता है। यह भी शायद एक नमूना है।

शाम के वक्त!

भाभी के साथ सिनेमा जाने से पहले, टूलू ने बात छेड़ी। प्रभुचरण क्यों ऐसी बेवकूफी भरी जिद्द कर रहे हैं? एक दस्तखत भर कर देने से प्रति माह ढाई सौ रुपया घर आता।

प्रभुचरण समझ गए कि लड़के दोबारा अपमानित नहीं होना चाहते हैं इसीलिए बहन को वकील के रूप में भेजा है।

प्रभुचरण पहले धीरे से हँसे फिर बोले, 'रुपया तेरे घर तो जाता नहीं। तेरे सिर में क्यों दर्द हो रहा है?'

सुन कर टूलू उत्तेजित हो उठी, 'मुझे क्या आप ऐसा ही समझते हैं? अपना स्वार्थ न रहे तो क्या कुछ नहीं करूँगी?'

'अरे, मैं यही कह रहा हूँ क्या? यह भूल गया था कि इस युग के लड़के-लड़कियाँ मजाक नहीं समझते हैं। 'परिहास' को 'उपहास' सोच कर आहत हो जाते हैं। रवीन्द्रनाथ ने क्या कहा था, जानती है? कहा था, 'वही आदमी शिक्षित होता है जो

परिहास करना जानता है और परिहास हजम करना जानता है। खैर....छोड़ो...कलम की खरोंच से कुछ रुपए घर में आते, इस बात को मानता हूँ लेकिन जो मेरा नहीं है, उसे अवसर पाते ही दस्तखत करके ले लूँगा तो यही खरोंच कहीं और जा कर घाव कर देगी।'

'यह सब तुम्हारी बेकार की बातें हैं बापी! इतने लोगों ने सुना, किसी ने तो नहीं कहा कि प्रभु गांगुली की बात ही ठीक है। सभी चकित हो रहे हैं कि ऐसी अजीब बुद्धि है। इतनी मेहनत के बाद जब वसूल करने का रास्ता स्वेच्छा से...'

'जगत् में एक-आध अद्भुत लोग तो रहेंगे ही।' प्रभुचरण बोले, 'मैंने तो इसी तरह की मेहनत करके, काफी रुपया घर ले आने की राय तेरे भाइयों को दी थी—सुना किसी से?'

टूलू ने सन्देह भरी आवाज में पूछा, 'वह क्या चीज है?'

'गाँव में जो कुछ जमीन-जायदाद, घर-द्वार है, उसे बेच डालने के लिए कहा है...'

'गाँव में? यानी कि तुम्हारे गाँव में? उस नीलकातपुर की बात कर रहे हो?'

टूलू ही-ही करके हँस उठी, 'उस अपूर्व स्थान में जमीन का दाम क्या होगा बापी? तीन-चार पैसे?'

अपूर्व स्थान!

प्रभुचरण के सीने में एक झटका-सा लगा। धीरे से बोले, 'वह जगह अपूर्व ही है—देखने तो कभी गया नहीं।....कौन जाने, अब जमीन का दाम-वाम बढ़ा भी होगा।'

'दाम बढ़ा है लेकिन उस जंगल का नहीं। अच्छा, अपने कागज-वागज निकाल कर दो मुझे, एक बार सरित को दिखाऊँगी।'

हाँ, आजकल पति के विषय में 'ये' 'वह' 'तुम्हारे दामाद' वगैरह नहीं कहती है टूलू। नाम लेकर ही बात करती है। कुछ दिनों से लड़की में यह परिवर्तन देख रहे थे।

कुछ बोले नहीं।

इधर उनका ध्यान गया है यह भी जानने नहीं दिया।....प्रभुचरण में यही एक बुराई है।....'बड़ी मुश्किल से किसी ने बहादुरी का एक काम किया और आपने उधर ध्यान ही नहीं दिया। इसीलिए लोग नाराज भी होते हैं।'

ये लोग चाहते हैं प्रभुचरण बहस करें, लेकिन वे उस तरफ भिड़ते तक नहीं। सिर्फ इसी एक बात का विरोध किया है उन्होंने, स्वाधीनता संग्राम के दुखी सैनिकों का भत्ता लेने के मामले में।

टूलू कुछ कह उठी।

प्रभुचरण ने चौंक कर देखा। बोले, 'कुछ कहा तू ने?'

'हाँ ! कह रही थी कि कहाँ हैं तुम्हारी जमींदारी के कागज, दस्तावेज ? अलमारी में ? ड्रॉर में ? या गद्दी के नीचे ? देखूँ देखूँ, माने दिखाऊँ । मैं तो खाक रमझूँगी ।'

प्रभुचरण मन ही मन हँसे ।

अचानक लड़की के दिमाग में क्या आया, इस रहस्य को जान कर ही वे हँसे । फिर बोले, 'वह यहाँ नहीं है । तेरे छोटे भइया के पास है ।'

'छोटे भइया के पास ?'

टूलू लगभग माचिस की तरह खस् से जल उठी ।

'क्यों ? उसके पास क्यों है ?'

'उसने 'समय मिलेगा तो देखूँगा' कह कर रख लिया है । क्या पता, खो-खा न दिया हो ।'

'इसके क्या मतलब हुए ? बिना बात खो जाएगा ?'

टूलू लगभग लड़ने को तैयार हो गई, 'यह तुमने ठीक नहीं किया है पिताजी । वह जैसा लापरवाह है । बल्कि भइया को दिए होते तो....'

'तेरे भइया ने तो इस कान से सुन कर उस कान से बात निकाल दी थी । जैसे तू...'

टूलू जरा अप्रतिभ होते हुए बोली, 'यह बात ठीक नहीं है । मैं कह रही हूँ आर्थिक दृष्टि से कुछ न सही, लेकिन सेण्टीमेण्टल वैल्यू तो है । क्या कहा जाता है न.... 'पैतृक घर'—है न ? एक बार जाया जाए तो कैसा रहे ? देखूँ, छोटे भइया ने क्या कर रखा है ।'

चंचल भाव से टूलू उठ कर चली गई ।

प्रभुचरण के लड़के-लड़की, उनका पैतृक-घर देखने के नाम पर एक समारोह का आयोजन कर डालेंगे, ऐसा उन्होंने कभी सपने में नहीं सोचा था ?

उस दिन टूलू को चंचल होते देख कर, मन ही मन सोचा था, 'हाय बेचारी । अच्छी भली शान्ति से रह रही थी, अब उसके मन में लकीर खिंच गई ।'

वे सोच रहे थे कि दो-चार दिन में बात आई-गई हो जाएगी । परन्तु पति और भाइयों के पीछे पड़ कर वह कुछ कर भी सकती है यह प्रभुचरण ने नहीं सोचा था ।

टूलू ने इतना उत्साह दिखाया कि हर किसी के दिल में चंचलता जागी ।

अन्त में, देखा गया, प्रभुचरण के लड़की-दामाद, बड़ा लड़का, उसकी बहू, छोटा लड़का और लड़के-लड़की के दो । फालतू प्राणी—सभी बड़े उत्साह से नीलकान्तपुर देखने जाने की तैयारी कर रहे हैं ।

हाँ—यही कह रहे थे वे लोग ।

उत्साह के इस अस्तित्व को ढँकने के लिए कौतुकपूर्ण आवरण का प्रयोग कर रहे हैं।

नीता ने ही पहले खबर सुनाई।

मानो बड़ी ही कोई अवास्तविक बात हो, कोई मूर्खतापूर्ण शौक हो, इस तरह से हँस कर हल्की आवाज में कहा, 'पिताजी, जानते है, हम आपके नीलकान्तपुर का दर्शन करने जा रहे है।'

टूलू को आए कई दिन हो गये थे, वह भूल चुकी होगी, प्रभुचरण यही सोच कर चुप बैठे थे। अब नीता की बात सुन कर न चौंकने पर भी आश्चर्य-चकित तो हुये ही। विस्मय प्रकट न करने की आदत हो गई है।

वे भी कौतुकमयी आवाज में बोले, 'यह बात है ?'

'हाँ ! बिल्कुल दल बल सहित...'

'यह तो बडी अच्छी बात है। तब तो अभागे नीलकान्तपुर का भाग्य बदलने जा रहा है। टूलू उस दिन अचानक खूब हो-हल्ला कर गई थी।'

नीता बोली, 'टूलू ने ही पहल की है। सुन कर मुझे भी लगा कि एक दिन पिक-निक के बहाने जाने में हर्ज क्या है ?'

एक साथ इतनी बातें नीता कभी नहीं करती है। प्रभुचरण समझ गये कि झिझक मिटाने के लिये उसने इतनी बातें कह डाली हैं। पूछा, 'कब जायेंगे ?'

नीता बोली, 'यह बात अभी विचाराधीन है। अभी एक ऐसा दिन ढूंढ निकालना है जिस दिन सब की छुट्टी होगी।'

बात कुछ बढा कर नही कही थी नीता ने, आविष्कार करना ही समझो।

अब तो सर्वसम्मति के लिए रविवार भी नहीं रह गया है। अगर किसी दिन छुट्टी लेना चाहते तो उस दिन बबुआ के स्कूल का 'वार्षिक खेलकूद समारोह' रहता या राजा के स्कूल में 'हस्तशिल्प प्रदर्शनी का उद्घाटन,' जहाँ उद्घोषक से लेकर गवर्नर तक आने वाले थे।

और अन्त में एक छुट्टी मिल ही गई। गान्धीजी का जन्मदिन।

टूलू बोली, 'बापी, देखा तुमने। हम लोगों ने कैसा दिन चुना है। महात्मा गान्धी के जन्मदिन पर बापी की जन्मभूमि का दर्शन।'

उसके उत्साह भरे चेहरे को वे देखते रहे। उनके मन में एक बात बुरी तरह से मचल उठी। फिर भी शान्त स्वरों में बोले, 'जन्मभूमि कह सकती हो पर जन्मस्थान नहीं।'

'क्यों ? सुना है तब नर्सिंग होम में जाने का रिवाज नहीं था। बच्चे घर घर ही पैदा होते थे।'

'घर ही में लेकिन मामा के घर पर।'

प्रभुचरण हँसे, 'यदि मामा का घर न होता तो उसी का जन्म पिता के घर हुआ करता था।'

सरित बोल उठा, 'स्ट्रेंज।'

अकारण ही शुभ आकर व्यस्तता का नाटक करते हुये कहने लगा, 'डाइरेक्शन ठीक से समझा दो पिता जी। बाई कार जाना है....'

बाई कार!

प्रभुचरण आश्चर्य करते हुये बोले, 'तुम लोग कार पर जा रहे हो?'

'हाँ, उसी में सुविधा होगी। कम डिस्टेंस के लिये ट्रेन पर जाना, झक मारना है।'

झक मारना....आधुनिक शब्द नही है।

इस शब्द का प्रयोग वनशोभा खूब किया करती थी। बचपन की आदत हो या कुछ और, शुभ की बातचीत में यह शब्द समा गया है।

प्रभुचरण के होंठों पर आया, 'लेकिन पेट्रोल की बात तो सोचो।' परन्तु बोले नहीं। इस तरह की कोई बात करने पर ये लोग दयापूर्ण हँसी हँसते है। ऐसा भाव चेहरे पर लाते हैं—'हाय बेचारा! कैसी दीन-हीन मनोभावना है? नज़र कितनी नीची है?'

क्या इन्ही का दिल दरिया-सा बहा करता है? एक-एक समय तो छोटी-सी चीज के लिये ऐसी नीच नज़र का परिचय देते है कि शर्म लगती है।

असली बात है, अपने ऊपर किया खर्च अखरता नही है—चाहे वह निरर्थक हो या अतिरिक्त हो। अन्य मामलों में एक पैसे के पीछे जीने-मरने का प्रश्न उठ जाता।

अचानक छोटी दीदी के लड़के परेश का ध्यान आ गया। अन्तिम बार जब आया था तो बोला था, 'इस तुच्छ नौकरी के कारण पड़े रहने की इच्छा नहीं होती है। कभी-कभी मन करता है कही चला जाऊँ।'

कहीं चला न गया हो।

पता नही क्यों परेश का ध्यान आ गया।

पर अचानक चुप मार जाना बत्तमीजी होती है। कुछ कहने की नियत से ही बोले, 'सुना, सभी कोई जाओगे, गाडी में आ जाओगे?'

शुभ हँस कर बोला, 'तुम सोच रहे हो एक कार मे जा रहे हैं? दो गाड़ियाँ जा रही हैं। हाल ही में टूलू की कार अस्पताल से लौटी है। आशा करता हूँ, जल्दी बिगड़ेगी नही।'

दो गाड़ियां जाएँगी।

दो गाड़ियाँ। इस घर के दरवाज़े से नीलकान्तपुर के घर के दरवाज़े तक।

अचानक प्रभुचरण के मन में उथल-पुथल मच गई।....नही। पेट्रोल के खर्च की बात सोच कर नहीं। अब उस बात को सोचने की ज़रूरत नही है। सोचेंगे तो वे लोग हँसेंगे। लेकिन जो चिन्ता मन में आई है उसे अगर प्रकाशित कर बैठें?

प्रभुचरण अनुमान लगाते हैं कि उस इच्छा को प्रकाशित करने पर समवेत हँसी के झटके से इतने दिनो का संजोया आत्म-सम्मान मिट्टी में मिल जायेगा।

फिर भी ?....

फिर भी क्या मान-मर्यादा से हाथ धोकर कह बैठें, 'दो गाड़ियाँ जा रही हैं ? तब चलो, मैं भी तुम लोगों के साथ घूम आऊँ।'

क्या बड़ा दीन-हीन-सा लगेगा सुनने में ?

अच्छा, अगर कौतुकपूर्ण ढंग से कहूँ तो ? जैसे बिल्कुल सच नहीं कह रहे हैं, सिर्फ मजाक कर रहे हैं ! इससे तो इज्जत बच सकती है ?

यह भी हो सकता है कि इस बात पर उनके मन में अन्य बात आ जाये। उनमें से कोई सोच सकता है, यथार्थ ही तो है—पिता जी और किसी तरह से वहाँ जा भी तो नहीं सकते हैं। बेचारे ! उनके बचपन की कितनी यादें हैं वहाँ ? नीलकान्तपुर कहते उनकी आवाज भर्रा उठती है। जीवन के अन्तिम दिनों में एक बार...

लेकिन इनमें से वह 'कोई' कौन हो सकता है ?

कौन ?

प्रभुचरण ने जैसे तस्वीरों से लदी दीवाल की तरफ देखा, ध्रुव ?...हूँ। असम्भव ! कहेगा, 'तुम्हारा क्या दिमाग खराब है ?'

शुभ ?

सामने तो खड़ा है। उस यूनानियों से चेहरे के मुँह से क्या ऐसी बात निकलेगी ? वह कहेगा—'प्रस्ताव तो बुरा नहीं। बिल्कुल जन्मभूमि में ही 'अन्तिम संस्कार' कर दिया जायेगा।'

तो फिर ? नीता ? प्रभुचरण ने सोचा।

नीता उस तरह से नहीं कहेगी। सुन्दर ढंग से हँस कर कहेगी, 'यह तो अच्छी बात है। चलिए न पिता जी। पर एक और कार लेनी पड़ेगी। साथ में डाक्टर, दवाएँ, आक्सिजन-सिलेण्डर वगैरह प्रिकॉशन के तौर पर साथ ले लेना ठीक रहेगा।'

नूक़ ?

प्रभुचरण की छोटी लड़की।

आज भी जो प्रभुचरण को बापी कहती है। उसे ? वह जो कुछ कर सकती है प्रभुचरण की आँखों के आगे चित्र-सा उभर आया। अकस्मात् मुँह बना कर कहेगी, 'पिता जी, मजाक जरूर कर रहे हैं लेकिन सुन कर इच्छा हो रही है। सचमुच बापी, बहुत अच्छा लगता, अगर तुम हमारे साथ चलते। पर ऐसा होना संभव तो नहीं।'

अगर उस महान् मौके पर धाँय से प्रभुचरण कह बैठें—'संभव क्यों नहीं है ? घर के इस दरवाजे से घर के उस दरवाजे...'

तुरन्त नूक़ के पति बोल पड़ेंगे, 'ओ बापी ! नो-नो ! हम आप को अभी खोने के लिये तैयार नहीं हैं।'

हाँ, इसी कारण से।

प्रभुचरण के प्रियजन, कोई भी, उन्हे अभी खोने के लिये राजी नहीं हैं।...सदा सतर्क रह कर, जेल में बन्द रख कर उन्हे खोने से बचा रखा है, रखेंगे और जितने दिन संभव हो सकेगा !

फिर भी निर्लज्ज, प्रभुचरण ने, राजा से बच्चों की तरह अभिमान भरे स्वरों में कहा था, 'तुम लोग क्या ले जा रहे हो, क्या करोगे, यह सुन कर मैं क्या करूँगा ? मुझे तो तुम लोग ले नहीं जाओगे।'

गम्भीर प्रकृति के राजा ने भारी-भरकम आवाज़ में कहा, 'तुम तो बीमार हो।'

लेकिन उसके पास खड़े बबुआ ने उत्तर दिया था। ही-ही कर के हँस उठा था, 'तुम्हें ले जाने पर ? तुम तो जीभ निकाल कर मर जाओगे। फिर हम लोग मजा कैसे करेंगे ?'

× × ×

अतएव प्रभुचरण के पास सारे दिन के लिए नौकर बैठा कर, डॉक्टर को एक बार आ कर देख जाने के लिये कह कर, एक रमणीय प्रातःकाल दो गाड़ियाँ भर कर वे प्रभुचरण के स्वर्ग के उद्देश्य में चल दिये।

सिर्फ टिफिन कैरियर में हर तरह का खाद्य पदार्थ लिया हो, यही नहीं। है ट्राजिस्टर, रेकार्ड प्लेयर (लगभग झोला भर कर रेकार्ड सहित), ताश के पैकेट, राजा की आगामी परीक्षा की तैयारी के लिए पाठ्य-पुस्तकें, बबुआ का बैट बॉल, रंगीन चॉक।...और है दरी, कार्पेट, चद्दर, हरेक के लिए एक-एक कुशन (यह चीज हर समय कार में ही रहती है)...स्टोव, फ्लास्क, टी सेट, टार्च, 'फर्स्ट एड बॉक्स।' जंग लगे ताले को खोलने के लिये रिंच, प्लास, छुरी, हथौड़ी वगैरह।...

और लिया है खाना बनाने वाले को, जो बार-बार चाय बना कर पिलायेगा। और...और एक 'माल' भी साथ ली गई है—यह भी मालूम हुआ। नहीं ! किसी ने देखा नहीं, सुना भी नहीं।—यह सब अन्तिम क्षण में हुआ। यह 'माल' है शुभचरण की भावी वधू। वर्तमान काल में जो बान्धवी कहलाती है।

अच्छा ! प्रभुचरण तो एक सभ्य, वयस्क व्यक्ति हैं। तो फिर अपनी भावी वधू के लिये मन ही मन ऐसी बात क्यों कह रहे हैं ?

'माल'।

यह क्या मन में कही जाये, ऐसी बात है ?

जाते समय वे जैसे चाँदी की छड़ी से घर को छू गये। इसीलिये दोनों गाड़ियों के जाते ही घर जैसे सुप्तपुरी बन गया। कार स्टार्ट होते ही 'शब्द' का जो स्वाद मिला था वह हवा में विलीन हो गया। छा गई स्तब्धता।

बड़ी देर तक प्रभुचरण चौकन्ने रहे। शायद कहीं कोई आवाज हो, पर नहीं ! कहीं कुछ नहीं। अच्छा, क्या मधुप को भी वह लोग साथ ले गये हैं ? प्रभुचरण को बिल्कुल अकेला छोड़ गये हैं ? नहीं ऐसा नहीं हो सकता है। प्रभुचरण को अकेला छोड़ने

प्रभंजन ने हँस कर कहा था, 'तो कैसा काम कहने पर खुश होगे ? बम बनाओगे ?'

बाप रे, लड़के की दृष्टि कैसी अन्तर्भेदी है ? प्रभुचरण से छोटा ही होगा फिर भी उसकी हँसी, दृष्टि और प्रश्न के आगे प्रभुचरण काँपने लग जाता।

प्रभंजन की दृष्टि कोमल हुई। कहा—'यह मामूली काम नहीं है। बड़ी सावधानी से करना पड़ेगा। इस चिट्ठी को किसी फटी-पुरानी किताब में रखना। कालेज में घुसने से पहले मोड़ पर एक लड़का मिलेगा। वह नीली डोरिया, आधे बाँह की कमीज़ पहने होगा, सिर के बाल छोटे कटे होंगे, धोती भी ऊँची होगी—उसी से जा कर कहना—'यह रही किताब। ज़रा फट गई है, बँधवा लेना।' बस, लड़के को देकर चल देना। मुड़ कर देखना नहीं। और इस बात का ध्यान रखना कि तुम्हारे सिवाय कोई अन्य इस बात को न जान पाये। बिल्कुल भूल जाना होगा कि तुमने ऐसा कुछ किया था। याद रहेगा न ? बिल्कुल भूलना होगा। इस पत्र को, उस लड़के को बिल्कुल मन से मिटाना है।'

प्रभुचरण ने गर्दन हिला कर हामी भरी।

उसने काम किया लेकिन अन्तिम बात को न निभा सका। रात को जैसे ही दोनों भाई सोने गये, कमरे का दरवाज़ा बन्द करके विभू की चारपाई पर जा पहुँचा प्रभु और शुरू से आखीर तक सारी बातें बता दी।

विभू ने सारी बातें शान्त रह कर सुनीं, लेकिन बात खत्म होते ही भयंकर रूप से गरज उठा, 'फिर भी तुमने मुझे यह बात बताई ?

प्रभु हत्वाक् हुआ। आश्चर्य से बोला, 'तुझे नहीं कहूँगा ?'

'क्यों ? मुझे क्यों बताओगे ? मन से खत्म करने की बात थी न ?'

'पर तुझे बताने में कौन सा हर्ज है ?' प्रभुचरण हँसा था—'धत् !'

पर विभूचरण ने उसी कठोरता के साथ कहा था, 'मैं जानता था कि तुमसे नहीं हो सकेगा। फिर भी एक बार कोशिश किया था। नहीं हुआ।....अब क्या करोगे ? क्लास में सभी को चुपके-चुपके कहते फिरोगे ?'

दुःख और अपमान से प्रभुचरण की आँखें भर आईं। भर्राई आवाज़ में बोला—'सबसे कहूँगा ?'

'अगर मन से भुला न सकोगे तो और क्या करोगे ? अभी तो कहा न....'

'तुझसे कहने में और अन्य से कहने में कोई फर्क नहीं है ?'

प्रभुचरण आगे कुछ न कह सके।

विभूचरण ज़रा-सा नरम पड़ा—'इसमें ये या वह का प्रश्न नहीं उठता है। अपनी अन्तरात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी को मालूम नहीं होना चाहिये।'

अचानक मूर्खों की तरह प्रभुचरण कह बैठे—'तू भी तो मेरी अन्तरात्मा है....'

अब तक विभू उत्तेजित-सा बिस्तर पर बैठा था, अब धप् से बिस्तर पर लेट गया। खुली आवाज से हँसते हुए बोला—'नहीं, तुम कुछ नहीं कर सकोगे भइया; तुम

की समस्या पर काफ़ी देर तक बहस होती सुना था उन्होंने। लगभग पिछले दो दिनों से—

'ऐसा कैसे हो सकता है?' 'यह भी कहीं सम्भव है?' 'नहीं, नहीं, अचानक तबियत को क्या हो जाये, कोई कुछ कह नहीं सकता।'—जैसी बातें सुनाई पड़ रही थीं।.... बुढ़ापे की कुटिलता है और क्या? उन्हें लगा, यह सारी बातें उन्हें सुना कर कही जा रही हैं। वे लोग प्रभुचरण को थोड़ी देर के लिये भी अकेला छोड़ना नहीं चाहते हैं, उनके लिये चिन्तित हैं, यह बात अगर प्रभुचरण को मालूम नहीं हुई तो फायदा ही क्या हुआ?

शास्त्रों में बुढ़ापे का दूसरा नाम शैशव है। कुछ-कुछ बाहर प्रकट भी हो जाता है, जिद्द करने, आत्मकेन्द्रित रहने से। लेकिन सरलता? इस मामले में शिशु से कोस भर दूर! आजीवन काल की अभिज्ञता की फसल कट जाने पर जो कुछ खर-पतवार बच जाता उसमें कटुता समाई रहती है। इसीलिये तो प्रभुचरण के मन में भी कुटिल चिंता जाग रही है। सिर्फ अभी क्यों, ऐसा ही हर समय हुआ करता है।

सदैव इनका प्यार 'दिखावा' लगता है, श्रद्धा-भक्ति देख कर 'सौजन्यता' का ध्यान आयेगा और चिन्ता, परेशानी, उतावलापन 'अभिनय' के अलावा और क्या है?

देवू चाचा के घर रहने वाला वह सरल, सीधा-साधा लड़का अब कहाँ खो गया है? जिसे उसका छोटा भाई, मजाक में कहा करता था, 'तुम भइया, कुछ न कर सकोगे। तुम अपने 'विश्वप्रेम' और विश्वास को लेकर किसी मठ में जा कर रहो। तुम्हें भी शान्ति मिलेगी, दूसरों को भी।'

'दूसरों को शान्ति मिलेगी', यह बात एक बार दिल पर चोट की तरह बज उठी थी।

विभू का स्वाधीनता-संग्राम का गुरु था, उसके कालेज का एक लड़का। लगभग हमउम्र, सहपाठी भी था। उसका नाम भी 'प्रभु' था। यद्यपि पूरा नाम 'प्रभंजन' था।

उसी प्रभंजन ने एक दिन प्रभुचरण को बुलाया (शायद विभू के कहने पर)। कहा, 'तुम्हें एक काम सौंपूंगा—कर सकोगे?'

तरुण प्रभुचरण उत्तेजित हो कर बोल उठा था—'अवश्य'।

'गुड।'

उसके बाद प्रभंजन ने जरा हँस कर कहा था, 'मैं तो तुम्हें मित्र कह सकता हूँ न? हम लोगों का नाम मिलता है—हम मित्र हुये।'

प्रभुचरण उस उज्ज्वल तीव्रदृष्टि लड़के की तरफ देख कर गदगद हो गया। फिर बोला, 'अवश्य।'

प्रभंजन भी दोबारा हँस कर बोला,—'ठीक है। यह चिट्ठी दे रहा हूँ, इसे किताब के बीच में रख कर ले जाना। एक लड़के को देना है।'

निराश होकर प्रभुचरण बोला—'यह ऐसा कौन सा बड़ा काम है?'

प्रभंजन ने हँस कर कहा था, 'तो कैसा काम कहने पर खुश होगे ? बम बनाओगे ?'

बाप रे, लड़के की दृष्टि कैसी अन्तर्भेदी है ? प्रभुचरण से छोटा ही होगा फिर भी उसकी हँसी, दृष्टि और प्रश्न के आगे प्रभुचरण काँपने लग जाता।

प्रभंजन की दृष्टि कोमल हुई। कहा—'यह मामूली काम नहीं है। बड़ी सावधानी से करना पड़ेगा। इस चिट्ठी को किसी फटी-पुरानी किताब में रखना। कालेज में घुसने से पहले मोड़ पर एक लड़का मिलेगा। वह नीली डोरिया, आधे बाँह की कमीज़ पहने होगा, सिर के बाल छोटे कटे होंगे, धोती भी ऊँची होगी—उसी से जा कर कहना—'यह रद्दी किताब। ज़रा फट गई है, बँधवा लेना।' बस, लड़के को देकर चल देना। मुड़ कर देखना नहीं। और इस बात का ध्यान रखना कि तुम्हारे सिवाय कोई अन्य इस बात को न जान पाये। बिल्कुल भूल जाना होगा कि तुमने ऐसा कुछ किया था। याद रहेगा न ? बिल्कुल भूलना होगा। इस पत्र को, उस लड़के को बिल्कुल मन से मिटाना है।'

प्रभुचरण ने गर्दन हिला कर हामी भरी।

उसने काम किया लेकिन अन्तिम बात को न निभा सका। रात को जैसे ही दोनों भाई सोने गये, कमरे का दरवाज़ा बन्द करके विभू की चारपाई पर जा पहुँचा प्रभु और शुरू से आखीर तक सारी बातें बता दीं।

विभू ने सारी बातें शान्त रह कर सुनीं, लेकिन बात खत्म होते ही भयंकर रूप से गरज उठा, 'फिर भी तुमने मुझे यह बात बताई ?

प्रभु हतवाक् हुआ। आश्चर्य से बोला, 'तुझे नहीं कहूँगा ?'

'क्यों ? मुझे क्यों बताओगे ? मन से खत्म करने की बात थी न ?'

'पर तुझे बताने में कौन सा हर्ज है ?' प्रभुचरण हँसा था—'धत् !'

पर विभूचरण ने उसी कठोरता के साथ कहा था, 'मैं जानता था कि तुमसे नहीं हो सकेगा। फिर भी एक बार कोशिश किया था। नहीं हुआ।....अब क्या करोगे ? क्लास में सभी को चुपके-चुपके कहते फिरोगे ?'

दुःख और अपमान से प्रभुचरण की आँखें भर आईं। भर्राई आवाज़ में बोला—'सबसे कहूँगा ?'

'अगर मन से भुला न सकोगे तो और क्या करोगे ? अभी तो कहा न....'

'तुझसे कहने में और अन्य से कहने में कोई फर्क नहीं है ?'

प्रभुचरण आगे कुछ न कह सके।

विभूचरण ज़रा-सा नरम पड़ा—'इसमें ये या वह का प्रश्न नहीं उठता है। अपनी अन्तरात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी को मालूम नहीं होना चाहिये।'

अचानक मूर्खों की तरह प्रभुचरण कह बैठे—'तू भी तो मेरी अन्तरात्मा है....'

अब तक विभू उत्तेजित-सा बिस्तर पर बैठा था, अब धप् से बिस्तर पर लेट गया। खुली आवाज़ से हँसते हुए बोला—'नहीं, तुम कुछ नहीं कर सकोगे भइया; तुम

की समस्या पर काफी देर तक बहस होती सुना था उन्होंने। लगभग पिछले दो दिनों से—

'ऐसा कैसे हो सकता है?' 'यह भी कहीं सम्भव है?' 'नहीं, नहीं, अचानक तबियत को क्या हो जाये, कोई कुछ कह नहीं सकता।'—जैसी बातें सुनाई पड़ रही थीं।.... बुढ़ापे की कुटिलता है और क्या? उन्हें लगा, यह सारी बातें उन्हें सुना कर कही जा रही हैं। वे लोग प्रभुचरण को थोड़ी देर के लिये भी अकेला छोड़ना नहीं चाहते हैं, उनके लिये चिन्तित हैं, यह बात अगर प्रभुचरण को मालूम नहीं हुई तो फायदा ही क्या हुआ?

शास्त्रों में बुढ़ापे का दूसरा नाम शैशव है। कुछ-कुछ बाहर प्रकट भी हो जाता है, जिद् करने, आत्मकेन्द्रित रहने से। लेकिन सरलता? इस मामले में शिशु से कोस भर दूर! आजीवन काल की अभिज्ञता की फसल कट जाने पर जो कुछ खर-पतवार बच जाता उसमें कटुता समाई रहती है। इसीलिये तो प्रभुचरण के मन में भी कुटिल चिंता जाग रही है। सिर्फ अभी क्यों, ऐसा ही हर समय हुआ करता है।

सदैव इनका प्यार 'दिखावा' लगता है, श्रद्धा-भक्ति देख कर 'सौजन्यता' का ध्यान आयेगा और चिन्ता, परेशानी, उतावलापन 'अभिनय' के अलावा और क्या है?

देवू चाचा के घर रहने वाला वह सरल, सीधा-साधा लड़का अब कहाँ खो गया है? जिसे उसका छोटा भाई, मजाक में कहा करता था, 'तुम भइया, कुछ न कर सकोगे। तुम अपने 'विश्वप्रेम' और विश्वास को लेकर किसी मठ में जा कर रहो। तुम्हें भी शान्ति मिलेगी, दूसरो को भी।'

'दूसरों को शान्ति मिलेगी', यह बात एक बार दिल पर चोट की तरह बज उठी थी।

विभू का स्वाधीनता-संग्राम का गुरु था, उसके कालेज का एक लड़का। लगभग हमउम्र, सहपाठी भी था। उसका नाम भी 'प्रभु' था। यद्यपि पूरा नाम 'प्रभंजन' था।

उसी प्रभंजन ने एक दिन प्रभुचरण को बुलाया (शायद विभू के कहने पर)। कहा, 'तुम्हें एक काम सौंपूंगा—कर सकोगे?'

तरुण प्रभुचरण उत्तेजित हो कर बोल उठा था—'अवश्य'।

'गुड।'

उसके बाद प्रभंजन ने जरा हँस कर कहा था, 'मैं तो तुम्हें मित्र कह सकता हूँ न? हम लोगों का नाम मिलता है—हम मित्र हुये।'

प्रभुचरण उस उज्ज्वल तीव्रदृष्टि लड़के की तरफ देख कर गदगद हो गया। फिर बोला, 'अवश्य।'

प्रभंजन भी दोबारा हँस कर बोला,—'ठीक है। यह चिट्ठी दे रहा हूँ, इसे किताब के बीच में रख कर ले जाना। एक लड़के को देना है।'

निराश होकर प्रभुचरण बोला—'यह ऐसा कौन सा बड़ा काम है?'

प्रभंजन ने हँस कर कहा था, 'तो कैसा काम कहने पर खुश होगे ? बम बनाओगे ?'

बाप रे, लड़के की दृष्टि कैसी अन्तर्भेदी है ? प्रभुचरण से छोटा ही होगा फिर भी उसकी हँसी, दृष्टि और प्रश्न के आगे प्रभुचरण काँपने लग जाता।

प्रभंजन की दृष्टि कोमल हुई। कहा—'यह मामूली काम नहीं है। बड़ी सावधानी से करना पड़ेगा। इस चिट्ठी को किसी फटी-पुरानी किताब में रखना। कालेज में घुसने से पहले मोड़ पर एक लड़का मिलेगा। वह नीली डोरिया, आधे बाँह की कमीज़ पहने होगा, सिर के बाल छोटे कटे होंगे, धोती भी ऊँची होगी—उसी से जा कर कहना—'यह रही किताब। ज़रा फट गई है, बँधवा लेना।' बस, लड़के को देकर चल देना। मुड़ कर देखना नहीं। और इस बात का ध्यान रखना कि तुम्हारे सिवाय कोई अन्य इस बात को न जान पाये। बिल्कुल भूल जाना होगा कि तुमने ऐसा कुछ किया था। याद रहेगा न ? बिल्कुल भूलना होगा। इस पत्र को, उस लड़के को बिल्कुल मन से मिटाना है।'

प्रभुचरण ने गर्दन हिला कर हामी भरी।

उसने काम किया लेकिन अन्तिम बात को न निभा सका। रात को जैसे ही दोनों भाई सोने गये, कमरे का दरवाज़ा बन्द करके विभू की चारपाई पर जा पहुँचा प्रभु और शुरू से आखीर तक सारी बातें बता दीं।

विभू ने सारी बातें शान्त रह कर सुनीं, लेकिन बात खत्म होते ही भयंकर रूप से गरज उठा, 'फिर भी तुमने मुझे यह बात बताई ?

प्रभु हतवाक् हुआ। आश्चर्य से बोला, 'तुझे नहीं कहूँगा ?'

'क्यों ? मुझे क्यों बताओगे ? मन से खत्म करने की बात थी न ?'

'पर तुझे बताने में कौन सा हर्ज है ?' प्रभुचरण हँसा था—'धत् !'

पर विभूचरण ने उसी कठोरता के साथ कहा था, 'मैं जानता था कि तुमसे नहीं हो सकेगा। फिर भी एक बार कोशिश किया था। नहीं हुआ।....अब क्या करोगे ? क्लास में सभी को चुपके-चुपके कहते फिरोगे ?'

दुःख और अपमान से प्रभुचरण की आँखें भर आईं। भर्राई आवाज़ में बोला—'सबसे कहूँगा ?'

'अगर मन से भुला न सकोगे तो और क्या करोगे ? अभी तो कहा न....'

'तुझसे कहने में और अन्य से कहने में कोई फर्क नहीं है ?'

प्रभुचरण आगे कुछ न कह सके।

विभूचरण ज़रा-सा नरम पड़ा—'इसमें ये या वह का प्रश्न नहीं उठता है। अपनी अन्तरात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी को मालूम नहीं होना चाहिये।'

अचानक मूर्खों की तरह प्रभुचरण कह बैठे—'तू भी तो मेरी अन्तरात्मा है....'

अब तक विभू उत्तेजित-सा बिस्तर पर बैठा था, अब धप् से बिस्तर पर लेट गया। सूनी आवाज़ में हँसते हुए बोला—'नहीं, तुम कुछ नहीं कर सकोगे भइया; तुम

जा कर मठ-वठ में नाम लिखा लो। तुम्हें भी शान्ति मिलेगी, अन्य को भी।'

फिर भी...

बाद में उन्हीं लोगों के पीछे-पीछे प्रभुचरण काफी दिनों तक घूमे थे। उन लोगों ने प्रभुचरण से काम भी करवाया था (जिसकी वजह से आज उनके लड़के अपने पिता को 'स्वाधीनता संग्राम के आत्मत्यागी सैनिक' कह रहे हैं। दस्तखत करने के लिए कह रहे हैं) पर तब विभू कहाँ था?

बेचारा!

'शहीदों की मौत' उसके भाग्य में न थी। नितान्त व्याधि का आक्रमण था, उसी से मृत्यु हुई थी। और प्रभुचरण यह सोच कर जी-जान लड़ा कर परिश्रम करते रहे कि 'विभू का अधूरा काम कर रहा हूँ' 'विभू ऊपर से देख रहा होगा' सोच कर।

वही सरलविश्वासी मन प्रभुचरण का कहाँ खो गया?....अब प्रभुचरण सदैव मनुष्य के 'अपनेपन' पर सन्देह करते हैं। कोई भी कुछ करता, लगता 'दिखावा' कर रहे हैं। कोई कुछ कहता, लगता सभी बनावटी है।

हो सकता है, एक ही दिन में इतना सब नहीं हुआ। तिल-तिल कर के हुआ है। शायद निजी असहायता, अक्षमता ने उन्हें इतना विरूप कर दिया है। अभी हाल ही के 'सरकारी भत्ता अदायगी' के मामले ने तो रही-सही श्रद्धा का भी गला घोंट दिया है।

जबकि यह जगत् तो स्वाभाविक है, साधारण है। मनुष्य तो ऐसा ही होता है। मनुष्य में दोष-गुण, अच्छा-बुरा, तुच्छता-उच्चता, लोभ-त्याग—सभी तो होता है।

प्रभुचरण अगर इस परम वास्तविकता को अस्वीकार कर, मनुष्य का एक आदर्शरूप देखना चाहें तो उन्हें निराशा नहीं होगी क्या?

वनशोभा भी तो यही कहती थी। नौकरी के दिनों में कभी-कभी कर्मचारियों के आचरण या रीति-नीति के कारण आहत होते तो वनशोभा हमेशा समझाती—'सब तुम्हारी तरह ईमानदार होंगे ऐसी उम्मीद क्यों करते हो, जी? मनुष्य हाड़-मांस का बना है, सोना-चाँदी का नहीं।'

वनशोभा का जीवनदर्शन हल्का था।

इसीलिए जीवन फूल-सा हल्का भी था।

लेकिन हर तरफ इतनी स्तब्धता क्यों है? क्या आदमी क्या भाग खड़ा हुआ है? शायद सब कुछ ले लिवा कर....डर-सा लगा।

प्रभुचरण क्या महाराज को चिल्ला कर पुकारें? डाँटें? कहें क्या, 'भइया ने तुझे क्या पड़े-पड़े सोने को कहा है?'

पर चिल्लाने तक की एनर्जी नहीं है। चुपचाप आँखें बन्द किये पड़े रहे। इसके विपरीत अपनी इच्छाशक्ति के बल पर चल दिये उन दो गाड़ियों के साथ-साथ।

दोनों कारें चली हैं, प्रभुचरण की इच्छा भी चल रही है। मैदान, रास्ता, पेड़-पौधे पार कर, नदी-नाले लाँघने, आ कर रुके उस घर के सामने, जिसके सामने ही दो प्लास्टर निकले मोटे-मोटे खम्भे थे, जो कभी घर की शोभा बढ़ाते थे। बाहर का बरा-

मदा इन्हीं खम्भों पर टिका था। प्लास्टर निकला है इसीलिए अन्दर से ईंटें झांक रही हैं जो पतली-पतली हैं।

बारामदे पर पहुँचते ही लेकिन दूसरा ही चित्र दिखाई देता है। बस, वही खम्भे दोनों रह गये हैं गृहस्वामी के खर्चीलेपन की निशानी स्वरूप।

कौन गृहस्वामी? चैतन्यचरण?

नहीं! यह घर तो उनका पैतृकघर था।

यह मकान प्रभुचरण के दादाजी ने बनवाया था।

जब वनशोभा को पहली बार यह घर दिखलाने ले गये थे प्रभुचरण, तब वनशोभा अभिभूत सी हो गई थीं। और शिकायती लहजे में बोली थी, 'यह इतनी जमीन, इतने पेड़-पौधे, इतना बड़ा मकान, सब तुम्हारा अपना है? तुमने इसे ऐसे लापरवाही से फेंक रखा है? आश्चर्य है? इतनी सम्पत्ति....'

वहाँ से लौटने के बाद, उस सम्पत्ति के बारे में तरह-तरह की योजनायें बनाने लगी। किस जगह मरम्मत की जरूरत है, कहाँ जरा परिवर्तन करने से 'मार कटारी' सा हो जायेगा, बारामदे का एक हिस्सा घेर कर सलग्न बाथरूम बनाया जा सकता है, कभी-कभी जा कर रहा जाये तो बढ़िया रहेगा, ऐसी अनेक बातें, अनेक कल्पनायें। और वहाँ जा कर यदा-कदा रहने में हर्ज क्या है? लोग पैसे खर्च कर के—यहाँ-वहाँ चेंज पर जाते हैं। कितना खर्च होगा सोच कर परेशान होते हैं। कहाँ ठहरेंगे, यह भी एक चिन्ता का कारण होता है। यह तो अपना घर है...चारों तरफ बाग-बगीचे, तालाब, कुआँ।

'कुआँ चाचा ने खुदवाया था।'

प्रभुचरण ने बताया था।

वनशोभा ने लम्बी सांस खींची, 'बेचारों के अगर एक भी लड़का-लड़की रहते।'

'रहते तो क्या गाँव में पड़े रहते?'

असन्तुष्ट हो कर वनशोभा बोली, 'पड़े क्यों रहते? यहाँ रह कर डेली पैसेंजरी भी तो कर सकते थे।'

बड़ी व्याकुल होती थी वनशोभा। अकसर पूछती—'क्यों जी, तुमने गाँव के मकान के बारे में क्या सोचा है?'

प्रभुचरण उनकी योजनाओं से उत्साहित न होते हों ऐसा नहीं था। हर बार कहते, 'इस बार तैयारी कर के हाथ लगाऊँगा। अभी नहीं।'

पर वह 'लगना' हुआ कहाँ? अधिकांश गृहस्थ आदमी का जो हाल हुआ करता है, वही। रुपये का इन्तजाम होता तो समय नहीं, समय मिलता तो रुपया नहीं। धीरे-धीरे उत्साह ही खत्म हो गया, स्मृति धुंधली पड़ गई।

जबकि 'गाँव के घर' के साथ सेण्टीमेण्ट्स जुड़े रहते हैं। फिर भी कहाँ कुछ हो पाता है? प्रयोजन और दैनिक कामों के चक्कर में वह मीठी अनुभूति धुंधली पड़ते-पड़ते मिट जाती है।....फिर भी एक बार जबरदस्ती वनशोभा वहाँ गई थी। कब गई थीं?

पड़ता है। हालांकि ये देवी, कभी-कभी रूप बदल कर, अँधेरे में पिछली चोर गली से भी घुस आने जैसा मज़ाक कर बैठती हैं। तब परिश्रम करने की जरूरत नहीं रहती। बाढ के पानी सा, पैसा घर आने लगता है। परन्तु उस चोर-गली का पता प्रभुचरण जैसे लोगों को कहां मिलेगा ? इन्हे तो मेहनत करके ही देवी के आने के लिए रास्ता बनाना पड़ता है।

हालांकि उन दिनों भी 'पूरी तनखाह आधा काम' के नारे लगते थे। प्रभुचरण तो हमेशा ही सुना करते थे कि सरकारी दफ्तरों में वही मेहनत करता है जो गधा होता है। दस बजे आकर, कुर्सी की पीठ पर कोट लटकाया और सारी दोपहर साली के यहाँ, मामा के घर घूमते रहे, गप्पें हांकते रहे। या फिर खेल के मैदान का चक्कर लगा कर साढ़े चार बजे आकर कुर्सी पर बैठे। पाँच बजे फाइलें सजा-सँवार कर रखी और खड़े हो गये। ऐसा आदमी ही 'बुद्धिमान' कहलाता है। क्यों नहीं ? अन्त तक पूरे माह का वेतन तो मिलेगा ही। इसके अतिरिक्त जीवन के अन्तिम दिनों तक पेंशन की गारंटी भी है। और प्रोमोशन की सीढ़ी ? वह भी तो 'रूल' के नियमानुसार। सिनियरिटी भी तो एक बात है।

फिर ?

फिर कोई क्यों गधे की तरह मेहनत करे ?

पर यह सुख प्रभुचरण के भाग्य में तो था नही। तब देश पराधीन था। प्रभुचरण के मतानुसार सरकारी नौकरी 'अछूतों के समान' थी।...इसीलिये शुरू में बडे बाजार की 'गद्दी' से लेकर नाना प्रकार के गैर सरकारी, व्यावसायिक दफ्तरों का चक्कर लगाने के बाद उन्होंने एक रास्ता चुन लिया था। स्वाधीन व्यवसाय।

स्वदेशी दियासलाई से लेकर स्वदेशी कैंची-चाकू तक बनाया उन्होने। अंत मे एक प्रेस खोल बैठे।

देवूचाचा की कही, एक-एक बात, प्रभुचरण को जीवन भर याद रही। देवूचाचा ने हँस-हँस कर कहा था—

'एक तरफ हाथी और एक तरफ मच्छर। लड़ाई में हार-जीत तो मानी बात है। बेकार ही में पढ़ाई-लिखाई छोड़ कर....'

विभू आग की तरह भक् से जल उठा था—'करोड़ो मच्छर अगर मिल कर डंक मारेंगे तो हाथी भी मरेगा।'

देवूकाका फिर हँसे, 'अगर मिलें' तब न। चलो माना कि हिंसा, अहिंसा, जिस किसी भी तरह से स्वराज्य मिला। पर उस हाथों में आये राज्य के सुरक्षित रखने की शिक्षा तो पग-पग पर लेनी पड़ेगी।...हम तो तिल-तिल के लिए दूसरों का मुख ताकते हैं। स्वयं सम्पूर्ण हों ऐसा कोई प्लॉन है क्या ? आज मे ही 'काम का आदमी' बनाओ फिर। जानते हो न, हमे अपनी फटी कथरी तक उनकी बनाई सूई से सिलानी पड़ती है।'

और भी बातें कहते थे वे। 'हाथों में सत्ता रहना ही सब कुछ नहीं है। शासन करने की क्षमता रहनी चाहिये। वरना 'क्षमता' बन जायेगी बन्दर के हाथ लगी कल्छुल।'

हालांकि तब कोई भी मन से विश्वास ही कहाँ करता था कि सचमुच ही वह आश्चर्य-जनक कल्पनातीत घटना घटित भी होगी। देश स्वाधीन भी होगा कभी। देवूचाचा तो बिल्कुल विश्वास नहीं करते थे। कहते थे यह अवास्तविक बात है। परन्तु बीच-बीच में यह भी कहा करते थे, 'एक लड़के को पाल कर बड़ा कर लूंगा तब दूसरे को पालूंगा कहने मे कही काम चलता है ? दोनों को साथ-साथ पाल कर बड़ा करना पड़ता है। पराधीनता के विरुद्ध लड़ाई चल रही है, चले। अन्दर ही अन्दर इस पर भी विचार करते चलना है कि स्वाधीन हुए तो कौन सा रास्ता अपनायेंगे ?'

सिर्फ प्रभु-विभू को कहते हो, ऐसा नही था। उनके यहाँ तो बहुत तरह के लोग रहते थे....तरह-तरह की उम्र के, जिनकी अलग राय थी। इसीलिये नाना प्रकार की बातें हुआ करती थीं।

हिन्दू समाज के आचार-व्यवहार के पीछे सामाजिक कुसंस्कार के पक्ष-विपक्ष में, ब्राह्म समाज और इसी तरह की अन्य संस्थाओ के पक्ष-विपक्ष में बहस हुआ करती। 'वैष्णव' और 'ब्राह्मण' शब्दो की महिमा पर भी प्रकाश डाला जाता। तीव्र उत्तेजना-वश मतभेद होता। केवल गृहस्वामी ही इन सारी घटनाओं को शान्त भाव से बैठे-बैठे देखा करते। कभी कुछ कहते तो बड़ी उदासता से।

बाद में, बहुत बार सोचा था प्रभुचरण ने—उस शान्ति का स्रोत क्या है ? मैं क्यो इतना बेचैन रहता हूँ ? विशेष रूप से जब पृथ्वी पर पाँव जमाने की चेष्टा कर रहे हैं, भविष्य की चिन्ता कर रहे हैं।....उस 'स्वय सम्पूर्णता' शब्द पर भी कम विचार नहीं किया है। पहली बार दियासलाई के लिए जमा-पूँजी नष्ट हो गई। दूसरी बार छुरी-चाकू ने भी घायल कर दिया। तीसरा प्रयास था मिट्टी के तेल वाला लेम्प। बिल्कुल नए ढंग का। कम तेल और ज्यादा देर तक जलने वाला। जला। लेकिन दूसरो के घर....अपने यहाँ तो लाल बत्ती जल गई।....बाद में यह प्रेस,....जिससे लक्ष्मी घर आई। पर उनके प्रताप के आगे गृहलक्ष्मी फीकी पड़ गई! पत्नी की तरफ देखने तक का समय न रहा।

प्रभुचरण सोचते, चलो इतने दिनो में वनशोभा की तकलीफें कम हुई। बहुत अभाव, खींचातानी, बुरे दिनों की साथी हैं वनशोभा। उनके लिए दिल में माया थी,

ममता थी। उनका कष्ट कम हुआ, सोच कर निश्चिन्त हुये थे। ध्यान नया मकान बनाने में लगा बैठे।

लड़कों का भविष्य! अपने दो जनों का निश्चिन्त, सुखी जीवन। उसके लिए रात-दिन मेहनत करनी पड़ेगी।

इसीलिए अगर वनशोभा निराश होकर कहतीं—'इससे तो मैं कहीं ज्यादा सुखी थी उस कालीघाट वाले घर में, जब दफ्तर जाते थे। एक नियमानुसार गृहस्थी चलती थी'....प्रभुचरण इसे स्त्रियोचित व्यर्थ का सेण्टीमेण्ट सोचकर मन ही मन हँसते थे।

कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि बाद में दो जनों का वह निश्चिन्त सुखी जीवन—कभी अगर न आए ?....तब तो वनशोभा को समझाया करते थे, 'देखो न, जरा सँभल लूँ तब प्रेस बेच दूँगा। कितने लोग खरीदना चाहते हैं....काफी रुपयों का ऑफर आ रहा है।'

वनशोभा कहतीं—'ऐसा ही करो न जी। घर बन गया। बेटे की शादी भी हो गई। दोनों अपने पाँव पर खड़े हो चुके हैं। अब चलो, तुम्हारी जमापूँजी बैंक में रख कर हम दोनों बूढ़े-बूढ़ी तीर्थ के बहाने यहाँ-वहाँ घूमें। अब गृहस्थी में फँसे रहने की जरूरत क्या है ?'

इस पर प्रभुचरण बिगड़ जाते।

कहते, 'और यह जो इतना छानबीन कर ताखों वाला रसोई घर, भण्डार घर बनवाया ?'

'बहू तो आ गई है। उसकी सुविधा का इन्तजाम कर दिया है।'

'ओह ! तो यह सब उसी की सुविधा के लिए किया है ?'

वनशोभा माथे पर आ गए छोटे-छोटे बालों को हटाते हुए कहतीं—'क्यों नहीं ? तुम खुद ही हमेशा कहते रहे कि मैं इतनी मेहनत लड़कों का भविष्य सोच कर कर रहा हूँ। मकान इसलिए बना रहा हूँ ताकि वे मारे-मारे न फिरें। फिर ? लड़का माने ही तो बहू।'

प्रभुचरण उत्तर न ढूंढ पाते। फिर भी कहते, 'पर अभी इस 'बच्ची सी बहू' के कन्धों पर गृहस्थी का बोझ डाल कर तुम तीर्थ करने चल दोगी ?'

वनशोभा उत्तर देती, 'यह लड़की मुझसे कहीं ज्यादा निपुण है। बहुत अक्ल है उसमें।'

फिर भी प्रभुचरण चिढ़ जाते। सोचते, बेकार का बचपना और पागलपन है यह सब।

'अभी तो प्रेस से काफी पैसा आ रहा है, अभी क्यों बेच दूँ ?...बाद में अच्छे दाम मिले तो....'

परन्तु वही प्रेम बेच डाला प्रभुचरण ने कुछ दिनों बाद। और इतने कम दामों पर। पर इससे वनशोभा का क्या बनता-बिगड़ता है? वह तो तब प्रभुचरण को 'अँगूठा दिखा कर' सरक चुकी थीं।

कितनी बार सोचा करते प्रभुचरण, तब क्यों इतना मोह था प्रेस पर और उस कमरे पर? बेचने की बात सोचते तो हृदय दुखी हो उठता।....सुबह-सुबह उस कमरे में घुसते तो खुशी से मन भर उठता था।....उसी को इतनी आसानी से बेच डाला बल्कि लगा कि बोझ हल्का हो गया।

'मूल्य आंकने' की समझ कहाँ रहती है?

इस बात का पहले भी ध्यान आया था जब देश स्वाधीन हुआ था।

आश्चर्य से सोचा था प्रभुचरण ने, उतनी खुशी क्यों नहीं हो रही है? क्यों नहीं इच्छा हो रही है चिल्लाने को, 'हम स्वाधीन हैं' 'हम स्वाधीन हैं ?'

विभू रहता तो क्या वह खुशी महसूस होती? उसके माध्यम से स्वाधीनता का स्वाद ग्रहण करते?

इसके अर्थ हुए हम लोग कोई भी स्वयं सम्पूर्ण नहीं हैं। हमारा सुख-दु.ख, खुशी की अनुभूति का तार, दूसरे किसी यन्त्र में बँधा रहता है।... बस, अन्तर इतना ही है कि उस समय पता नहीं चलता है।....

प्रभुचरण तब क्या वनशोभा को इस दृष्टि से देखते थे? तब क्या कभी समझने की कोशिश की थी कि वनशोभा उनका जरा-सा साथ पाने के लिए बेचैन हैं? कभी क्या सोचा था कि उनको खो कर प्रभुचरण स्वयं कंगाल हो जायेंगे? सिर्फ अपना ही अस्तित्व नहीं ले गई हैं, प्रभुचरण के अस्तित्व का एक बडा भाग साथ लेती गई हैं।

इसीलिए तो लगता नहीं है कि स्वयं वही प्रभुचरण है? वनशोभा के जाने के बाद भी तो प्रभुचरण स्वस्थ थे? अब हार्ट अटैक हो जाने से दूसरों के चंगुल मे फँस गए हैं।

नीलकान्तपुर के मकान का चक्कर लगाते-लगाते प्रभुचरण खो से गए। शायद झपक गए। वरना स्वप्न कैसे देखते?

स्वप्न न होता तो वनशोभा कैसे आकर उनके पलंग के पास खड़ी हो जातीं?

वनशोभा का चेहरा बिल्कुल वैसा ही है। वैसा ही हँसता चेहरा, वही बच्चों की तरह माथे पर बिखरे छोटे-छोटे बाल।

बोलीं, 'अब यहाँ पड़े-पड़े क्या कर रहे हो? चलो न वहाँ!'

प्रभुचरण को न जाने क्या हुआ, अचानक डर गए। इसीलिए उत्तेजित स्वर में बोले, 'ये लोग कोई हैं नहीं....अचानक इस समय कैसे जा सकता हूँ ?'

वनशोभा के चेहरे पर कौतुकपूर्ण हँसी थी। ज़रा झुक कर बोली,''यही तो मौका है। ये लोग रहेंगे तो रोकेंगे। जाने नहीं देंगे। इसी वक्त, चुपचाप....'

प्रभुचरण और भी डरे और उत्तेजित हुए। बोले, 'इस तरह से घर खुला छोड़ कर कहीं जाया जा सकता है ?'

'तब फिर नहीं होगा,' कह कर हँसने लगीं वनशोभा और हँसते हुए हवा में अदृश्य हो गईं।

प्रभुचरण चिल्ला पड़े।

क्या कह कर चिल्लाए—यह याद नहीं।

क्या बोल उठे—'चलो चलो, चलता हूँ।'

या गुस्से में आकर बोले, 'गुस्सा क्यों हो रही हो ? नहीं जाऊँगा, यह कहाँ कह रहा हूँ। कह रहा हूँ, ये लोग आ जाएँ तब चलूँ।'

नहीं ! यह सब कुछ नहीं बोले थे प्रभुचरण।

सिर्फ 'नहीं-नहीं' कह कर चिल्लाए थे।

पर किस बात की 'नहीं' थी यह ?

मधु कमरे में आया। पूछा—'बाबाजी, आपने बुलाया ?'

उसके बाद पास आकर पंखा चलाते हुए बोला, 'अरे ! कितना पसीना निकला है ?'

उसकी आवाज सुन कर प्रभुचरण धन्य हो गए।

वे उठ कर, बैठ गए। ओफ् ! सच में कितना पसीना आया है। सुबह-सुबह इतना पसीना क्यों...

हार्ट के मरीज के लिए इतना पसीना निकलना तो अच्छी बात नहीं है। तो फिर क्या....

नौकर के मुँह की तरफ देख कर प्रभुचरण धन्य हुए। मन आशा आश्वासन से भर उठा। मानो वे मर रहे थे, कोई मृत्यु के मुँह से उन्हें छीन लाया हो।

आह् ! कैसी शान्ति है ?

जैसे पहले थे वैसे ही हैं।

वही कमरा, वही बिस्तर, वही शीशा, अलमारी, दराज, टेबिल, सोफा, चेयर।

प्रभुचरण इन सब के बीच ही में हैं। धीरे-धीरे बोले—'एक गिलास पानी तो देना।'

अति उत्साही बच्चे के हाथ में अगर 'गैस वाला बैलून' दे दो तो उसकी जैसी दशा होती है, वैसी ही दशा प्रभुचरण के लडके-लड़कियों की हुई। उनके अभिनव अभियान का परिणाम वही हुआ। गैस का बैलून आकाश में उड़ते-उड़ते फट् से खत्म हो गया।

बाद का चेहरा वही मरे चमगादड़-सा हो गया। दो गाड़ियाँ लौटी पर एक भी फाटक में नहीं घुसी। दोनों दो तरफ मुड़ गईं।

जबकि शुरुआत कितनी बढ़िया, लोभनीय थी।

अचानक जैसे अभियानकारियो के शरीर से कई वर्ष झड़ गए थे। और शुभ? वह तो अपने पारिवारिक पिकनिक में प्रिय सखी को ले आने की खुशी में हवा में तैर रहा था। लडकी तो पहले तैयार ही नहीं हो रही थी, फिर किसी तरह से कह-सुन कर.... जबकि न जाने कब, भीतर ही भीतर 'रेजिस्ट्री' हो चुकी है। अवस्था कितनी शोचनीय थी?

हालाँकि इस युग के युवक-युवती ऐसी घटनाएँ अनायास ही घटित कर बैठते है। और प्रतीक्षा करते रहते है, सु-दिन की। ये लोग भी यही कर रहे हैं। यूँ यह बात समझ में नहीं आ रही है कि 'सु-दिन' के रास्ते में बाधा कौन-सी है?

खैर—इस समय शुभ ने चंचल युवक की भूमिका ग्रहण की है। ड्राइवर सुखमय को हटा कर स्वयं ही कार हांक रहा है। वजह हो या बिलावजह ही हँस रहा था।

दो कार साथ-साथ चलते-चलते आगे-पीछे हो जाएँगी, यह तो स्वाभाविक है। तब आगे जाने वाले खिड़की से 'टाटा' की मुद्रा में पीछे वालों को अँगूठा दिखाते चल रहे थे।....फिर थोड़ी देर में पीछे वाले आगे हो जाते अँगूठा दिखा कर।....दोनों कारों से हँसी के फौव्वारे छूट रहे थे।

बच्चे दोनों अपनी-अपनी कार की विजय पर जोर से तालियाँ बजाते। हमेशा से गम्भीर राजा भी आज के इस खेल में हिस्सा ले रहा है। हिस्सा लिया होगा माँ-बाप के चेहरे पर बचपन का हाव-भाव देख कर। खास तौर से माँ। राजा ने अपनी माँ के चेहरे पर भाव-परिवर्तन होते बहुत कम देखा है। कभी-कभी ननिहाल जाने पर इस अन्तर को देखा है। राजा को लगा आज मानों माँ ननिहाल में हैं। माँ ने बच्चों की तरह कैडबेरी चॉकलेट का खाली पैकेट खिड़की से बाहर हवा में उड़ाते-उड़ाते छोड़ दिया। आश्चर्य की बात नहीं है यह?

और भी आश्चर्य की बात हुई। पिता ने माँ से होड़ लगा कर एक रुपए का

नोट ही इसी तरह उड़ा दिया। छोड़ते ही बोल उठे, 'चलो, आज किसी साले को एक रुपये का फ़ायदा हो गया।'

शुभ की भावी पत्नी के सामने, इस तरह के, युवकों जैसे चांचल्य का कोई कारण हो सकता है। यह बात 'राजा' क्या समझ सकता है। इसीलिए उसे आश्चर्य हो रहा था। साथ ही साथ वह खुश हो रहा था।

ऐसा तो कभी होता नहीं है।

यह बात यद्यपि टूलू के बेटे बबुआ के लिए कुछ नई नहीं थी। वह अधिकतर माँ-बाप को एक-सा ही देखता। उसकी माँ तो नाराज होने पर हाथ-पाँव पटकती हैं। खुश होने पर ताली बजाती हैं। किसी बात के लिए जिद् करतीं तो बबुआ की तरह ही उसे पाने के लिए जमीन-आसमान एक कर देती हैं। उस जिद् के पूरा होते ही दूसरी जिद् का बीज बो देती हैं!...लेकिन राजा के साथ यह बात नहीं है। राजा की माँ स्थिर, शान्त हैं। आत्मकेन्द्रित रहती हैं। उसकी इच्छा-अनिच्छा, अच्छा-बुरा समझने के लिए आँखें चाहिए। राजा जानता है कि उसकी माँ उससे बहुत बड़ी हैं। पिता के लिए भी यही भावना, यही दूरी, नीता ने ही उसके मन में बनाई है।

राजा कभी भी माँ-बाप के दाम्पत्य-जीवन की लीला का दर्शक नहीं था जैसा बबुआ था।

इसीलिए नीता भी यत्नपूर्वक और बड़ी कुशलता से राजा को बबुआ से बचा कर रखती थी। स्वाभाविक तो यही था कि दोनों बच्चे एक ही गाड़ी पर चढ़ते—दोनों बोलते-बोलते जाते....लेकिन नीता ने उस प्रश्न पर विचार तक करने का मौका नहीं दिया। जब सरित कुमार ने ऐसा प्रस्ताव पेश किया था, नीता ने हँस कर बात उड़ा दी। कहा था, 'दो कार पर दो महापुरुषों का रहना जरूरी है। *'यात्रापार्टी'* को चंगा रखना है कि नहीं?'

'यात्रापार्टी' नाम सरित कुमार ने रखा था। कार पर जब सामान रखा जा रहा था तब वह बोल उठा था, 'अरे बाप रे! यह तो बिल्कुल 'यात्रापार्टी' का सामान है। अच्छा, जब पार्टी यात्रा की है तब इसका नाम क्यों न रखा जाए 'दी न्यू तरुण यात्रापार्टी।'

यह खुशी का ज्वार यात्रा के समय काफी चढ़ा था। गाड़ी गाँव की तरफ बढ़ते ही रास्ते के किनारे रोक कर लाई-लावा खरीदा गया। गाँव की दूकान की गरम जलेबी, स्वाद में कैसी है, काफी मात्रा में खरीद कर देखा गया था। रास्ते की एक बाजार से ढेर सारा सिंघाड़ा खरीद कर दोनों गाड़ियों में बाँट लिया गया था।

सिंघाड़ा भी खाने की चीज है यह कभी किसने सोचा था? फ्रिज के ऊपर शौकीन टोकरी में जो फल हर वक्त मौजूद रहते हैं वह हैं सिंगापुरी केले, चुने हुए सेब, सन्तरे, मुसम्मी और कभी-कभी सफेदा पीच।

हार्ट के मरीज प्रभुचरण के लिए 'खीरा' जैसी रद्दी चीज, हालांकि हर समय घर में रहती, लेकिन वह फ्रिज के अन्दर। वे ठण्डा खीरा पसन्द करते हैं।

छील-छील कर छिलका खिड़की से बाहर फेंकते हुए अचानक ध्रुव बोला, 'अच्छा, यह फल पिताजी खा सकते हैं ?'

शुभ बोला, 'डॉक्टर को पूछना पड़ेगा ।'

और मीता बोली थी, 'फायदा ही क्या होगा ? इस फल में है क्या ?'

'फिर भी ।'

'नहीं ! अब पिताजी को वह चीजें दी जानी चाहिए जिससे शरीर को कुछ मिल सके ।'

इसके बाद प्रभुचरण के स्वास्थ्य की उन्नति पर देर तक बातें होती रहीं । यह भी कहा गया कि लौट कर पिताजी को खूब किस्से सुनाएँगे । पिताजी खुश होंगे ।

दूसरी कार पर सिंघाड़े खाते-खाते बातें हो रही थीं....पर प्रभुचरण के बारे में नहीं, शुभ की संगिनी के बारे में ।

टूलू कह रही थी, 'मेरी इच्छा थी छोटे भइया और उनकी सहेली हमारी कार पर आएँ लेकिन बड़ी मेमसाहब ने इतनी चतुराई से उन पर कब्जा कर लिया....'

बबुआ तुरन्त बोला, 'बड़ी मामी ऐसी ही पाजी हैं । छोटी मामी खूब अच्छी होगी । है न बापी ?'

'अरे सर्वनाश ! छोटी मामी कौन है ?'

'आहा ! वही जो नीली साड़ी पहने हैं ।'

सरित कुमार लड़के को बहलाने की आवाज में बोले थे, 'अरे, वह तो छोटे मामा की दोस्त है ।'

बबुआ ही-ही करके हँसने लगा, 'आहा, मुझे बेवकूफ मत समझो । मैं जैसे जानता नहीं हूँ ।'

'जानता है ?'

टूलू ने शायद लड़के की बुद्धि की गहराई नापने के लिए अनजान बनते हुए पूछा, 'यह बात तुमसे किसने कही ?'

बबुआ पहले की तरह ही-ही करता हुआ बोला था, 'मैं ऐसे ही समझ सकता हूँ । छोटे मामा उनकी तरफ रह-रह कर हँसते हुए देख रहे थे । बिल्कुल जैसे बहू हो ।'

लड़के के साथ टूलू ने भी ही-ही करते हुए सरित कुमार को एक धक्का मारा । बोली, 'तुम्हारे इस लड़के को नदी के इस पार गाड़ा जायगा तो उस पार पेड़ निकल आएगा ।'

बबुआ फिर हँसते हुए बोला, 'बापी माँ से कहते तुम्हारा लड़का, माँ बापी से कहतीं तुम्हारा लड़का—असल में मैं किसका लड़का हूँ बापी ?'

उत्तर सुनने का उसमें उत्साह न था । क्योंकि दूसरी कार आगे निकल गई थी । उत्तेजित हो कर वह सीट पर खड़ा हो गया—'बापी, हमारी कार तो हार रही है । ड्राइवर को जोर से चलाने को कहो न ? ए ड्राइवर, जोर से चलाओ न ।'

इसी तरह से वे लोग ठीक जगह, ठीक समय से पहुँच गये थे। बस, गाँव में घुसते ही 'गांगुली बाडी' कहाँ है पूछना पड़ा था।

घर या घर का परिवेश ऐसा कुछ उच्चकोटि का नहीं था, फिर भी सब यह सोच कर खुश हुए कि यह चीज अपनी है। इतने दिनों तक उनके लिए अनजान थी।

टूलू बुरी तरह से उत्तेजित हो रही थी, इसीलिए उसके भाइयों को भी लगा कि चीज मूल्यवान है। साथ ही साथ इस बात का डर भी लग रहा था कि कहीं 'हाय-हाय' करके पिताजी का मन न जीत ले टूलू और इतनी बड़ी सम्पत्ति हथिया बैठे। इसीलिए वे भी हाय-हाय कर रहे थे। अफसोस जाहिर कर रहे थे कि—'इतने दिनों से आए क्यों नहीं थे।'

पिताजी का ही कसूर है। एक बार भी नहीं लाए थे।

टूलू ने जोर डालते हुए कहा, 'मेरी शादी के बाद एक बार बात उठी थी, फिर रुक गई। तब तो उनकी तबियत खराब नहीं थी।'

दोष प्रभुचरण का ही था, इस पर सभी एक राय थे। सिर्फ नीता को छोड़ कर। नीता कभी भी किसी बात पर राय नहीं देती है।

सरित कुमार बोल बैठा, 'मेरे हाथों में यह मकान पड़ जाए तो मैं दिखा दूँ कि इसे क्या बनाया जा सकता है। बिल्कुल माडर्न स्टाइल का बंगला बना डालता।'

उत्तेजना कम हुई तो खाना-पीना शुरू हुआ। आश्चर्य की बात थी कि सामने वाला बरामदा बिल्कुल साफ-सुथरा था। कहीं कोई धूल या जाला तक नहीं था।

इसके मतलब पड़ोस का कोई इस्तेमाल करता है।

ध्रुव ने कहा—'वरना इस तरह साफ-सुथरा न होता। इस पर रोक लगानी चाहिए।'

सरित कुमार और टूलू एक साथ गरज उठे, 'अवश्य रोकना होगा। अभी पता करना चाहिए कि कौन इस्तेमाल करता है। अच्छी तरह से समझा देना है।'

शुभ और उसकी सहेली उतरते ही कहीं खिसक दिये थे। वे इस [illegible] में भाग लेने के लिए मौजूद नहीं थे। हाँ, सुखमय बोला था—'गेट पर नया [illegible] जाना चाहिए।'

उसी वक्त नीता बोली, 'बेकार की बातें मत करो सुखमय। बाहर के बारामदे में किसी का उठना-बैठना तुम रोक सकोगे? गेट की ऊँचाई तो कुल तीन फुट है।...कोई इस्तेमाल करता है तो हर्ज क्या है? करता है, तभी न यहाँ दरी-चादर बिछ सकी।'

पत्तल पर खाना निकाला गया। चाय का फ्लास्क खुल गया। साथ में आया नौकर काम में लग गया।

शुभ के बारे में हँस-हँस कर टिप्पणियाँ की गईं। हँसी-किस्से जोरों पर थे। खाने-पीने के वक्त तक, कम से कम, गुब्बारा खूब ऊँचाई पर उड़ता रहा। खाने के काफी देर बाद भी।

आँगन के एक अमरूद के पेड़ में अमरूद लदा देख कर बच्चे-बूढ़े सब खुश हुए। टूटे-फूटे कमरों में यहाँ-वहाँ गृहस्थी की कोई चीज़ पड़ी देख कर मुग्ध हुए। महिलाएँ मुग्ध हुईं, उस समय का रसोईघर देख कर।

कैसा मजेदार चूल्हा है? जमीन की मिट्टी काट कर बनाया हुआ?

'आज भी वैसा ही है....है न आश्चर्य की बात।'

'देखो देखो, ताखों पर यह मिट्टी के खिलौने सजे हैं। जाले से भर गया है। पता नहीं, इनसे खेलता कौन था?'

'अरे गुड़िया नहीं, भगवान् जी हैं शायद। काली जी, दुर्गा जी, गणेश-वणेश लग रहे हैं। यह शायद पिता जी की चाची का पूजा घर है।'

'क्यों? पिताजी की माँ का नहीं था क्या?'

'उनके लिए तो सुना है, बाहर रहती थीं। पिताजी के पिता जी तबादले वाली नौकरी करते थे।'

'पिताजी के पिता जी? अरे छोटे भइया, बाबा जी क्यों नहीं कहते हो?'

'अरे चल, जिसे कभी देखा नहीं उन्हें ऐसे अपनेपन से कैसे सम्बोधित करूँ? रातू, तुम्हारी क्या राय है?'

शान्त स्वर में रातू बोली, 'मेरी इस मामले में क्या राय होगी? मेरे लिए तो मेरे बाबा जी प्रत्यक्ष हैं। और मेरे सबसे ज्यादा प्रिय।'

—'अरे, बाप रे! तब?'

'तब क्या? बेकार की बातें बन्द करो।'

टुलू ने कान बचा कर पति से कहा, 'सभ्यता और स्वल्पभाषण के मामले में तो छोटी मेम साहब बड़ी को मात कर देंगी।'

हाँ, खाने के बाद दबे-छिपे, पीठ पीछे ऐसी बातें ही चल रही थीं। उस वक्त बैलून फूटा नहीं था, उड़ रहा था।

शुभ कैमरे से इसकी-उसकी तस्वीर खींचने के बाद, जिसकी खींचने की यह

कार चलने से पहले शुभ ने घर की तरफ देखा। .. अभी कुछ देर पहले यहाँ गाने के स्वर बज उठे थे। सामने के उस चबूतरे पर बैठ कर और खड़े हो कर सब ने ग्रुप फोटो खिंचवाया था। इस बात की भी आलोचना हुई थी कि अगर पूरा घर हम ठीक न भी कर सकें तो बरामदे में काँच की खिड़कियाँ लगवा कर घेरा जा सकता है। सामने के दो कमरे रहने योग्य किये जा सकते हैं, मरम्मत करवाने पर। कभी-कभी घूमने आया जा सकता है या दो-एक दिन रहा भी जा सकता है।

टूलू ने कहा था, 'एक आधुनिक बाथरूम ज़रूर बनवाना पड़ेगा।'

शुभ ने कहा, 'कुएँ में पम्प लगवा लिया जाये तो बहुत बढ़िया होगा।'

नीता ने भी राय दी थी, 'सामने की इस ज़मीन पर फूलों की क्यारी भी होनी चाहिए।'

यह सब बातें मकान ने भी सुनी होंगी।

मौन अभिमान लिये सिर उठाये देखता रहा मकान भी। सुबह के चेहरे और इस वक्त के चेहरे में कितना अन्तर है?

चुपचाप दो गाड़ियाँ ठीक जगह पहुँच कर एक मोड़ से दो दिशाओं में मुड़ गईं।

कार से उतर कर, घर में घुसते ही टूलू ने ऐसा अस्वाभाविक काम कर डाला, जिसकी कल्पना दो सेकेण्ड पहले तक टूलू के पति-पुत्र तक ने नहीं की थी।

हालांकि पूरे रास्ते टूलू गुमसुम थी। सरित कुमार ने भी बोलने की हिम्मत नहीं की थी। परिस्थिति ही बिगड़ चुकी थी। कहाँ दो कारों में भरे लोग शोर मचाते हुए एक ही घर में घुसते; हो हल्ला करते। सारे दिन अकेले पड़े रहे वृद्ध व्यक्ति के पास जाते। बातों की फुलझड़ी छुड़ा कर उन्हें डैम ब्लैंड कर देते। उसके बाद सभी एक साथ खाने की मेज पर जा बैठते। नीता खाने का विधिवत् निर्देश देकर गई थी, इसलिए मेज पर चीज़ों का समारोह ही रहता।

डिनर टेबिल पर 'खटाई' के तौर पर शुभ की 'विरह वेदना' का मीन-मेख होता। क्योंकि राजू अर्थात् भैया को रास्ते में उतारते आए थे। यह घर राजू का असली घर है। इसे सब जानते हैं फिर भी एक ऐसा वातावरण बना रखा है कि जानते हुए भी न जानने का भाव बनाए रहते हैं सब कोई।

यह सब हो सकता था, लेकिन कहाँ से क्या बात निकल आई ?

जगमगाती रोशनी के नीचे स्थापित भरी हुई मेज़ की तस्वीर की कल्पना कर सरित कुमार ने जो लम्बी सांस छोड़ी, वह भी 'विरह वेदना' के समान ही थी।....उस तस्वीर की जगह अपनी यह खाली खाने की मेज़। उस पर शक है कि रात को इस तरह आने पर कुछ खाने को भी मिलेगा। काम करने वाले को तो रात तक की छुट्टी दे दी गई थी।

जैसा गरम मिजाज़ लेकर टूलू लौटी है, उस पर यह सोचा नहीं जा सकता है कि वह पति-पुत्र के लिए कुछ करेगी। फिर भी यह डर नहीं था कि दरवाजे की चाभी खोल, कमरे में पाँव रखते ही टूलू ऐसा कुछ कर बैठेगी। कम से कम टूलू के पति ने इसे एक 'घटना' ही समझा था।

दरवाजे मे अन्दर पाँव रखते ही टूलू ने अधसोए लड़के को खींच कर झटके से सीधा खड़ा कर दिया। धाँय-धाँय करके चाँटे मारते हुए चिल्लाने लगी, 'यह सब तेरी वजह से हुआ। तेरी वजह से ! तेरी ही वजह से मेरा मान-सम्मान सब नष्ट हो गया। तेरे लिए, तेरे लिए....'

ऐसे अचानक सब कुछ हुआ कि पिता-पुत्र दोनों ही कुछ सेकेण्ड के लिए सन्नाटे में आ गए। उसके बाद ही सरित कुमार आगे बढ़ा। बच्चे को बचाता हुआ बोला, 'यह क्या हो रहा है ? पागल हो गई हो क्या ?'

परन्तु दूसरे ही क्षण लड़के ने ही ऐसा हाथ-पाँव मारा कि माँ-बाप दोनों, दो तरफ जा गिरे। माँ की तरह वह भी एक ही बात रट रहा था—'क्यों मारा मुझे ? क्यों मारा ? पाजी, राक्षसी, मुझे मारा क्यों ?'

चिल्लाते-चिल्लाते खाँसने लगा। खाँसते-खाँसते लेट कर कराहने लगा। पर करता कुछ नहीं था। सरित कुमार जानता है कि इस वक्त लड़के को फर्श पर से उठाने चलेगा तो और भी कुछ लातें मिलेंगी। ज्यादा ज़ोर जबरदस्ती करेंगे तो लड़का अपना ही शरीर नोंचेगा, अपने बाल खींचेगा और अपना हाथ खुद ही दाँतों से काट लेगा।

जब कोई रास्ता नहीं रहता तब बबुआ अपने माँ-बाप को परेशान करने के लिए यही करता। अतएव पिता ने खींच कर खड़ा करने का इरादा छोड़ दिया।

पर कुछ तो करना ही चाहिए ?

अतएव पहले अपराधी की ओर सरित कुमार ने ध्यान दिया। वह अपने को कभी-कभी 'सैन्डुइच' कहा करता है। पत्नी और पुत्र के दबाव के कारण वह अपनी तुलना उसी खाद्यवस्तु के साथ करता था।

अभियोग लगाने जा रहा था, लेकिन बड़ी नरम आवाज में। सरित कुमार बोला, 'एक तो बेचारा सारे दिन का थका, नींद मे था, भूखा भी है और इसी समय, अचानक....इस तरह....'

वक्ता को अपनी बात खत्म करने का मौका नहीं मिला। लड़के की तरह ही भक् से जल उठी टूलू। लड़के की तरह चिल्लाई भी, 'ओ ! बेचारा ! थका था ! इसीलिए

कार चलने से पहले ध्रुव ने घर की तरफ देखा। .. अभी कुछ देर पहले यहाँ गाने के स्वर बज उठे थे। सामने के उस चबूतरे पर बैठ कर और खड़े हो कर सब ने ग्रुप फोटो खिंचवाया था। इस बात की भी आलोचना हुई थी कि अगर पूरा घर हम ठीक न भी कर सकें तो बरामदे में काँच की खिड़कियाँ लगवा कर घेरा जा सकता है। सामने के दो कमरे रहने योग्य किये जा सकते हैं, मरम्मत करवाने पर। कभी-कभी घूमने आया जा सकता है या दो-एक दिन रहा भी जा सकता है।

टूलू ने कहा था, 'एक आधुनिक बाथरूम ज़रूर बनवाना पड़ेगा।'

शुभ ने कहा, 'कुएँ में पम्प लगवा लिया जाये तो बहुत बढ़िया होगा।'

नीता ने भी राय दी थी, 'सामने की इस ज़मीन पर फूलों की क्यारी भी होनी चाहिए।'

यह सब बातें मकान ने भी सुनी होंगी।

मौन अभिमान लिये सिर उठाये देखता रहा मकान भी। सुबह के चेहरे और इस वक्त के चेहरे में कितना अन्तर है?

चुपचाप दो गाड़ियाँ ठीक जगह पहुँच कर एक मोड़ से दो दिशाओं में मुड़ गईं।

कार से उतर कर, घर में घुसते ही टूलू ने ऐसा अस्वाभाविक काम कर डाला, जिसकी कल्पना दो सेकेण्ड पहले तक टूलू के पति-पुत्र तक ने नहीं की थी।

हालाँकि पूरे रास्ते टूलू गुमसुम थी। सरित कुमार ने भी बोलने की हिम्मत नहीं की थी। परिस्थिति ही बिगड़ चुकी थी। कहाँ दो कारों में भरे लोग शोर मचाते हुए एक ही घर में घुसते; हो हल्ला करते। सारे दिन अकेले पड़े रहे वृद्ध व्यक्ति के पास जाते। बातों की फुलझड़ी छुड़ा कर उन्हें डैम ग्लैड कर देते। उसके बाद सभी एक साथ खाने की मेज पर जा बैठते। नीता खाने का विधिवत् निर्देश देकर गई थी, इसलिए मेज पर चीज़ों का समारोह ही रहता।

डिनर टेबिल पर 'चटाई' के तौर पर शुभ की 'विरह वेदना' का मीन-मेख होता। क्योंकि रानू अर्थात् मैया को रास्ते में उतारते आए थे। यह घर रानू का असली घर है। इसे सब जानते हैं फिर भी एक ऐसा वातावरण बना रखा है कि जानते हुए भी न जानने का भाव बनाए रहते हैं सब कोई।

यह सब हो सकता था, लेकिन कहाँ से क्या बात निकल आई ?

जगमगाती रोशनी के नीचे स्थापित भरी हुई मेज़ की तस्वीर की कल्पना कर सरित कुमार ने जो लम्बी सांस छोड़ी, वह भी 'विरह वेदना' के समान ही थी।....उस तस्वीर की जगह अपनी यह खाली खाने की मेज़। उस पर शक है कि रात को इस तरह आने पर कुछ खाने को भी मिलेगा। काम करने वाले को तो रात तक की छुट्टी दे दी गई थी।

जैसा गरम मिजाज़ लेकर टूलू लौटी है, उस पर यह सोचा नहीं जा सकता है कि वह पति-पुत्र के लिए कुछ करेगी। फिर भी यह डर नहीं था कि दरवाजे की चाभी खोल, कमरे में पाँव रखते ही टूलू ऐसा कुछ कर बैठेगी। कम से कम टूलू के पति ने इसे एक 'घटना' ही समझा था।

दरवाजे से अन्दर पाँव रखते ही टूलू ने अधसोए लड़के को खींच कर झटके से सीधा खड़ा कर दिया। धाँय-धाँय करके चाँटे मारते हुए चिल्लाने लगी, 'यह सब तेरी वजह से हुआ। तेरी वजह से ! तेरी ही वजह से मेरा मान-सम्मान सब नष्ट हो गया। तेरे लिए, तेरे लिए....'

ऐसे अचानक सब कुछ हुआ कि पिता-पुत्र दोनों ही कुछ सेकेण्ड के लिए सन्नाटे में आ गए। उसके बाद ही सरित कुमार आगे बढ़ा। बच्चे को बचाता हुआ बोला, 'यह क्या हो रहा है ? पागल हो गई हो क्या ?'

परन्तु दूसरे ही क्षण लड़के ने ही ऐसा हाथ-पाँव मारा कि माँ-बाप दोनों, दो तरफ जा गिरे। माँ की तरह वह भी एक ही बात रट रहा था—'क्यों मारा मुझे ? क्यों मारा ? पाजी, राक्षसी, मुझे मारा क्यों ?'

चिल्लाते-चिल्लाते खाँसने लगा। खाँसते-खाँसते लेट कर कराहने लगा। पर करना कुछ नहीं था। सरित कुमार जानता है कि इस वक्त लड़के को फर्श पर से उठाने चलेगा तो और भी कुछ लातें मिलेंगी। ज्यादा जोर जबरदस्ती करेंगे तो लड़का अपना ही शरीर नोचेगा, अपने बाल खींचेगा और अपना हाथ खुद ही दाँतों से काट लेगा।

जब कोई रास्ता नहीं रहता तब बबुआ अपने माँ-बाप को परेशान करने के लिए यही करता। अतएव पिता ने खींच कर खड़ा करने का इरादा छोड़ दिया।

पर कुछ तो करना ही चाहिए ?

अतएव पहले अपराधी की ओर सरित कुमार ने ध्यान दिया। वह अपने को कभी-कभी 'सैन्डुइच' कहा करता है। पत्नी और पुत्र के दबाव के कारण वह अपनी तुलना उसी खाद्यवस्तु के साथ करता था।

अभियोग लगाने जा रहा था, लेकिन बड़ी नरम आवाज़ में। सरित कुमार बोला, 'एक तो बेचारा सारे दिन का थका, नींद में था, भूखा भी है और इसी समय, अचानक....इस तरह....'

वक्ता को अपनी बात खत्म करने का मौका नहीं मिला। लड़के की तरह ही भक् से जल उठी टूलू। लड़के की तरह चिल्लाई भी, 'ओ ! बेचारा ! थका था ! इसीलिए

उसे सपोर्ट करने आए हो ? और मैं तो सारे दिन फोम की गद्दी पर लेटी थी, है न ? तुम्हारी बे-अक्ली की ही वजह से मैं लड़के को ठीक से गाइड नहीं कर पाती हूँ—समझे ? उस लड़के की वजह से आज ..'

सरित कुमार और भी नम्र होकर बोला, 'मैं क्या कह रहा हूँ कि उसे डाँटो-डपटो नहीं। आज समय ऐसा था....'

'डाँटो-डपटो !' टुलू सहसा स्वर बदल कर बोली, 'ओ ! अब विचार-बुद्धि का प्रयोग करने चले हैं। और जब दूसरे आदमी ने तुम्हारे लड़के को चाँटा मारा तब तो एक बात मुँह से न निकाल सके। वह चपत किसके गालों पर पड़ी ? बबुआ के या हमारे-तुम्हारे। ओह ! मैं तो सोच भी नहीं सकती हूँ...'

और भी विनीत भाव से सरित कुमार ने कहा, 'कैसे आश्चर्य की बात है ? इतनी-सी बात पर इतना अपसेट क्यों हो रही हो ! शरारत करने पर बड़े लोग एक-आध चपत नहीं लगाते हैं क्या ?'

'क्या ? क्या कहा ? शरारत करने पर बड़े लोग चपत लगाते हैं ? इसका मतलब बड़ी मेमसाहब के गलत काम का समर्थन कर रहे हो ? वह तो करोगे ही। रूपसी सलज्ज हैं। देखते ही मूर्छित हो जाते हो।'

टुलू हाँफने लगी।

अचानक सरित का ध्यान चला गया। लड़का कराहना बन्द कर कान लगाए माँ-बाप का 'प्रेमालाप' सुन रहा था। इसीलिए वह बोला, 'क्या बेकार की बातें करती हो ? शरारत करने पर गुरुजन अगर शासन करते हैं तो इसमें उत्तेजित होने की क्या बात है—मैं यही तो कह रहा हूँ।'

टुलू ने हाँफना बन्द कर शक्ति संग्रह करने की कोशिश की, 'गुरुजन ! ओ ! कहावत मैंने भी सुनी है कि मामा के यहाँ जाने में कितना सुख है, वहाँ कोई मारता नहीं है। उस समय के लड़के क्या शरारत करना नहीं जानते थे ? सिर्फ मेरा बबुआ ही घटिया किस्म का है ?....तुममें अगर जरा भी प्रेस्टिज का ज्ञान होता तो ऐसी बात न कहते। मामा-मामी के हाथों मार कौन खाता है ? माँ-बाप मरे अनाथ बच्चे।'

'छिः छिः, कैसी बातें कर रही हो, टुलू ?'

'ठीक कह रही हूँ। तुम लोगों में अगर यह समझ होती तो तभी बड़ी मेमसाहब के अहंकार का जवाब दे कर आते। खैर, अपने मान-सम्मान का ध्यान मुझे स्वयं ही रखना पड़ेगा। इस जीवन में मैं उस घर का दरवाजा तक नहीं लाँघूँगी।'

जमीन पर लोटता बबुआ अचानक उठ खड़ा हुआ। ताली बजाते हुए बोला, 'खूब हकेंगे ! खूब हकेंगे। उस पाजी राक्षसी बड़ी मामी के घर अब हम लोग नहीं जाएँगे। राजा दादा को भी घृणा कर सकूँगा।'

सरित कुमार के धैर्य का बाँध अब टूटा।

अब तक जिस बात के लिए टुलू को दोषी ठहरा रहा था, परिणाम की चिन्ता किए बगैर स्वयं वही काम कर बैठा।

'बदमाश ! शैतान !' कह कर चिल्लाया और बच्चे के गाल पर ज़ोरों का एक थप्पड़ जमा दिया। उसी स्थान पर बच्चे की माँ के चपत के निशान पहले से मौजूद थे। सरित कुमार दूसरे कमरे में चला गया।

'अच्छा ! ठीक है !' टूटू ने अपने चेहरे के चारो तरफ लटकते बालों को पीठ की तरफ हटाते हुए लड़के का हाथ मजबूती से पकड़ा और इधर वाले कमरे में घुस कर धड़ाम से दरवाज़ा बन्द कर लिया।

इसके बाद ही वीर पुरुष बबुआ का करुण क्रन्दन सुनाई पडा, 'दरवाजा क्यों बन्द कर दिया ? मैं क्या कुछ खाऊँगा नही ? मुझे भूख नही लगी है क्या ?'

प्रतीक्षा का प्रहर हमेशा ही लम्बा होता है।

लेटे-लेटे प्रभुचरण ने सुबह से शाम पार कर दी। इस बीच खुशी, उत्तेजना, चिन्ता, क्षोभ, अभियोग के दौर से गुजरते हुए उन्होने किसी तरह प्रतीक्षा के दीर्घक्षणों को छोटा कर लिया। परन्तु शाम के बाद, स्थिर रहना असम्भव-सा हो गया। क्रमशः प्रतीक्षा के क्षण भारी पत्थर की तरह जम कर बैठते चले गए।

वे अधीर हो उठे।

वह आ गए सब क्या ? थक कर लौट रहे हैं, नए महाराज लोकनाथ ने सब तैयार रखा है न ? निताई उनके साथ गया है, यहाँ लोकनाथ अकेले है। उनके आते ही सब पहुँचा सकेगा ?

प्रभुचरण की चिन्ता का अस्तित्व अस्वीकार करते हुए ही इस गृहस्थी का चक्का घूमता है। घूमता ठीक ही है, फिर भी प्रभुचरण सदैव सोचा करते हैं। सब ठीक-ठीक हो रहा है या नही, ठीक से होगा या नहीं, जबकि वनशोभा ने कभी एक बार शिकायत की थी—'तुम्हारी एक गृहस्थी है, यह बात तुम्हे मालूम है या नही ?' कहा था, 'गृहस्थी में कब क्या हो रहा है, क्या चाहिए, क्या नही, क्या खत्म हुआ, क्या आया—इन सब की तुम खोज-खबर तक नहीं लोगे ?'

प्रभुचरण इस अभियोग की परवाह न करते हुए बोले, 'मैं क्या खोज-खबर लूँगा ? तुम्हारी गृहस्थी है....'

वनशोभा ने कहा, 'आहा ! तुम तो ऐसा कह रहे हो जैसे यहाँ मैं अपने साथ गृहस्थी लेकर आई थी। अपने माँ की सजाई गृहस्थी मेरे कन्धों पर लाद कर बड़े निश्चिन्त बैठे हो ?'

कभी-कभी प्रभुचरण कहते—'इसी के साथ तो मन भी वहीं दिए बैठा हूँ।'

इससे अधिक गहरा मजाक करने की भाषा नहीं जानते थे प्रभुचरण। लेकिन आँखो की भी तो एक भाषा होती है। परन्तु उसे ही कहाँ जानते थे प्रभुचरण ? वनशोभा का भी यही हाल था। बातों ही बातों मे जो बात निकल जाए, बस।

अब मन हाहाकार करता है। ऐसी बातें करते समय कभी भी तो उस दृष्टि से देखा तक नहीं था। कभी 'विशेष कौतुक' को राह पर भी नहीं गये। कभी क्या हाथ बढ़ा कर छुआ था ?

वनशोभा की तरफ बिना देखे ही, अखबार के पीछे से प्रश्नों का उत्तर देते थे।....सचमुच, प्रभुचरण ने 'गृहस्थी' नामक लक्ष्मण-रेखा से घिरे स्थान को कभी महत्त्व नहीं दिया था। वहाँ क्या हो रहा है, क्या नहीं, इस बात के लिये चिन्तित नहीं होते थे।

लेकिन आश्चर्य है ! अब प्रभुचरण के दिमाग का कण-कण, उसी चिरतुच्छ वस्तु के लिए सोच-सोच कर अधमरा हो रहा है। कोई नहीं चाहता है, फिर भी उनका दिमाग चिन्तित है। सदैव ही देख रहे हैं कि उनकी 'चिन्ता' के बगैर ही गृहस्थी सुन्दर ढंग से चल रही है .. फिर भी बैठ जाते हैं सोचने।

अतएव अब बैठ गये सोचने कि लोकनाथ ने सब कुछ ठीक-ठीक तैयार कर रखा है या नहीं ? रास्ते पर से कार जाते ही, चौकन्ने होते, गेट पर रुकी या नहीं, गेट खुला या नहीं।

परन्तु ज्यों-ज्यों शाम गुजरने लगी, त्यों-त्यों बेचैनी बढ़ने लगी। अन्त में प्रभुचरण को वही आदिम, अकृत्रिम चिन्ता आकर दबोचने लगी। आशंका, आतंक, भय —आ क्यों नहीं रहे हैं ?

किसी भयानक विपत्ति में तो नहीं फँस गए हैं ? टूटे मकान के किसी कोने से साँप-वाँप तो नहीं निकल आया है ? वह साँप किसी को....हे भगवान् ! हे नारायण....

नीलकान्तपुर में एक बार साँप काटने का एक दृश्य देखा था प्रभुचरण ने। अपने घर में नहीं, बगल के किसी रिश्तेदार के यहाँ। एक ग्वाले का लड़का था। सुबह, धोती के छोर में साई-गुड़ बाँध कर गया गाय खोलने। ज्यों ही गौशाला का बेड़ा हटाया त्यों ही चिल्ला उठा, 'अरे माई रे !'

उसके बाद तो सारा घर ही चिल्लाने लग गया !

प्रभुचरण ने देखा था, लड़के को जगह-जगह से बाँध कर आँगन में लिटा दिया गया। साँपों का ओझा, नाना प्रकार से हाथ हिला-हिला कर मन्त्र पढ़ रहा था। उस मन्त्र की भाषा समझने की क्षमता नहीं थी। भले ही बच्चों ने याद कर लिया था कविता के रूप में। देवी मनसा के उद्देश्य में वह मंत्रोच्चारण हो रहा था, लेकिन किसी भी तरह से मनसा देवी का मन नहीं पिघला। अभागे ग्वाले के लड़के को साई-गुड़ यहीं छोड़ कर अनजाने देश का रास्ता पकड़ना पड़ा। आज बार-बार यही तस्वीर आँखों के सामने उभरने लगी।

पड़ोस के एक वयो-वृद्ध को कहते सुना गया, 'सांप का क्या कसूर है ? घर की दीवार टूट कर मलवा का ढेर लगा है कितने दिनो से।—ठीक करने का नाम नही लेते हैं। सांप नही रहेंगे तो कौन रहेगा ? सांप का अड्डा है इस देश में।'

इसके अर्थ हुए नीलकान्तपुर सांपों का अड्डा है। 'गांगुली बाड़ी' का सब कुछ गिर कर ढेर लग गया है या नही, कौन जाने ?

हाय भगवान् ! क्यों प्रभुचरण ने उनको जाने से नहीं रोका ? क्यों जाने दिया ? याद क्यों नही आया कि वहां सांपों का अड्डा है ? याद तो आना चाहिये था।

बड़ी देर तक कल्पित सांप उन्हे काटता रहा। अन्त में पसीने-पसीने हो कर उठ बैठे और सोचने लगे, 'पृथ्वी पर कही भी सांप-वांप नही हैं। उनके लड़के निर्विघ्न गाँव का मकान देख कर वापस लौट रहे हैं।'

देवी-देवताओं के बारे में बहुत सोचते नही थे प्रभुचरण, फिर भी आज वहां जा पहुँचे, परन्तु वहां किसी ने हौसला नहीं बढाया। अब उनकी आंखों के आगे दूसरी तस्वीर उभरी, मोटर एक्सीडेन्ट की।

इतने लम्बे जीवन काल में मोटर एक्सीडेण्ट न देखा हो, ऐसा नही। इस परिचित दृश्य में वह किसी को घायल देखें ? प्रभुचरण को तो हार्ट की बीमारी है। हार्ट की हालत तो ऐसी है कि किसी को जोर से बुलाएँ तो फेल हो जाये।

तब ?

प्रभुचरण तब से 'लोकनाथ-लोकनाथ' 'मधु-मधु' कर के चिल्ला रहे हैं। हार्ट फेल तो नहीं हुआ ?—भगवान्। कितना अच्छा होता कि अगर प्रभुचरण का हार्ट फेल बिस्तर पर हो जाता। तो फिर उस भयंकर घटना का सामना नही करना पड़ता।

लेकिन अगर कुछ न हुआ हो ?

अगर यूँ ही हँसी-खुशी, खाने-पीने की वजह से वहां से चलने में देर हो रही हो ? तो फिर ? तब क्या होगा ? खुशी-खुशी लौट कर यह दृश्य देखेंगे ?

प्रभुचरण जीवित नही हैं।

प्रभुचरण नामक शरीर, बिस्तर पर गूंगा, बहरा, अंधा, हिल-डुल सकने में चिर असमर्थ-सा पड़ा होगा। वे अब कभी भी नीलकान्तपुर यात्रा के किस्से वहाँ के मालिक को नहीं सुना सकेंगे। हाय बेचारे !

उनके दुःख की बात सोच कर प्रभुचरण की आंखें भर आई।....अपने लिए शोक होने लगा। ऐसा एक दिन चुन कर मरे प्रभुचरण ? शायद नीता ने उस दिन बहुत-सा खाना-पीना बनवाया होगा। उसे कोई खा नहीं सकेगा।....इसके अर्थ हुये कि प्रभुचरण ने उसके साथ दुश्मनी की। कहना चाहिये विश्वासघात। उन्होंने इन लोगों को आश्वासन दिया था, 'तुम लोग चिन्ता मत करना', जाने के लिये उत्साह दिलाया था, स्वतः और स्वयं ही मर जाएँ ?

बड़ा कष्ट होने लगा।....वनशोभा, तुम ऐसे अजीब से दिन में मुझे लेने क्यों आईं ? मैं क्या अकेले कमरे में मर कर पड़ा रहूँ ?....तुम ऐसी निष्ठुर पहले तो नहीं थीं ?

जी-जान से कोशिश करके प्रभुचरण ने लोकनाथ को बुलाया। हाँ, लोकनाथ ! 'विश्वनाथ' नहीं, 'जगन्नाथ' नहीं... नितान्त रसोइया लोकनाथ। क्योंकि वे आदमी का चेहरा देखना चाहते थे। किसी जीवित आदमी का।

मृतकों के जुलूस के दर्शक, मृतकों की याद की दरिया में बह रहे प्रभुचरण, अपने को मृतकों मे शामिल करना नहीं चाहते थे। इसीलिये जीवित मनुष्य का चेहरा देखने के लिये व्याकुल हो उठे।

लेकिन गले से आवाज़ कहाँ निकली जो लोकनाथ दौड़ा आयेगा ? उसने तो सारे दिन अपनी ड्यूटी ठीक से निभाई थी। दोपहर को खाना, खड़े रह कर खिलाया था। शाम को फ्रिज से खीरा निकाल कर दिया था। शाम ढलने से पहले दे गया था 'कम्प्लॉन'। और हर बार खड़ा रहा है जब तक उनका खाना खत्म नहीं हुआ है। बर्तन, प्लेट, गिलास उठा कर ले गया है। और क्या करेगा ? क्या कर सकता है ? अब तो रसोई में लगना है।

अतएव ऐसे एक व्याकुल क्षण में प्रभुचरण जीवित मनुष्य का मुँह न देख सके। और धीरे-धीरे शून्यता में समाते चले गये। अंधकार... और अंधकार !

ड्राइवर सुखमय कार गैरेज मे रख कर चाभी दे गया। मधु गेट बन्द करके नीचे के कमरों में खिड़कियाँ खुली तो नहीं है, देखने आया। दुमंजिले में चले गये शुभ और ध्रुव पत्नी-पुत्र सहित। शुभ चुप रहा। शायद विरह के कारण या फिर इस अवांछित परिस्थिति के कारण।

जाते वक्त टूलू ने कहा था, लौटते वक्त हमारी गाड़ी में लौटना छोटे भइया, रानू से तो परिचय ही नहीं हुआ है।

यही बात काँटे-सी चुभ रही थी।

रानू को परिवार के सभी के साथ घुमाने ले जाने की कल्पना ने कई दिनों तक शुभ को मोहाच्छन्न कर रखा था। उसे लोग नीरस कहते हैं। वक्त आने पर नीरस आदमी क्या बदलता नहीं है ?

पता नहीं इस घटना का परिणाम क्या हो ? मामला कितना और बढ़े। टूलू जैसी नासमझ और असहिष्णु प्रकृति की लड़की है। अगर सचमुच ही आना बन्द कर दे ? कार से वापस लौटते वक्त कहा था—

हाँ, टूलू की आवाज़ सुनाई पड़ी थी, 'सरित, कार घुमा लो। अब उस रास्ते से नहीं।'

जो भी कहो, शुभ टूलू को जरा ज्यादा ही चाहता है। ऊपर-नीचे के भाई-बहन हैं। ध्रुव का स्नेह तो नियम के बन्धन में बँधा है। हाँ, कभी-कभी पिता जी का दिल रखने के लिये या कभी बहनोई की इज्जत रखने के लिये बहन को प्रश्रय देता है ध्रुव, जिसके लिये नीता की व्यंगात्मक हँसी भी सहन करनी पड़ती है।

हालाँकि आज हँसी का प्रश्न ही नहीं उठता। आज तो मामला ही कुछ और है। फिर भी ध्रुव ने समझौता करने का हास्यकर क्षीण-सा प्रयास किया था।

कहा था, 'क्या बच्चों की-सी बातें शुरू कर दी तूने? चल चल, सब मिल कर पिता जी के पास बैठ कर बातें करेंगे। भले आदमी खूब खुश हो जाएँगे।'

लेकिन बालू से कहीं समुद्र को बाँधा जा सका है?

पुरुषों की लापरवाही या निर्बुद्धि से परिस्थिति जटिल हो जाए तो स्त्रियाँ अनायास ही उस परिस्थिति को वश में ले आने की क्षमता रखती हैं। हँस कर, नाराज हो कर, बातों का जाल बिछा कर या आँखों से घायल करके।

पर महिला जाति अगर असहिष्णु होकर तथा 'बिना युद्ध किये सूई बराबर नहीं दूँगी' जैसी न झुकने वाली परिस्थिति रच डालें तो पुरुष उस परिस्थिति को वश में लाने की क्षमता नहीं रखता है।

आज के इस रणमंच में भी पुरुषों की भूमिका 'निरुपाय'-सी है। यथार्थ बात कहने तक का साहस नहीं है किसी में। पूर्व अभिज्ञता की फसल तो खलिहान में रखी है। पानी डालने की कोशिश की कि आग बढ़ जायगी।

फिर भी ध्रुव मूर्खता कर ही बैठा।

कमरे में पहुँच कर, अब तक की चुप्पी को तोड़ता हुआ बोला, 'मार कर तुमने ठीक नहीं किया।'

नीता चौंक पड़ी।

पहले तो अपने कानों पर विश्वास ही न कर सकी।

उसके बाद ही धीरे-धीरे बरफ जैसी ठण्डी व कठोर हो गई। उसी स्वर में बोली—'हाँ, समझ रही हूँ कि ठीक नहीं किया है।'

अबोध पुरुष जाति ऐसे मौकों पर जो कुछ करता है, वही कर बैठा ध्रुव। विचलित व्याकुल कण्ठ से बोला—'नहीं, नहीं, यानी कि मैं यह नहीं कह रहा हूँ। तुमने तो ठीक ही किया था....लेकिन टूलू को पहचानती हो न....'

और भी ठण्डी आवाज सुनाई पड़ी, 'पहचानती क्यों नहीं हूँ। सिर्फ टूलू ही क्यों, सभी को पहचानती हूँ। आज और भी जान लिया।'

उसके बाद शान्त स्वरों में बोली, 'राजा, हाथ-मुँह धो कर कपड़े बदलो। फिर लोकनाथ से एक गिलास गरम दूध माँग कर पी लो। देर हो रही है सो जाओ।'

दूध पी कर सो जाओ!

राजा भी चौंक पड़ा।

राजा को भी अकस्मात् अपने कानो पर विश्वास नहीं हुआ।

जाते समय अपने कानों से सुना था, माँ का दिया निर्देश—'लोकनाथ, कवाब में मसाला भरने से पहले बिना मिर्च का कवाब राजा के लिए अलग कर देना।'

इसके अतिरिक्त अपनी आँखों से देख गया था कि मुर्गों के पर छुड़ाये जा रहे हैं। निताई साथ जाएगा इसीलिये जल्दी-जल्दी काम खत्म कर रहा था। यूँ तो निताई गाँव जाने के लिये चिन्तित है। इसीलिये लोकनाथ को ले आया है। काम भी सिखा रहा है। अब लोकनाथ पर ही भरोसा करना पड़ेगा।

जाते वक्त गाड़ी में कितना कुछ खाया गया, लेकिन लौटते वक्त हर चीज बन्द। अब आदेश दिया जा रहा है—दूध पी कर सो जाओ।

आँखों में अश्रु जल भर आया राजा के, पर वह बबुआ तो है नहीं कि कह बैठे—'मुझे क्या भूख नहीं लगती है ? मैं क्या कुछ खाऊँगा नहीं ?'

वह आदेश-पालन करने चला।

फिर एक गड़बड़ काम कर बैठा, ध्रुव। शायद हालत सुधारने के इरादे से ही बोल उठा, 'यह क्या ? सिर्फ दूध पी कर सो जायेगा ? कुछ खायेगा नहीं ? मेरे पेट में तो....'

नीता और भी शान्त स्वर में बोली, 'राजा, जो कहा है वही करो।'

जाते-जाते राजा ने मुँह फेर कर पिता के उपायहीन अपमानित चेहरे को देख लिया एक बार।

उस दृष्टि में क्या था ?

घृणा ? अवज्ञा ? या व्यंग ? अथवा करुणा ?

माँ राजा के प्रति इतनी निष्ठुर हो सकती है, यह बात उसकी धारणा के बाहर थी। कल्पनाहीन इस निष्ठुरता ने राजा को सेकेण्ड भर के लिए विस्मित कर दिया था। आश्चर्य का अन्त हुआ, पर मन में भूकम्प-सा उठने लगा।....

लोकनाथ से माँग कर दूध पीने से सोने के बीच किसी तरह यह भूकम्प दबा रहा। पर लेटते ही कोई जैसे राजा को उठा-उठा कर पटकने लगा।....अँधेरे कमरे में बिस्तर पर पछाड़ खा कर गिरा 'सदा सभ्य' लड़का अचानक ही बबुआ की तरह हरकतें करने लगा।

जमीन पर न सही, बिस्तर पर ही पहले सिर कूटने लगा। उसके बाद और भी भयंकर विद्रोही मूर्ति बना कर सिर की तकिया उठा कर दाँतों से फाड़ने लग गया। सफलता नहीं मिली। तब छोटी तकिया उठाई और पटकने लगा खाट पर, खाट के डंडों पर।

बत्ती जलती होती या कोई देख लेता तो इस भयंकर हिंसात्मक चेहरे को देख कर दंग रह जाता।

वह अपनी बुआ के लड़के बबुआ की तरह लग रहा था। 'प्रतिवाद' की ऐसी मूर्ति किसी ने देखी न थी। फिर राजा के लिए तो कोई सोच ही नहीं सकता था। गुस्सा, दुःख या अभिमान होता तो राजा का चेहरा लाल पड़ जाता, हाथों की मुट्ठियाँ कस जातीं,

होंठ कांपने लगते । इससे ज्यादा नही ।

पिता या चाचा, अथवा किसी नौकर से उचित सम्मान न मिलने पर राजा अपमान का अनुभव करता । नौकरों के आगे वह अपने को 'मालिक' समझता और वैसा ही व्यवहार पाने का आदी था । इसीलिए अचानक कुछ कमी हुई तो राजा का चेहरा बदल जाता, हाव-भाव बदल जाता ।

लेकिन मां ?

नहीं, मां के लिए प्रतिवाद का प्रश्न ही नहीं उठता । राजा जानता है, मां कभी गलत नही है । मां उसके पैरों के नीचे की जमीन है, सिर के ऊपर की छत है । राजा के विषय में ज़रा-सी भी आलोचना सुन कर मां अगर भौंहे सिकोड़ती तो आलोचक की बोलती बन्द हो जाती । ऐसी आलोचना कभी-कभी बुद्धू पिता या मूर्ख बाबाजी कर बैठते हैं ।

यूं तो मां ने राजा को ऐसी शिक्षा दी है कि वह किसी भी तरह की आलोचना सुन कर विचलित नहीं होता है ।

मां ने सिखाया है—'अन्य की भूल सुधारने की कोशिश मत करो ! उत्तेजित मत हो । इग्नोर करना सीखो ।'

बाबाजी जब शिकायत करते, 'तू इसी उम्र में ऐसा बूढ़ा क्यों हो गया रे ? हंसता नहीं है, बोलता नहीं है....गम्भीर....'

राजा उनकी बात नहीं काटता, प्रतिवाद नहीं करता । इग्नोर करता—कमरे से चला जाता ।

पिता अगर कहते, 'बाबाजी के कमरे में कभी-कभी जाया करो, राजा । बुड्ढे आदमी हैं, अकेले पड़े रहते हैं....'

राजा उस बात को 'बच्चों की बात' समझता । पिता का आदेश मानने का कोई प्रश्न ही नही उठता है ।

क्योंकि ऐसी बात सुन कर मां शान्त स्वर में कहती, 'राजा के हर काम का हिसाब रखते हुए फार्मेलिटी दिखाने के लिए कुछ समय निकाल देना कि कब जायेगा फार्मेलिटी दिखाने । राजा वहां ज़रूर जायेगा ।'

मां कभी भी राजा के साथ अप्रत्याशित व्यवहार नही करती । असल में नीता स्वयं जिस तरह से आत्मस्थ रह कर एक फ्रेम में जड़ी बैठी है उसी तरह से 'डिसिप्लिन' नामक लोहे के फ्रेम में उसने लड़के को भी बांध रखा है ।

नहीं । लड़के के अन्दर के शिशु को नीता ने कभी प्रश्रय नहीं दिया था । बचपन में भी अगर कभी कह बैठा, 'मां, आज मैं तुम्हारे पास लेटूंगा ।' तो मां विस्मित और कौतुक मिश्रित हंसी हंस कर कहती—'ए मां ! गांव के लड़कों की तरह बातें क्यों कर रहा है ? पागल हो गया है क्या ?'

बेचारे का सिर शर्म से झुक जाता ।

अगर बरसात की किसी शाम को हिम्मत करके कहता, 'मां, कल खूब सवेरे

उठ कर पढ़ लूंगा, इस वक्त ज़रा खिड़की के पास बैठ जाऊँ ?'

तो माँ आश्चर्यचकित हो कर कहती, 'पानी बरस रहा है इसलिए पढ़ाई छोड़ कर खिड़की के सामने बैठे रहोगे ? आजकल कैसी बातें कर रहे हो ? बरसात भर ही तो पानी बरसेगा।'

बबुआ लोगों के आने पर परिस्थितिवश अगर कह बैठा—'चाचा कह रहे हैं, वे लोग घूमने आये हैं, खेलना ठीक होगा।'

सुन कर माँ कहती—'क्या ठीक होगा क्या नहीं, यह मैं ही तुम्हें बता दूँगी, राजा।....सवाल लगाना है, जा कर सवाल लगाओ।'

अर्थात् राजा के मामले में किसी को भी सोचने की ज़रूरत नहीं है। माँ का दिया निर्देश ही सब कुछ है, आखिरी है। .. राजा इन्हीं शक्तिमयी को देवता के समान मानता आया है। माँ को कोई 'उचित-अनुचित' समझाये, यह तो राजा सोच ही नहीं सकता। ... आज वही बात हो गई।

पर उससे भी कहीं ज्यादा अप्रत्याशित था माँ का व्यवहार।

तकिया न सही उसका गिलाफ फाड़ कर रख दिया। राजा मन ही मन बोला, 'और करूँगा। मैं अब बबुआ की तरह असभ्य हो जाऊँगा।'

माँ को सजा देने का इससे बड़ा उपाय और कोई नहीं है, राजा यह जानता था।

माँ ने राजा को कबाब खाने नहीं दिया। मुर्गी भी न खा सका। कोई सोच सकता है ? यह भी पिता से बदला लेने के इरादे से ?....राजा की भूख की बात तक न सोची।

माँ का यह निर्मम व्यवहार सिर्फ पिता से बदला लेने के लिए है, यह समझते उसे देर नहीं लगी। और समझते ही माँ के प्रति एक हिंसात्मक भावना जगी।

ठीक है।

राजा भी देख लेगा।

राजा जिस तरह से अकसर पिता, चाचा या बाबा को इग्नोर करता है उसी तरह से तुम्हें भी करेगा। राजा ने तुम्हें समझ लिया है।

दुःख, घृणा और आक्रोश से जलता रहा राजा। घंटे भर में राजा के अन्दर एक भयंकर परिवर्तन हो गया।

फिर भी कल हुआ ही कितना था ?

राजा ने सुबह उठते ही एक नया दृश्य देखा। माँ एक सूटकेस ठीक कर रही हैं ....कहीं जाने के लिए। क्यों ? माँ कहाँ जा रही हो ? पर पूछना संभव नहीं है। प्रेस्टिज नहीं रहेगी। इसीलिए मुँह धोने नहीं गया। वहीं खड़ा रहा। क्योंकि माँ बोलेगी जरूर।

लेकिन माँ ने यह कैसी बात कही ?

गम्भीर चेहरा लिए माँ ने आ कर कहा—'राजा, मैं डोवर लेन जा रही हूँ। तुम मेरे साथ चलोगे या यहीं रहोगे ?'

डोवर लेन में नीता का मायका है।

पर नीता 'मायका' शब्द का प्रयोग नहीं करती। कभी कदा कहती है 'वह घर', नहीं तो डोवर लेन।

चौंक कर एक बार राजा ने माँ की तरफ देखा। लगा पत्थर की बनी है।

डर के मारे बोल न सका।

माँ ने फिर कहा, 'अगर जाना चाहो तो तुम्हारा एक सूटकेस ठीक कर लूँगी।'

राजा अचानक डर गया।

डोवर लेन में क्या हुआ है !

माँ के पिताजी मर गये क्या ? या माँ ? राजा ने पूछा, 'डोवर लेन क्यों जाना होगा ?'

माँ बोली, 'तुम्हें यह सवाल पूछने की जरूरत नहीं है। मैंने जो प्रश्न पूछा है उसका उत्तर दो।'

'नहीं।'

यह तो किसी के मर जाने जैसा मुँह नहीं है। हालांकि राजा ने कभी किसी को मरते नहीं देखा है, फिर भी अस्पष्ट एक अनुभूति ने ऐसा ही कुछ कहा।

राजा भी सख्त पड़ा। पिछली रात का संकल्प याद आया। बोल बैठा, 'यूँ ही मूर्खों की तरह वहाँ क्यों जाऊँ ? स्कूल नहीं है क्या ?'

विस्फोट हुआ क्या ? नहीं ! होते-होते रह गया।

राजा ने सिर्फ एक शब्द सुना, 'ठीक है।'

उसके कुछ ही देर बाद एक टैक्सी में माँ को जाते देखा राजा ने।

'कल रात राजा को सिर्फ दूध पी कर लेटने को कहा था। खाना नहीं दिया था। उस अविश्वासपूर्ण निष्ठुरता ने राजा के मन को उलट-पुलट कर रख दिया था। आज तो

राजा को टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाना चाहिये, पर राजा पत्थर की तरह ही खड़ा रहा।

इस चले जाने का अर्थ राजा की समझ में आ गया था।

राजा को जल्दी सोने के लिए भेजने का कारण था। नीता को डर था कि कहीं खाने की मेज़ पर फिर वही प्रसंग न छिड़ जाए। इसीलिए लड़के को हटाया था। पर राजा की मां गलत थी। इस प्रकार से राजा हाथों से बाहर निकल जाएगा या जा सकता है, नीता ने ऐसा सोचा न था।

यही गलती न करती तो शायद परिस्थिति ऐसी हो जाती कि मां को बक्स लगाते देख कर राजा स्वयं कहता, 'मैं यहां नहीं रहूंगा।'

पर ऐसा हुआ कहां ?

आधी रात के बाद ही ध्रुव ने आकर छोटे भाई को जगाया था, 'तेरी भाभी *तो अच्छा बच्चों-सा जिद् कर रही है। मेरी बात सुनेगी नहीं और मुझमें कहने का* साहस भी नहीं है। तेरी बात सुन भी सकती है। कह कर देख।'

कहते वक्त बड़ी कोशिश की थी, मुखे हल्के ढंग से कहना चाहा था। जैसे नीता सचमुच ही बच्चों की तरह व्यवहार कर रही है। लेकिन गला कांप उठा, हल्केपन का नाटक असफल हो गया।

इसके अतिरिक्त इतने तड़के भाई को जगा कर (जिस भाई का एकमात्र शौक है देर तक बिस्तर पर पड़े रहना) कहने आना, कैसा लगेगा, ध्रुव ने सोच कर नहीं देखा था। इसीलिए कहा था, 'अरे उठ, उठ जल्दी, देर करने से....'

शुभ ने उठ कर भाई के मुंह की तरफ देखा। शान्त भाव से पूछा, 'क्या हुआ ?'

शान्त रह कर ही पूछा वरना भइया का सहज होने का प्रयास असफल हो जाएगा। रात खाने की मेज़ पर ही समझ गया था कि टूलू के फेंके गये ढेले से पानी में उठी अस्थिरता अभी स्थिर नहीं हुई है। लेकिन अब कौन-सी बात हो गई ?

ध्रुव ने जल्दी से कहा, 'वह चली जा रही है।'

'चली जा रही है !' शुभ विचलित हुआ, 'इतने तड़के कहां चली जा रही है ?'

'डोवर लेन जा रही है। कह रही है अब नहीं आएगी।'

'दिमाग गड़बड़ है या पागल हो गई है ?' कहते हुए शुभ उठ खड़ा हुआ।

तब भी कहो। अचानक यह सोच कर डर गया था कि कुछ नींद की गोलियां न खा बैठी हो महिला। 'चली जा रही है'—बात एक खास तात्पर्य रखती है। खैर,

नितान्त साधारण-सी बात पर जा रही है। वही मान-अभिमान हुआ होगा, तभी मायके जा रही है।

इस कमरे में आ कर शुभ ने देखा, भाभी के कमरे की मेज पर छोटी-मोटी बहुत सी चीजें रखी हैं। विस्तर पर सूटकेस खुला पड़ा है और अलमारी के पल्ले भी। नीता वार्डरोब के पास न जाने क्या करती फिर रही है।

दरवाजे के पास खड़े हो कर शुभ बोला, 'क्या हुआ भाभी ? सुबह यह कैसा समारोह है ?'

कहने जा रहा था, 'यह रणसज्जा कैसी ?' संभाल लिया।

एक बार मुँह फेर कर देख कर नीता अपने ढंग से व्यंगात्मक हँसी हँस कर बोली, 'वीर पुरुष रामचन्द्र जा कर क्या लक्ष्मण भाई को बुला ले आए हैं ?'

कमरे मे घुस कर शुभ ने खाट पर सूटकेस एक किनारे सरकाते हुये जगह बनाई फिर बैठते हुए बोला, 'बुलाया नही है, मैं स्वयं आया हूँ, कह सकता तो सुनने में अच्छा लगता, लेकिन झूठ बोलना पड़ेगा। तुम तो मेरी नींद से अनजान नहीं हो। खैर, यह तैयारी किस बात की है ?'

'बुला लाते वक्त बताया नही है क्या ?'

'बताया है। पर तुम जैसी महिला, आदि और अकृत्रिम उस बनी-बनाई प्रथा के अनुसार गुस्सा होकर मायके चली जा रही हो, ऐसी अद्‌भुत बात पर विश्वास नही कर पा रहा हूँ।'

आलमारी में से चुन कर बहुत सारी साड़ियाँ खाट पर रख कर नीता हँसते हुए बोली—'मुझे खुद विश्वास नही हो रहा है, लेकिन क्या करूँ ? यह तो मानते हो न कि स्त्री जाति को भगवान् ने आक्रोश में आकर बनाया था। असह्य होते हुए भी 'जिधर दो आँखें ले जाएँ' यह कह कर एक ही कपड़े में जाया तो नहीं जाएगा न।'

'समझा ! लेकिन अचानक एक तुच्छ कारणवश ऐसी बेचैन होने वाली लड़की तो तुम नहीं हो....।'

जानबूझ कर खुशामदी भाषा का प्रयोग किया शुभ ने।

नीता सूटकेस में साड़ियाँ रखते हुए बोली, 'अचानक' नहीं भी हो सकता है....'

'अच्छा बाबा, मान लिया, काफी दिनों से जमा हो रहा था, वगैरह-वगैरह.... लेकिन इन अभागे प्राणियों का हित सोच कर, न हो....'

'नहीं ! अब नही हो सकता।'

'भाभी, हाथ जोड़ता हूँ। तुम्हें 'नाटक' शोभा नहीं देता है। जरा कन्सीडर करो।'

'बचपने से क्या लाभ होगा, शुभ ?'

नीता ने दूसरी तरफ मुँह फेर कर कहा, 'मेरी वजह से घर की लड़की घर न आ सकेगी, यह तो नहीं हो सकता है न ?'

'ओह ! यह है ! अर्थात् उस शैतान, बदमाश लड़की के लिए घर की बहू को

अपना घर त्यागना पड़ेगा।'

नीता अब हँसी नहीं, हालांकि उसके होंठों पर व्यंगात्मक हँसी की झलक बनी रही ! अब नीता बोली, 'मकान अपना' है या नहीं यह देखना जरूरी है।'

शुभ ने आखिरी कोशिश करते हुए कहा, 'लेकिन पिताजी का क्या होगा ?'

'वाह ! होगा क्या ? तुम लोग हो, फिर लड़की के आने की बाधा भी दूर हुई, इसके अतिरिक्त....'

कौतुकपूर्ण स्वर में बोली, 'अब छोटी गृहणी को जल्दी ले आओ !'

शुभ कहना तो नहीं चाहता था। पर मुँह से बात निकल ही गई, 'उसने तो कल ही जवाब दे दिया है।'

'जवाब दे दिया है !' नीता आसानी से आश्चर्य नहीं प्रकट करती है, फिर भी अचानक आश्चर्यचकित हुई। बोली, 'जवाब देने जैसी अवस्था अब भी है क्या ?'

'अरे नहीं ! नहीं ! उतना नहीं।....उसका कहना है कि अलग फ्लैट लिए बगैर वह नहीं आएगी !'

नीता धीरे से बोली, 'अक्लमंद लड़की है।'

उसके बाद जल्दी-जल्दी मेज की चीजें एक हैंडबेग में भरते-भरते बोली, 'मेरी भी वही शर्त है। देखना चाहती हूँ कि अपनी जगह में मुझे रखने की क्षमता मेरे जन्म-मरण के मालिक में है या नहीं।'

शुभ निश्चिन्त हुआ। मन ही मन बोला, अर्थात् चिरविच्छेद नहीं, जिद् का मामला है। अभागे ध्रुव बाबू का इस घर का दाना-पानी खत्म होने वाला है।

उसके बाद....

हाँ, मन के अगोचर में पाप नहीं होता। और भी गहराई तक गए बगैर जी नहीं माना। सारी चिन्ता, बाधा तो पिताजी है। उनका मामला निपट जाता तो प्राब्लम ही सॉल्व हो जाता। आज के दिनों में मकान कितना मँहगा पड़ता है ? इसे बेचा जाए तो दोनों भाइयों का फ्लेट बन जाए।...हालांकि एक कांटा टूलू है।....गाँव की उस सम्पत्ति का वैलूएशन करना चाहिए।...वह रखना चाहे रखे। वरना उसके लिए भी खरीददार ढूंढना पड़ेगा।

मन को एक चपत लगाया शुभ ने।

छि:, मैं यह सब क्या सोच रहा हूँ ? जिसे जो होना है होगा। तीन तरह की तीन महिलाएँ सिर्फ फन उठाए बैठी हैं—उन्हें मैनेज करने की हिम्मत किसमें है ?

फिर भी प्रभुचरण के हार्ट की हालत पर ध्यान चला ही गया।

नीता के कमरे से उठा। सिर्फ बोला, 'खैर, कुछ दिन पिता के घर का आराम भोग लो जाकर।'

नीता बोली, 'कुछ दिन या हमेशा, यह तो मेरे मालिक की कैपेसिटी पर निर्भर है।'

परन्तु नीता के मालिक ने भाई से कहने के पहले और बाद में भी बहुत कोशिश की थी। राजा के नाम से मन बदलना नहीं चाहा था क्या?

नीता ही बोली थी, '*इस बात की परीक्षा भी हो जाए। अच्छा ही होगा। देखूं,* राजा अपनी मां को चाहता है या मकान को चाहता है।'

अन्त में ध्रुव ने यहां तक कहा, 'पिताजी और कितने दिन के मेहमान हैं? उसके बाद उनकी लड़की को प्यार से कौन बुलाने जा रहा है? मकान बेचने के रुपये में से जितना उसे मिलना होगा, दे कर कहूंगा—खिसको...।'

'यह बातें मुझे बड़ी अरुचिकर और 'असभ्य' लग रही हैं,' नीता ने क्लान्त स्वर में कहा। साधारणतः वह ऐसे बात नहीं करती।....यह बात शायद राजा से बातें हो जाने के बाद की है।

फिर भी ध्रुवचरण ने कहा था, 'जो कुछ सच है उसे तो आंखें बन्द कर के अस्वीकार नहीं किया जा सकता। डॉक्टरों ने तो पिताजी के मामले में जवाब दे ही दिया है। हो सकता है, थोड़े दिनों की बात हो....इसके अलावा आखिरी दिनों में उनके मन को चोट पहुँचाना उचित नहीं होगा।'

'ऐसी क्या बात है कि उनके मन को चोट पहुँचेगी?—यही बात मेरी समझ में नहीं आ रही है?'

नीता चली गई थी।

आखिर दुर्घटना घटित हो कर ही रही। ध्रुव सोचने लगा, जब कि कल ही वहां से चलने से पहले हम लोग...

और कल रात को, इस गृहस्थी की 'मुख्य समस्या' का पहाड़, जब अन्धकार समुद्र में डूबता चला जा रहा था, तब एक कल्पित शक्ति से कातर-विनती कर रहा था—'वनशोभा, वनशोभा, इस तरह से अकस्मात् मुझे चलने के लिए मत कहो। इन लोगों को इससे जबरदस्त आघात पहुँचेगा। कहां खुशी से हल्ला-गुल्ला करते आ रहे हैं और कहां अपने बाप का मरा मुंह देखेंगे? जरा सोच कर तो देखो, उनकी क्या हालत होगी?'

हां, *अज्ञात लोक में जाकर खो गई 'वनशोभा' नामक महिला को ही सम्बोधित* कर, प्रभुचरण ने निवेदन किया था। जैसे वनशोभा ही उनके इस लोक में रहने न रहने देने की मालिक हैं।

लेकिन अगर अपनी किसी अलौकिक शक्ति के बल पर प्रभुचरण जान जाते कि 'उनमें' से एक, दूसरे दिन सुबह ही अपने जीवन की समस्या का सहज समाधान ढूँढने चल देगा, तब क्या वे उस गहरे अंधकार से बाहर आना चाहते ?

नहीं। वैसे किसी अलौकिक शक्ति के अधिकारी नहीं हैं प्रभुचरण। इसीलिये समुद्र में गिरने पर जैसे आदमी हाथ बढ़ा कर तिनके को ही पकड़ना चाहता है अथवा तिनके की तलाश में लहरें टटोला करता है, वैसे ही प्रभुचरण भी चेतनाहीन अँधेरे में डूबते वक्त भी बिन्दुमात्र चेतना को मुट्ठी में पकड़ कर बहने का प्रयास करने लगे, 'भगवान्, कम से कम आज की रात मुझे जीवित रहने दो।'

अतएव बहुत-बहुत समय तक उसी गहरे अँधेरे समुद्र के नीचे डूबे रहने के बाद सुबह रोशनी का मुँह देखा तो प्रभुचरण कृतार्थ हो गये।

बोले, 'वनशोभा, तुम मुझे कितना प्यार करती हो।' बोले, 'भगवान्, सारी उम्र अपनी इच्छा के अहंकार पर चलता रहा हूँ, तुम्हारे बारे में कभी सोचा भी नहीं था कि तुम हो या नहीं।....आज लग रहा है, तुम हो। अब देख रहा हूँ तुम कितने दयालु हो।'

ठीक उसी समय प्रभुचरण यह सब सोच रहे थे जब उनका प्राणों से अधिक प्रिय प्रथम सन्तान अपने जीवन की आकस्मिक भयावह समस्या का समाधान इस तरह से ढूँढ रहा था—'कल रात जब हम लौटे थे तभी अगर 'वैसी' परिस्थिति में फँसते ?' ....सोच कर अपनी बात का मन ही मन समर्थन किया, 'सोचना पाप जरूर है, लेकिन कुछ अप्रत्याशित तो होता नहीं। डॉक्टर ने तो कह ही रखा है, 'कभी भी...'

वही 'कभी भी' अगर देवी कृपा से कल शाम को ही आ गया होता ? तब घटना दूसरा ही मोड़ लेती। तब अवश्य ही मीता नाम की जिद् की मूर्ति अपनी कठोरता भूल जाती। व्याकुल होकर कहती, 'हाय, यह क्या हुआ ?'

और ! और दूसरी जिद्दी लड़की जो बाप के दरवाजे से घमंड के कारण वापस चली गई थी पाँव पटकते हुए—उसे पकड़ कर लाया जाता। तुरन्त पद् से पछाड़ खाकर गिरती और कहती, 'ओ भइया ! हम क्यों वहाँ मरने के लिये गये थे ? अरे भाभी, मुझसे अब रहा नहीं जाता है।'

कौन जाने, भाभी की गर्दन पकड़ कर रोने बैठ जाती।

ध्रुव भी समुद्र में बहते तिनके की तरह इस 'मनोहर' तस्वीर को मुट्ठी में पकड़ने की कोशिश कर रहा था।

वही तस्वीर, अभी अचानक खींची जा सकती है—यह भी सोच रहा था ध्रुव। कल रात कैसे बेखबर, लथ पथ से पड़े सो रहे थे प्रभुचरण। देख कर डर लग गया था, इसीलिये बुलाया नहीं था।....इच्छा भी तो नहीं हुई थी....सोचने में शर्म कैसी ?

प्रति दिन, प्रति पल तो उसी अमोघ 'चरम क्षण' की इन्तजारी में तैयारी चल रही है। प्रभुचरण के हृदयवान पुत्रों की आन्तरिक प्रार्थना सुन कर क्या वह 'चरम क्षण' ठिठक कर खडा हो जायेगा? लौट जायेगा?

अगर ऐसा नहीं तो ध्रुव के सोचने में हृदयहीनता की झलक कहाँ मिलती है? यह निश्चित घटना अगर प्रयोजन के समय ही घट जाये तब तो प्रभुचरण को विचारवान पिता कहना ही पड़ेगा।

हाथ-पाँव बँधे जानवर की तरह सिकुड़ा सिमटा सा बैठा, ध्रुव यही सोच रहा था।

जैसे अचानक हलचल मची, घर में काम करने वाले नौकर हो-हल्ला कर रहे हैं। देख कर, समझदार शुभ चुपचाप अपनी भाभी को लाने चला जाता है। वैसी हालत में क्या कोई लड़की कह सकती है, 'मैं फिर भी नहीं जाऊँगी।'

नहीं-नहीं, ऐसा नहीं कह सकती है।

लोक-लज्जा, चक्षु-लज्जा, माँ-बाप के सामने आत्म-सम्मान की रक्षा—उसके सामने होंगी। अतएव कहना ही पड़ जायेगा, 'चलो। चलती हूँ। नहीं, तैयार होना क्या?...जैसी हूँ वैसी ही चलूँगी।'

ध्रुव तस्वीर पर और रंग चढ़ाता है। नीता के माँ-बाप इस खबर को सुन कर चुप कैसे रह सकेंगे? उनमें भी सामाजिकता-बोध है, अतएव वे लोग भी आ जायेंगे।

और उसी गड़बड़ी में एक दूसरे के सामने सहजता का भान करते-करते सभी सहज हो जायेंगे।

अगर वास्तव में इच्छा-शक्ति में शक्ति होती, तो भगवान् जाने क्या हो जाता। लेकिन कलियुग में सभी शक्तियाँ शक्तिहीन हैं। उसी काल्पनिक तस्वीर में रंग चढ़ाते हुए ध्रुव नामक चित्रकार जिस समय पिता की अन्तिम शय्या के पास डबडबाई आँखें लिए खड़ा था, उसी समय उसके कानों से आ टकराया एक शिशु कण्ठ का चीत्कार।

'ए लोकनाथ, क्या सोचा है तुमने? अभी तक खाना क्यों नहीं लगा है? स्कूल जाना नहीं है क्या?'

ध्रुव चौंक पड़ा।

राजा ऐसे बोल रहा है?

राजा एक साथ इतनी बातें कह गया?

याद आ गया, राज्यहीन राजा को आज अपनी चिन्ता अपने आप करनी पड़ रही है। अरे! आत्ममग्न ध्रुव बैठा-बैठा सिर्फ अपने इर्द-गिर्द वृत्त रचना कर रहा है। इस बात का तो ध्यान हो नहीं रहा कि नीता के इस निरर्थक, मार्मिक निष्ठुरता

ने एक शिशु हृदय को कितना आघात पहुँचाया है।

यह चिल्लाहट प्रभुचरण ने भी सुनी।

अवसन्न हो गई रात पार करके, जब वे भगवान् के पास कृतज्ञता प्रकट कर रहे थे, तभी धीरे-धीरे सोचने की कोशिश करते है, 'ये लोग कितनी रात को लौटे थे? लौट कर मेरे कमरे मे आये थे क्या?....मुझे सोते देख कर चुपचाप लौट गये होंगे। टूलू की आवाज़ तो नही मिल रही है, वह क्या मुझसे मिले बगैर चली जायेगी?'

ऐसा भी कहीं सम्भव है? पर, मकान ऐसा चुपचाप है कि टूलू की उपस्थिति को स्वीकारना कठिन है।....वे रात ही लौट आये थे, मधु से यह बात पता चल गई थी। सुबह मुँह धुलाने आया था, उसी से मालूम हुआ, हाँ, रात को नौ बजे लौटे हैं।

वह बदमाश एक सेकेंड के लिए भी रुका नही।

जैसे उसकी ट्रेन छूट रही हो।

मुँह धुलते ही लोकनाथ सुबह का नाश्ता रख गया। वह भी नही खड़ा हुआ। पर जरूरत की हर चीज रख गया था—पानी, तौलिया, दवा की शीशी, चम्मच, गिलास।....यह भी कह गया था, 'उठ कर बैठियेगा नही बाबूजी। लेटे-लेटे ही सब कर लीजिये। कल रात आपकी तबियत ठीक नही थी। ऐसी गहरी नींद सोये थे कि डर लग गया था।'

चला गया। दो एक बातें पूछ सकूँ, वह मौका भी नहीं दिया।

खड़ा रहता तो प्रभुचरण कह सकते थे, 'एकदम चिरनिद्रा मे ही सोया था। यह तो भगवान् की दया है जो फिर रोशनी का मुँह देखा। तुम्हें इसका पता कहाँ चला होगा?'

भगवान् की दया ही कहते हैं।

जब कि ध्रुवचरण सोच रहा था—'भगवान् अगर चाहते तो....

पर वह बात जाने दो। प्रभुचरण ने भी शिशुकण्ठ से निकली रूढ़ बातें सुनी।

यह किसकी आवाज़ है?

बबुआ की? लेकिन बबुआ स्कूल जाने की बात क्यों करेगा? फिर? राजा? राजा की आवाज़ मे ऐसी असहिष्णुता? वह स्वयं खाना क्यों माँग रहा है? उसकी माँ कहाँ है? चिल्ला कर बुलाना चाहा—'ध्रुव! शुभ! बहूरानी।'

किसी की आवाज़ नहीं मिली। बड़े बेचैन हो गये। मन मे आया, दौड़ कर जाकर देखें। सोचा, हालत कुछ अस्वाभाविक है। कहीं जैसे छन्द-भंग हुआ है।.... इन लोगों ने आकर नीलकान्तपुर के किस्से नही सुनाये? वहाँ वाला मकान क्या टूट गया है? इसीलिये कहने की हिम्मत नही हो रही है?

लेकिन उनकी समझ में यह क्यों नही आ रहा है कि प्रभुचरण को इससे और भी ज्यादा कष्ट होता है। एक समझौता या फैसला होना ठीक रहता है....चुप्पी से तो बेहतर है।

या यह सब कुछ न होगा, यूँ ही अपने मे व्यस्त होंगे। नीता की तबियत

खराब तो नहीं है ? हो सकता है, कल थकी है। इसलिये राजा अपना दायित्व निभा रहा है।....

लेकिन लड़के तो यह सब आकर बाप को बता सकते हैं। इतना ख्याल भी नहीं रखते हैं कि अभागा बाप इसी खबर के जरिये तुम लोगों के बारे में जान पाता है। उसमें भी कंजूसी ?

तुम लोगों के मन में एक बार भी नहीं आता है कि यह घर-द्वार, सजी-सजाई गृहस्थी जिसे लेकर तुम लोगों का जीवन-चक्र चिकने रास्ते पर लुढक रहा है—उसका सब कुछ अवलम्बनहीन, असहाय इस आदमी की देन है।....जो आदमी कुछ दिनों पहले भी पृथ्वी पर पाँव पटक कर चलता था।

मनुष्य इतना अकृतज्ञ है ? और इतना भुलक्कड़ ? वरना इतनी जल्दी पिता की दृढ बलिष्ठ कर्मठ मूर्ति भूल कैसे गये ?...उनके हाव-भाव से लगेगा, प्रभुचरण नामक आदमी हमेशा से ही ऐसा शक्तिहीन असहाय है। उसकी वजह से उनका जीवन पत्थर-सा भारी हो रहा है। और....और वनशोभा नामक उज्ज्वल प्रकाश कभी इस गृहस्थी का केन्द्रबिन्दु नहीं रही।

अवहेलना, असम्मान, उदासीनता....इनकी आकृति बड़ी सूक्ष्म होती है। आँखों से दिखाई नहीं देती है। परन्तु अन्दर ही अन्दर भयावह रूप से सालती है।

प्रभुचरण के मन के भीतर हो रही सूक्ष्म जलन को समझने की क्षमता किसी में नहीं है।

सभी सोचते हैं—ऐसे 'राजसी ठाट' में रह कर भी असन्तुष्ट हैं। असल में इनमें 'सन्तोष' नामक चीज है ही नहीं।

अचानक आश्चर्य-सा हुआ।

'बहत्तर साल' सुनने में कितना लगता है। बचपन में उम्र की यह संख्या कितनी बड़ी लगती थी। लेकिन अब लगता है कितना कम समय है ? कहाँ से कब यह वक्त निकल गया।

'जीवन' नामक एक वस्तु को पाने के लिये कब से दौड़ रहे हैं। बार-बार लगता था, जल्दी भविष्य में वह वस्तु मिल जायेगी। दौड़-धूप बन्द करके, पंख समेट कर, हाथ आये उस पक्के फल को, बैठे-बैठे मजे में चखेंगे।....अब अचानक देख रहे हैं, वही पक्का फल उनके हाथों से निकल गया है।

अब लग रहा है, बहत्तर वर्षों को कहाँ जी भर कर भोग पाये ? अनुभव ही कब किया है ?

लेकिन ये लोग एक बार भी इस कमरे में आ क्यों नहीं रहे हैं ? तब क्या कोई दुर्घटना घट गई है ? दूर से रास्ते में आते वक्त—

प्रभुचरण का सारा शरीर रोमांचित हो उठा।

इसीलिये क्योंकि टूलू नहीं दिखाई पड़ रही है ?

टूलू के घर का कोई नहीं।

प्रभुचरण से अब नहीं रहा गया। समस्त शक्ति लगा कर चिल्ला उठे—'ध्रुव।'

ध्रुव नहीं, शुभ आया।

आकर देखा, पिता जी खाट पर पाँव लटकाए बैठे हैं। कुछ इस तरह से, अब और देर की तो नीचे उतर कर खड़े हो जाएँगे।

वहीं रुक गया। बोला, 'इसके क्या मतलब हैं ?'

फटी आवाज में प्रभुचरण बोले, 'तुम लोग इस कमरे में आ क्यों नहीं रहे हो ?'

शुभ ने मेज़ पर रखी प्लेट की तरफ देख कर, भौंहें सिकोड़ीं, 'लोकनाथ नहीं आया था ?'

उसी आवाज में प्रभुचरण बोले, 'आया था। एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।'

गम्भीर होकर शुभ ने कहा, 'क्या जानना चाह रहे थे ?'

'तुम लोग इतने चुपचाप क्यों हो ? तुम लोग मुझसे कुछ जरूर छिपा रहे हो।'

शुभ ने निर्दयतापूर्वक कहा, 'सारी बातें आपको बताना होगा, इसके कोई अर्थ है ? आप क्या कर सकेंगे ?'

हाँ, समय-समय पर शुभ इसी ढंग से बातें करता है। ध्रुव मुँह पर कुछ कहता नहीं है। जो कहना चाहता है, मन ही मन कहता है। पर शुभ की बोली ऐसी ही धारदार है।

प्रभुचरण विस्मित होकर बोले, 'मैं कुछ कर नहीं सकूँगा, इसीलिये मुझसे कुछ कहा नहीं जायेगा ? किसी के साथ कोई दुर्घटना हो जाये तब भी नहीं ?'

'दुर्घटना ? क्या मतलब ?'

प्रभुचरण की आवाज मानो और फट गई—'इसका अर्थ तो तुम्हीं लोग जानो। टूलू कहाँ है ? वे क्या कार-एक्सीडेण्ट....'

'वाह, खूब !'

शुभ ने बाप का चेहरा तेज छुरी से मानो चीर दिया—'सुन्दर ! हम लोगों के लिए आपकी धारणा बड़ी सुन्दर है ! वे कार एक्सीडेन्ट मे 'निहत' हुये हैं और हम परम निश्चिन्त हो खा-पी रहे हैं, सो रहे हैं और सारी बातें आपसे छिपा रहे हैं। आश्चर्य होता है। अब देख रहा हूँ, भाभी ने आपको बिल्कुल सही पहचाना है। टूलू ही आपके लिए सब कुछ है। अन्य कोई और कुछ नहीं। ठीक है, आप टूलू को लेकर रहिए। आपको हमारी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन दया करके अपने ऊपर अत्याचार करके बीमारी मत बढा लीजिएगा, जिससे हमें परेशानी हो। आपकी टूलू ठीक ही है। मिजाज दिखा कर अपने घर चली गई है। खुशामद करके ले आना चाहते हैं तो ले आइए।'

शुभ चला गया।

इस तरह बड़ा-सा पत्थर हार्ट के मरीज के सीने पर पटक कर मजे से चला गया। जबकि इसी बाप के एक बार बैठने की कोशिश पर 'हाय हाय' करने लगते हैं।

नीता के पिता आश्चर्य से बोले, 'क्या मामला है ? ऐसे वक्त पर तू अकेली कैसे ? टैक्सी में सूटकेस लेकर ...'

सुबह गेट के पास चहलकदमी करना उनकी आदत है, इसीलिए नीता उनके सामने पड़ ही गई। और अकेली टैक्सी पर आई है यह बात भी नहीं छिप सकी। जरा-सा फर्क देखा नहीं कि 'मुसीबत' का ही ध्यान आता है। खासतौर से बूढ़ों को। 'मुसीबत' की बात सोच कर वे कांप उठे। दामाद को कुछ हुआ तो नहीं ?....लेकिन इसके लिए नीता यहां क्यों दौड़ी आयेगी ? फोन है, घर पर नौकर हैं, देवर है।

नीता बोली, 'चली आई हूं।'

'यह तो ठीक किया है। चल, चल कर देखें तेरी मां जागी कि नहीं।'

'आपको देखने आने की जरूरत नहीं है, मैं ही जा रही हूं', कह कर नीता दो कदम आगे बढ़ी, फिर पलट कर खड़ी हुई। अजीब तरह से हंस कर बोली, 'अच्छा पिता जी, अगर कहूं कि हमेशा के लिये चली आई हूं तो तुरन्त क्या विदा कर दोगे ?'

'क्या ? क्या बक रही है ? मजाक करने के लिए और कुछ मिला नहीं।....मां के साथ कहीं जाने का प्रोग्राम है क्या ?'

फिर चहलकदमी शुरू कर दी, उन्होंने।

लड़की की हंसी ने उनके हृदय को झकझोर डाला। यह कैसी हंसी है ?

नीता की मां भी यही बोली, 'यह क्या बात है, नीतू ? इस बात पर तू हंस रही है ? यह क्या कोई हंसी की बात है ?'

'हंसने की बात नहीं है ? कन्धों से उतारी लड़की फिर कन्धों पर आ बैठी, सोच कर तुम लोगों का चेहरा उतर गया है। मुझे यही उतरा चेहरा देख कर बेहद हंसी आ रही है।'

'चुप रह ! कन्धों पर क्या गिरेगी आकर ? अचानक इस तरह से चले आना... इसका कुछ 'अर्थ' भी तो होगा।'

'दुनिया में क्या हर बात के तात्पर्य या अर्थ होते हैं, मां ?'

नीता फिर मुंह तिरछा करके हंसी और बोली, 'डरो मत, अभी तुम्हारे दामाद के नाम पर डाइवोर्स का केस करने नहीं आ रही हूं।....सिर्फ ससुर का तिमंजिला मकान असहनीय हो उठा था इसी घृणा से चली आई हूं।'

मां का मुंह आश्चर्य से खुल गया, 'यह कैसी बात कर रही है, नीतू ? तेरे ससुर खराब आदमी नहीं हैं। इसके अलावा ससुर जिन्दा कितने दिन रहेंगे ? उसके बाद तो सब कुछ तेरा ही है।'

'जानती हूँ।'

नीता ने कटाक्ष किया, 'लेकिन यह भी तो हो सकता है, उनके दिन खत्म होने से पहले ही हमारे दिन खत्म हो जायँ।'

'आह! यह सब कैसी बातें कर रही है?'

'यही सच बात है माँ। यह तो अवश्य ही जानती हो कि इस बीमारी में ऐसा भी होता है। खैर, उस बात को छोड़ो। ससुर के मकान के तीन हिस्से के एक हिस्से में मुझे कोई रुचि नहीं है। बाकी दोनों को ही लेने दो।'

माँ चौंकीं। शरीर में झुरझुरी-सी उठी।

लड़की का दिमाग तो नहीं खराब हो गया है, सोच कर चिन्ता हुई।...नहीं तो उस बूढ़े ने अपमानजनक कुछ कहा होगा। मेरी लड़की बड़ी आत्माभिमानी है। मैं माँ हूँ फिर भी कितना सोच-समझ कर बात करती हूँ।...

बोली, 'नीतू, बच्चों की तरह बातें मत कर। आजकल उतने बड़े मकान का दाम क्या है, कुछ जानती है?'

'यही तो बात है।'

नीता गम्भीर हो कर बोली, 'दुनिया तो सिर्फ घर-मोटर आदि चीजों का दाम लगाया करती है, जिसे रुपये-आने-पैसे से समझा जा सके। यह कोई नहीं सोचता है कि अन्य चीजों का भी मूल्य होता है। यह चीज तो इसी जिन्दगी के लिए है। उसी चीज को सँभालते-सँभालते अगर जिन्दगी बरबाद हो जाए तो फायदा होगा या नुकसान? यही बात ध्रुव को नहीं समझा पाती हूँ तो तुम्हें क्या समझा सकूँगी?'

नीता ने इससे पहले कभी क्या इतनी बातें की थी?

माँ को कुछ उचित नहीं लगा, अतः उन्होंने आगे बात नहीं बढ़ाई। लड़की को तो पहचानती ही हैं। हो सकता है समझाएँगी तो कह बैठेगी—'तो फिर जा रही हूँ।' पिता के दुमजिले से भी अरुचि हो जाएगी।

जल्दी से बोली, 'ठीक है बाबा, जो उचित समझो वही करो। अब चाय पीना हो तो आ।'

महिला, आधुनिक पोशाक जरूर पहनती हैं पर सोचने का ढंग आधुनिक नहीं है। चाय का इन्तजाम करते हुए, सोचने लगीं, लड़की के मत की थाह पाना मुश्किल है।...इतने सुख की ससुराल है। समझदार और बुद्धिमती सास भी समय से हट कर रास्ता साफ कर गई हैं। दामाद भी गरुड़ का अवतार है। फिर भी मन में सन्तोष नहीं है। जैसे जीवन में कुछ मिला ही नहीं है...नीता की माँ की समझ में यह न आया, जीवन में और क्या पाना शेष है।

तू क्या कम स्वाधीन है?

जब जहाँ मर्जी जा रही हो, आ रही हो। जो इच्छा होती है खरीद रही हो। स्वाधीनता का और क्या रूप होता है? असुविधा कहने को इतनी ही है कि छुट्टी के दिन, यहाँ आ नहीं पाती हो। ननद आ पहुँचती है। और हमारे समधी जी के लड़के, बाप का मन रखने के लिए, बहन-बहनोई के नाम पर तटस्थ रहते हैं। लेकिन यह कोई परम दुःख की बात तो है नहीं....ये लोग असल में 'असुविधा' और 'दुःख' को एक ही आसन पर बैठा कर जीवन का तालमेल बिगाड़ देते हैं।

लड़की को क्या कहे? अपने लड़के-बहू भी तो यही सोच कर अन्यत्र चले गए हैं। बस, भगवान् की कृपा ही थी कि ज्यों यहाँ से गए त्यों ही लड़के का तबादला हो गया। 'करुणाकना' के प्रति भगवान् की करुणा थी... लोगों के आगे इज्जत बच गई।

करुणाकना की घर-गृहस्थी, कपड़े-लत्ते, आचार-व्यवहार देख कर कोई सोच ही नहीं सकता है कि उनमें आज भी वही चिरपुरातन संस्कार जीवित हैं कि विवाहित पुत्र अन्यत्र कहीं रहने चला जाएगा तो माँ-बाप का सिर नीचा होता है। रग-रग में यही संस्कार समाया होने के कारण मन ही मन उन्होंने लड़की के पक्ष में राय न देकर, राय दी समधी के पक्ष में।

आहा! बेचारे बीमार वृद्ध आदमी! अगर कुछ नासमझी करते हैं तो क्या हुआ? बुढ़ापे में पत्नी मर जाती है तो पुरुष नासमझ हो ही जाता है।...यही अगर अभी मैं मर जाऊँ, तो देख लेना तुम्हारे बाप को लेकर कितनी परेशानी हो जाएगी।

लेकिन करुणाकना की तरह कितने आदमी हैं जो अपनी जगह पर दूसरे को और दूसरे की जगह पर अपने को रख कर न्याय करते हैं?

बाप को दो-चार उचित बातें सुना कर शुभ सन्तुष्ट हुआ। ठीक हुआ है। 'बीमार' के नाम पर कब तक चुप रहा जा सकता है? स्पष्ट है, टूलू ही उनकी जान है। ठीक है, उसी को यथासर्वस्व दे दो। मुझे तो इस घर से जरा भी मोह नहीं है। छोटा-सा एक फ्लैट खरीद लेना, मेरे लिए कुछ मुश्किल नहीं। रानू ने तो कल ही कह दिया है, अलग फ्लैट नहीं लूँगा तो वह नहीं आएगी। इस तरह की जटिलता देख कर ही वह विचलित हो उठी है।....भाभी की मनोदशा भी यही लगती है।....झटपट यहाँ से खिसकने में ही भलाई है। देर करने से जाल में फँसने का डर है।

हालांकि गीता की तरह बैठ कर त्याग का मन्त्र नहीं पढ़ता है शुभ। वह अच्छी तरह जानता है कि लड़कों को बताए बगैर विल बनाना प्रभुचरण के लिए सम्भव नहीं है। लड़की-दामाद मदद करेंगे? हूँ! उनमें तो बड़ा दम है। अतएव भविष्य में जो होगा वही होगा। पिता की सम्पत्ति के तीन मालिकों में से कोई एक अकेला यह मकान बेच डाले, ऐसा हो ही नहीं सकता है। इसलिए जितना रहना होगा रहेगा ही।

प्रभुचरण का जीवित रहना ही सारा गड़बड़ कर रहा है।

शुभ भी करुणाकान्त की तरह आधुनिक होते हुए भी पुराने जमाने का विचार रखता है। चिढ़ कर एक बार फिर वही बात सोची, यही एक बड़ा गन्दा कानून बन गया है—'लड़कियों का पैतृक सम्पत्ति' पाना। रबिश! इसके कोई अर्थ नहीं होते हैं।

जाल मे फँसने के भय से जल्दी-जल्दी जाल मे निकल भागने की चिन्ता में लग गया, शुभ।

जबकि यह सब कुछ न होता अगर प्रभुचरण डॉक्टर की आशंका को काम में ले आते। अलिखित सन्धि के अनुसार, मन ही मन दोनों भाइयों ने घर बाँट लिया था और अपनी-अपनी गृहस्थी सजा कर रहने लगे थे। और इसी तरह मन ही मन आलोचना द्वारा, ठीक कर चुके थे कि टुलू को नगद देकर विदा कर दिया जाएगा।....सब उलट-पुलट गया। फिर उस समय की महिलाओं की तरह शुभ ने सोचा, कैसे अशुभ समय में पिता जी के गाँव का मकान देखने गए थे हम लोग।

यही बात टुलू भी सोच रही थी। कैसे अशुभ मुहुर्त पर उस दिन पिता जी के गाँव वाले मकान में गए थे। एक प्रतिज्ञा करके मैं तो जाल में फँस गई हूँ। पिता जी को देखे कितने दिन हो गए है।

सरित क्षुब्ध हुआ था। अब तो वह पत्नी पर गुस्सा भी उतारा करता है। कहता, यह सब कुछ टुलू की ही गलती से हुआ। टुलू असहिष्णुता की चरम सीमा न पार करती तो परिस्थिति इस मोड़ पर न आ पहुँचती।

इस पर टुलू व्यंग करती—'हाय-हाय, हर हफ्ते दामाद की खातिरदारी, सुन्दरी सलहज के हाथों का खाना...यह सब न मिलने से साहब के प्राण हाहाकार कर रहे हैं।'

जबकि दो विपरीत दिशाओं को जाते मन, कभी-कभी एक ही बात सोचा करते हैं। अचानक अगर प्रभुचरण की हालत बिगड़ जाए...तब तो टुलू को प्रतिज्ञा भंग करनी ही पड़ेगी। और एक बार टूटी तो सब ठीक हो जाएगा। इसके तात्पर्य हुए कि शतरंज के खेल की इस जटिल परिस्थिति का समाधान हो सकता है, क्योंकि प्रभुचरण ही इस खेल के जबरदस्त मोहरे हैं। उन्हीं की चाल सब को मात दे सकती है।

माँ के अभाव ने राजा के मन में हाहाकार मचा दिया था। इस अग्नि में जलते हुए वह अपनी माँ के लक्ष्य को जानना चाहता है। राजा इसका बदला लेगा। माँ की इस अमानुषिक निष्ठुरता का बदला वह लेगा।... क्यों नहीं लेगा? पिता जी के साथ

झगड़ा हुआ और तुम राजा को छोड़ कर चली गई ? एक बार सोचा तक नहीं, कौन उसके कपड़े ठीक करेगा, कौन उसे पढ़ाएगा ?....इस बात की याद नहीं रही कि कुछ ही दिनों में राजा की टर्मिनल परीक्षा है ?

राजा माँ की तरह मितभाषी है। या माँ की इच्छा के प्रभाव ने बोलते समय, उसे मितभाषी बना दिया है।....उसकी एक आया थी, वह बच्चे के साथ तरह-तरह की बातें करती थी, छोटी-मोटी कविताएँ गाया करती थी। नीता सुन कर भौंहें सिकोड़ती। उससे कहती, 'छोटे बच्चे के आगे इस तरह से बक-बक मत किया करो। इससे बच्चे का ब्रेन डैमेज हो जाएगा।'

आया अवाक् हो गई। बोली थी, 'बच्चे को बहलाने के लिए बक-बक ही तो करना पड़ता है, भाभी जी।...कितने बच्चे पाले हैं मैंने।'

नीता ने अपने ढंग से हँस कर कहा था, 'पाला था या नहीं इसका प्रमाण ढूँढने कोई कहाँ जा रहा है ?....दूसरी जगह कहाँ क्या किया है यह मैं नहीं जानना चाहती हूँ, यहाँ यह सब नहीं चलेगा। उसके साथ ज्यादा हो-हल्ला नहीं करोगी।'

वह बेचारी नीता की बात का महत्त्व नहीं समझ सकी। नीता ने कुछ दिनों बाद आया को छुड़ा दिया। सभी को आश्चर्य हुआ, 'यह क्या ? इतनी अच्छी, ऐसे काम की औरत....'

नीता ने ससुर से कहा था, 'इस बात पर आप क्यों परेशान हो रहे हैं पिता जी ? यह तो निहायत ही घरेलू डिपार्टमेण्ट है।'

उस समय प्रभुचरण बिस्तर पर पड़े निर्जीव प्राणी नहीं थे। पृथ्वी के सीने पर पाँव पटक कर चला करते थे। फिर भी यह बात कही थी उसने।....ननद-ननदोई के विस्मित होने पर बात उसने बिलकुल ही टाल दी, 'कौन कहाँ काम से ज्यादा काम बिगाड़ रहा है, इसका पता क्या हर किसी को लग सकता है ?'

शुभ से कहा था, 'एक छोटे से नुकसान के डर से क्या बड़ा नुकसान सह लेना अक्लमंदी है ?'

और ध्रुव से कहा था, 'सामान्य एक नौकर या नौकरानी को छुड़ाने या रखने की स्वाधीनता मुझे नहीं है, यह पता होता तो न छुड़ाती।'

खैर, तब से आया का झंझट ही मिट गया था।

उसी वजह से यह लड़का भी माँ की तरह स्वल्पभाषी है। ज्यादा बातों की खेती वह नहीं करता है....लेकिन दुनिया के एक फायदे के बदले में कई बार अन्य नुकसान बर्दाश्त करना पड़ता है।....बाहर प्रकाशित होने वाली बात इतनी अधिक मन में छिपाए रखने के कारण, लड़का उम्र से कहीं ज्यादा परिपक्व लगने लगा है। बाहर से समझ में न आने पर भी उसका अन्तर हर समय मुखरित रहता है। उसे किसी को कुछ कहना होता तो मन ही मन कहता।

बबुआ को वह अपने से बहुत अधिक निकृष्ट जीव समझता था। ऐसा ही समझने का अभ्यस्त था, परन्तु कई बार उसके इन खेलों में भाग लेने की इच्छा नहीं होती थी

क्या ? खासतौर से, इस घर में आते ही बबुआ फर्श पर जाकर ऐसे-ऐसे अभिनव खेल खेलने लग जाता कि मधु और लोकनाथ उस खेल में हिस्सा लेने को बाध्य होते। 'चोर-पुलिस' खेल में मजा आता है। राह चलते लोगों को अचानक रोक कर रिवाल्वर दिखा कर डराते हुए 'राहजनी' वाला खेल भी कम मजेदार नहीं। और अचानक पीठ पीछे से छुरा भोंक कर 'खून' कर डालने में तो मजे और रोमांस का अन्त नहीं।.... उसके बाद ही आहत की चिकित्सा करने के लिए भयानक अनुभवी डॉक्टर बन जाना फिर उसकी पीठ पर बैण्डेज बांधना भी कम मजेदार नहीं।

इतना सा लड़का है बबुआ, उसे इस खेल की छूट है। मैं रिवाल्वर ऊपर उठा कर रास्ता चलते आदमी को जब वह धमका कर कहता, 'रुको ! बिल्कुल मत हिलना।' तब नाटकीयता प्रकट करने से वह हिचकता नहीं। पर नीता के हिसाब से यह सब कुछ 'फूहड़' था। ऐसे खेल खेलने वाला लड़का 'अजीब' होता है।

अतएव राजा ऐसे खेलों में भाग नहीं ले पाता।....राजा बबुआ की तरह 'अजीब' तो बन नहीं सकता ? ऐसे खेल देखना भी पाप है।

उस वक्त राजा को जा कर सवाल लगाने पड़ते। सुलेख लिखना पड़ता। बबुआ और उसके माँ-बाप को समझाना पड़ता कि यह काम अत्यन्त जरूरी है।

उस समय राजा के 'मन का मुख' बड़बड़ाने लगता है, 'ओ ! जरा-सा खेलूँगा तो क्या सड़ जाऊँगा ?....बुद्धू बबुआ जानता क्या है ? मैं खेलता तो दिखा देता। वह तो गधों की तरह रिवाल्वर पकड़ता है—उस तरह से कोई पकड़ता है ? मेरे जैसा अच्छा रिवाल्वर उसके पास है ही कहाँ ? बबुआ तोड़ डालेगा, इस डर से, उनके आने से पहले यह सब छिपा कर रखना पड़ता है। इसीलिए तो बबुआ को समझा नहीं पाता हूँ कि कितनी बढ़िया-बढ़िया चीजें मेरे पास हैं।....हालांकि जरूरत ही क्या है ऐसे खिलौनों की जिनसे न खेल सकता हूँ, न किसी को दिखला सकता हूँ।'

बबुआ की स्वेच्छाचारिता, स्वाधीनता, जिद्दीपन, यह हालांकि सभी निन्दनीय हैं फिर भी इन्हीं बातों के लिए राजा बबुआ से ईर्ष्या करता है। और माँ कितना भी क्यों न कहे कि बुआ का दिमाग खराब है...बुआ की उदारता को वह कैसे अस्वीकार करे ? ...लड़के को जो जी में आये करने देना उदारता नहीं है क्या ?

माँ जिस समय गम्भीर हो कर कहती है, 'राजा, अपने सवाल लगा लो आ कर' —तब चूँ-चपड़ किये बगैर राजा चला जरूर आता है परन्तु 'मन का मुख' कहने लग जाता है—'ओ ! अभी अगर सवाल न लगाऊँ तो सवाल भाग जाएँगे जैसे !....और कैसे बुलाती हैं ? मुँह गोल कर के जैसे स्कूल की आण्टी हैं। क्यों ? क्यों ? बच्चे क्या जरा खेलते नहीं हैं ? राजा बच्चा नहीं है ? माना कि बबुआ बुरा लड़का है, लेकिन उसके साथ एक बार खेलने से ही खराब हो जाऊँगा ? स्कूल में क्या बुरे लड़के नहीं आते हैं ? वे क्या गन्दी-गन्दी बातें नहीं करते हैं ? क्या मैं यह सब सीखता हूँ ?'

यही आदत है राजा की।

अतएव अब राजा के 'मन का मुख' अनायास कहता जा रहा है, 'इसके अर्थ

हुए राजा को प्यार-प्यार करने की बातें सारी बेकार हैं। तुम सिर्फ अपने से ही प्यार करती हो, समझ चुका हूँ। जरा गुस्सा होते ही चल दी।....ठीक है। मैं भी इसका बदला लूँगा।'

माँ से बदला लेने की प्रतिज्ञा कठोर होती गई।...उस बदले को लेने का सर्वोत्तम तरीका है 'असभ्य लड़का' बन जाना! 'अजीब' लड़का बन जाने में ही ठीक रहेगा। 'इच्छा करूँ तो मैं बबुआ से भी ज्यादा खराब बन सकता हूँ', राजा ने मन ही मन कहा, 'वही बनूँगा। जैसा तुम कर्म करोगी वैसा ही फल भोगोगी। तब अगर कहा कि छि:-छि: राजा, तुम तो बबुआ से भी ज्यादा असभ्य हो गये हो। तब मैं चिल्ला कर कहूँगा, होऊँगा! जरूर हो जाऊँगा।....बहुत अच्छा होगा कि मैं असभ्य हो जाऊँगा। जो इच्छा होगी करूँगा। खाना खाने बैठूँगा तो फैला-फेंक कर उठ जाऊँगा। पढूँगा नहीं। फेल हो जाऊँगा, तब ठीक होगा। तब तुम्हे सही सजा मिलेगी।....तुम स्वयं कौन सी बड़ी सभ्य लड़की हो? पति के साथ लड़ कर, घर छोड़ कर चल देना, बड़ी अच्छी बात होती है न?'

राजा नाम के, गम्भीर इस छोटे बच्चे के मन में ऊँची उठती तरंगें और भी ऊँची उठने लगीं—उन्हें शान्त करने वाला कोई नहीं था। वहाँ किसी तरह अच्छा परिवेश, या वातावरण तक नहीं था।

अतएव राजा अपने नये 'जीवन दर्शन' के अनुसार चिल्लाया—'ए बदमाश मधु-दादा, मेरा जूता कहाँ है?' चिल्लाया, 'ए लोकनाथ दादा, गोश्त क्यों नहीं बनाया है? इस गन्दी मछली से मैं खाना नहीं खाऊँगा।'

लोकनाथ दौड़ कर आता, खुशामद करता। लेकिन कितनी देर? राजाबाबू अगर बेवजह गाली-गलौज करे तो? वह भी जवाब दे बैठता।—'मुझे क्यों कह रहे हो? मैं क्या करूँ? जो मिलेगा वही तो बनाऊँगा। तुम्हारी माँ तुम्हें छोड़ कर बैठी रहेगी....'

बात खत्म भी नहीं कर पाया बेचारा। परोसी खाने की थाली पछाड़ खा कर जमीन पर गिर कर टूट गई। लोकनाथ की बनियान फट कर शरीर से लटक आई। उसके सारे कपड़े में चावल-दाल-तरकारी सन गई।

दुःख तो इसी बात का बना रहा कि आज दर्शक के आसन पर नीता नहीं बैठी है। पर राजा तो बदला निकाल ही रहा है। इससे ज्यादा बबुआ भी क्या कर सकता है!

भगवान् जानता है कि कौन किस नियम से हिसाब करता है।

नीता ने एक बार पूछा था, 'एक छोटे से नुकसान के डर से, भविष्य में एक बड़े नुकसान के हो जाने की सम्भावना को मान लेना क्या बुद्धिमानी है?'—लेकिन आज

नीता से कौन पूछेगा कि, 'नीता! क्या तुम्हारे पास तुर्कसात छोटा है या बड़ा नापने का कोई साधन है ?'

आज नीता सम्पूर्ण अपना साम्राज्य चाहती है ,

जहाँ उसे किसी के लिए, इतना सा भी त्याग स्वीकार नहीं करना पड़ेगा । जहाँ 'नीता' के अतिरिक्त अन्य शब्द नहीं गूँजेगा । किसी बड़े को मान्यता देने का प्रश्न सामने नहीं होगा । किसी के असन्तुष्ट होने के भय से अपनी इच्छा पर लगाम लगाने की जरूरत न होगी । चाहे वह साम्राज्य इतना सा, छोटा ही क्यों न हो । फिर भी सम्पूर्ण रूप से स्वाधीन तो होगी । 'कर' अर्थात् 'टैक्स' नहीं देना पड़ेगा । कर देते-देते नीता थक गई है । पर इस वक्त नीता हिसाब नहीं लगा पा रही है कि उस 'कर' न देने के बदले में कितना विशाल साम्राज्य खो बैठेगी । सन्तान का प्यार ! सन्तान की श्रद्धा ।

पृथ्वी का सब पा कर भी जहाँ वजन इसी तरफ का भारी होता है....सन्तान का पलड़ा ।....उसी सन्तान को नीता भिखारी बना देगी । आज की ये नीताएँ—अपने सन्तान को हृदय में संचित ऐश्वर्य न दे सकेंगी ।

ऐसी सन्तानें पृथ्वी पर बेसहारा घूमेंगी । वे यह तक न जान सकेंगी कि अपने अतिरिक्त भी अन्य के लिए कुछ करना चाहिये । न जान सकेंगे, कभी मनुष्य के लिए ही 'मानव धर्म' का सविधान बना था ।

'मेरा हृदय बेहद कमजोर है', डॉक्टर ने बिलकुल गलत कहा है । डॉक्टर को वहम है ।

कई दिन से प्रभुचरण इसी बात को सोच रहे हैं ।....अगर डॉक्टर की बात सच होती तो इतने बड़े-बड़े हथौड़े की चोटें खा कर, चूर-चूर न हो गया होता ? या बिलकुल बेकार हो जाता । जिसके बिगड़ने से मुझमें 'अनुभूति' न शेष रहती ।

पर यह सब हुआ कहाँ ?

हथौड़े की चोटें खा कर भी हृदय-यन्त्र भला चंगा है । फिर ? डॉक्टर ने रोग-निर्णय करने में ही गलती की है ।

अब और इस घर में रहने के लिए तैयार न होन के कारण नीता पति-पुत्र को छोड़ कर चली गई है....*ऐसी अविश्वासपूर्ण बात सुन कर भी प्रभुचरण के 'हार्ट'* ने 'जवाब' नहीं दिया । 'जवाब' तब भी नहीं दिया जब सुना कि उसी नीति के अनुसार शुभ भी अपने लिए फ्लैट ढूँढ़ रहा है ।...और 'जवाब' फिर भी नहीं दे रहा है, जब गजा जैसे शान्त समझदार 'बुजुर्ग शिशु' को असभ्यता और उच्छृंखलता करते देख रहा है ।

बड़ी मुश्किलों से कह-सुन कर एक बार प्रभुचरण ने राजा को बुलवाया था।

कहा था, 'दादाभाई, सुन रहा हूँ, तुम ठीक से खाते नहीं हो, लोकनाथ के साथ झगड़ा करके खाना फेंक देते हो....इससे तो तबियत खराब हो जायेगी, बेटा।'

रुखाई के साथ राजा ने कहा, 'यही सड़ी बात करने के लिए मुझे बुलाया है आपने?'

दीर्घ श्वास छोड़ते हुए प्रभुचरण बोले, 'इस बात में 'सड़ी' क्या है, बेटा? माँ जब तक नहीं आती है ...'

तीव्र स्वर में राजा ने बात काटी, 'बेकार की बातें क्यों कर रहे हो? अब नहीं आयेगी।—नहीं आयेगी।'

इस चोट को भी प्रभुचरण के कमजोर हृदय ने झेल लिया। माँ के सम्बन्ध में इस तरह की श्रद्धाहीन उक्ति? वह भी राजा द्वारा? बबुआ ऐसी बातें कहता है, इसलिए राजा उससे घृणा करता था।

किसी से घृणा करता है इस बात की घोषणा करने के लिए राजा एक ही शब्द जानता था—'असभ्य'।

प्रभुचरण ने बड़ी कठिनाई से कहा—'ऐसी बात क्यों कह रहे हो, दादाभाई? तुम्हारी माँ के पिताजी बीमार हैं इसीलिए....'

'देखो, बेकार की बात मत करो। झूठे।' राजा मानो जल उठा—'कत्तई बीमार नहीं हैं। यह सब तुम्हारी बनाई बातें हैं। मुझे बहलाने की कोई जरूरत नहीं है। मैं सब समझता हूँ। नहीं खाऊँगा। क्यों खाऊँ? पढ़ूँगा नहीं। इम्तहान भी नहीं दूँगा। बस।'

प्रभुचरण उसे जाता देखते रहे। बातों का ढंग बबुआ जैसा ही हो गया है।

लेकिन इस विकृति के जन्म का कारण कुछ और है। 'प्यार' पाते-पाते ढीठ हो जाना और अचानक 'चोट' खा कर बिगड़ जाने में जमीन-आसमान का अन्तर होता है।

फिर सोचा—'डॉक्टर लोग बेकार की बातें करते हैं। मेरा हार्ट असाधारण रूप से मजबूत है।'

द्रुतगति से प्रस्तुति चल रही थी परन्तु निःशब्द।

दोनों भी यही चेष्टा कर रहे थे—पहले खिसक जाने की। जो पड़ा रह जाएगा उसी के ऊपर सारी ज़िम्मेदारी आ जाएगी। कौन कह सकता है, अन्त तक वह जटिलता के इस जाल को फाड़ कर बाहर निकल भी सकेगा कभी।

भाई-भाई में बहुत मधुर सम्बन्ध न होने पर भी सद्भाव की कभी कमी नहीं थी। छोटे भाई के प्रति ध्रुव के हृदय में स्नेहभाव था। खासतौर से नीता के साथ शुभ की घनिष्टता के कारण ध्रुव प्रभावित था। जिसका 'मूल्य' नीता की दृष्टि में हो वह कोई अवश्य ही 'ऐसा वैसा' नहीं है।

परन्तु अब परिस्थिति बदल चुकी थी।

अब पारस्परिक सम्बन्ध ने आक्रोश का रूप धारण कर लिया है। मानो एक दूसरे को जाल में फँसाना चाहते हों।....इसीलिए दोनों में से कोई भी इस तैयारी का नाम तक नहीं लेते थे।....एक ही छत के नीचे रह रहे हैं। एक साथ खाते हैं, बैठते हैं, इधर-उधर की बातें कर रहे हैं, बस एक वही बात नहीं। मानो एक भयानक जगह की तरफ पहले कौन पाँव बढ़ाएगा।

ध्रुव आजकल गुस्सा रहता है। विरक्ति और आक्रोश भी इसके साथ मिल गया है।

भाई को कठघरे में खड़ा करके वह दिन-रात कहता जा रहा है—'तुम क्यों? तुम क्यों? तुम्हें कौन सी ज़रूरत आ पड़ी है घर छोड़ने की? सिर्फ मुझे दबाने के लिए ही न? मैं क्या जान-बूझ कर चला जा रहा हूँ? इस अभ्यस्त जीवन के आराम, ऐश, निश्चिन्तता को त्याग कर? निश्चिन्तता तो है ही? इस एक सजे-सजाए घर-गृहस्थी में, जहाँ हमेशा ही सिर्फ 'घर का लड़का' बन कर रहा, जहाँ जीवन के ढर्रे से, एक ढाँचे में ढला चलता जा रहा था वहाँ नयापन?....यहाँ तो सिर्फ एक चालू मशीन को चालू रखने से मतलब है। इससे अधिक क्या? पर अब?'

प्रभुचरण के सम्बन्ध में जो दायित्व है वह भी कम होने ही वाला है, इसका इशारा मिल रहा है। उसके बाद तो निरंकुश जीवन।....उसी जीवन को छोड़ कर ध्रुव को अनिश्चितता की लहरों के साथ बहना पड़ रहा है। सिर्फ एक आकस्मिक निष्ठुरता के कारण। एक तुच्छ लड़की इतनी ढीठ हो सकती है, ध्रुव की धारणा के बाहर की बात है। वह भी बेवजह....एक काल्पनिक अपमान का छोर पकड़ कर।....फिर भी उस तुच्छ औरत को नीचा दिखाने का कोई उपाय नहीं है। सारी पृथ्वी एक तरफ और वह एक तरफ।

इन्हीं भयानक यन्त्रणाओं के कारण ही ध्रुव ने चले जाने का सिद्धान्त अपनाया है। इस सिद्धान्त के खातिर उसका यथासर्वस्व खत्म हो रहा है। अब तक बैंक में जो कुछ जमा हुआ था, वह तो गया ही, आफिस के फण्ड में भी हाथ लग चुका है। इसके अलावा अब लम्बे समय तक फ्लैट का बाकी पैसा ऋण के तौर पर चुकाते रहना पड़ेगा।....इसके अर्थ हुए, जिन्दगी के शेष दिनों की शान्ति, निश्चिन्तता और चैन खत्म हो

लाभ क्या हुआ—बुराई, निन्दा, अपयश।

प्रभुचरण को इस दशा में छोड़ कर दूसरा फ्लैट खरीद कर चले जाने की कौन तारीफ करेगा? समस्या का समाधान करने कोई नहीं आता है, बुराई करने सब आ जाएँगे।... खैर, निन्दा, अपयश भाड़ में जाय, कष्ट की बात सोचो। यही कष्ट, बाध्य होकर ध्रुव झेलेगा। सिर्फ पत्नी ही नहीं, पुत्र भी तो भयकर समस्या की मूर्ति बन बैठा है।

अतएव ध्रुव को जाना ही पड़ेगा।

गए बगैर उपाय भी कुछ नही है। तभी जाना पडेगा। 'लेकिन तू?'

मन ही मन तेज होकर ध्रुव ने कटघरे में खडे भाई को देख कर पूछा—'तू किस लिए जाएगा? तेरा किसने खेत काट लिया है? तेरी पत्नी के मान-सम्मान को किसने चोट पहुँचाई है?....तू रह जाता तो मेरे चले जाने को कोई बुरी दृष्टि से नही देखता। बडा लडका सुविधा-असुविधा की वजह से चला गया है पर छोटा लड़का तो है बाप के पास।....इसमे ऐसी कोई निन्दनीय बात नही है। इसके अलावा तू अकेले रहेगा तो पिता जी की वह नखरेबाज लड़की अवश्य ही प्रतिज्ञा भंग करके 'पिता जी को देखने आई हूँ' कह कर आ जाएगी।....तेरे साथ तो कुछ हुआ भी नही है।

'तू रह जाता तो बात बनी रहती।....बल्कि तू तो सर्वेसर्वा बन जाता।....यह सारी बातें सोचे बगैर तू भी जाने के लिए नाच रहा है। इसे जान-बूझ कर शत्रुता करने के अतिरिक्त और क्या कहा जाएगा?'

बेचारा ध्रुव अनवरत यही प्रश्न पूछता जा रहा है अपने मन से।

परन्तु इस तरफ अभियोग का रूप अलग है।

'तुम बड़े हो, गृहस्थ हो, तुम्हारा उत्तरदायित्व अधिक होने से तुम बाध्य हो। तुम ख्वाहमख्वाह बीबी की बातों और जिद् में आ कर, सब कुछ छोड़-छाड़ कर, नया फ्लैट खरीद कर नई गृहस्थी जमाने चले और मैं पड़ा रहूँ हिमालय का बोझ सिर पर लादे? मैं इतना बेवकूफ नही हूँ। और मेरी भावी पत्नी भी तुम्हारी पत्नी की तरह मूर्ख नहीं है।'

अभी तक 'भावी' कह रहा है, अब नहीं कहेगा। क्योंकि प्रभुचरण की उपस्थिति में एक अनुष्ठान द्वारा गनू को गृहणी के पद पर प्रतिष्ठित करने की इच्छा तो अब पूरी होगी नहीं। उस परिकल्पना का परित्याग किया है शुभ ने, इसीलिए अब 'भावी' नहीं। इतने झमेले की जरूरत ही क्या है? नए फ्लैट में मिस्टर एंड मिसेज नामांकित नेमप्लेट और लेटर बाक्स लग ही चुका है। रेजिस्ट्री शादी कोई बकवास नहीं है....उसे तो कर ही रखा है।'

शुभ भी मन ही मन कुछ न कुछ कहता है। कहता है,—'मेरे पाँव मे अभी भी बेड़ी नहीं पडी है। मेरा अपना कहने को कोई फर्नीचर नही है (ससुराल से मिला), अपना कपडा-लत्ता, जूता, किताबों के अतिरिक्त कुछ है भी नही।...मैं तो एक टैक्सी बुला कर शिफ्ट कर सकता हूँ।....तुम्हारा ही तो सब कुछ है भइया।....तुम यह सारा

सामान चुपचाप ले जा सकोगे ?....एक हार्ट के मरीज के कमजोर हार्ट पर चोट पहुँचाये बगैर तो न ले जा पाओगे ?... तुम्हें ही चाहिए बीबी को समझा कर रास्ते पर लाना।'

सारी बातें मन ही मन होतीं। कोई किसी से कुछ नहीं कहता। कोई भी उस प्रसंग के आस-पास नहीं जाता। यहाँ तक कि प्रभुचरण के विषय में भी ज्यादा बातें नहीं करते। डर था, कहीं केंचुआ ढूंढने में सांप न निकल आए।

एक ही भय था कि मालूम अगर हो गया तो कहीं प्रभुचरण पूछ न बैठें। उनकी तो हर बात पूछने की आदत है। किसी भी हाल में उन्हें कुछ पता न चल सके, दोनों इसी कोशिश में रहते। जानते तो हैं—जरा भी शक अगर हो गया, तो खोद-खोद कर पूछते जाएँगे। जब तक कि तह में नहीं पहुँचेंगे, चैन नहीं लेंगे। लड़के नहीं मिलेंगे तो नौकर महाराज की ही जान खाएँगे। छोटे लड़के को भी चुपचाप बुला सकते हैं।

तब अगर हाहाकार मचाते हुए रोना शुरू कर दें, 'तुम दोनों ही मुझे छोड़ कर चले जाओगे ? मरने तक कम से कम तुममें से एक कोई तो रहो।'

तब ?

तब 'वह एक' कौन होगा ?

जो होगा वह होगा, पर जो पहले खिसक सकेगा कम से कम वह तो नहीं होगा।

लेकिन क्या वास्तव में प्रभुचरण कुछ भी नहीं जान पा रहे थे ?

कितनी भी खामोशी के साथ तैयारी क्यों न हो रही हो, प्रभुचरण से अज्ञात रह सकती है ? उस प्रभुचरण से जो दीर्घकाल से शब्दतरंगों के माध्यम से पृथ्वी का अनुभव करता आ रहा है।

वे क्या अनुभव नहीं कर रहे हैं कि भाग्यविधाता ने उन पर इस बात की परीक्षा शुरू की है कि प्रभुचरण का हार्ट कितना मजबूत है ? वे तो उनकी दो पसलियों को ही अलग करने पर तुले हैं।

चुपचाप कितनी भयानक घटना घटने जा रही है, इस बात की जानकारी प्रभुचरण को हो गई थी। फिर भी उन्होंने धैर्य धारण कर रखा था। उनका वह भयंकर कौतूहली स्वभाव अचानक कहाँ खो गया ? एक बार भी किसी को बुला कर यह नहीं पूछ रहे हैं कि घर में हो क्या रहा है, बताना तो सही।

कुछ पूछ नहीं रहे हैं।

अचानक ही शान्त हो गये हैं प्रभुचरण। जैसे एक स्थिर समुद्र में शरीर को छोड़ दिया हो और इस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब लहर आकर बहा ले

जाएगी ।....अब तो प्रभुचरण को सोच कर भी हँसी आती है कि कुछ दिन पहले भी वे अपनी विल के सम्बन्ध में इतनी चिन्ता कर रहे थे ।....उनके मरने के बाद उनकी लड़की को कोई धोखा न दे, इसी बुरे ख्याल ने उन्हें परेशान कर रखा था ।....

जो प्रभुचरण 'टूलू' नाम की ढीठ नखरेबाज लड़की के दो-एक दिन न आने पर मन ही मन बेचैन हो उठते थे और यह बात लड़के न जान जाएँ सोच कर, बहाने करते थे—वह प्रभुचरण कहाँ गए ?

खूब 'हल्का है' घोषित हृदय अच्छा-भला मजबूत और भरोसेमन्द है । अचानक इस तथ्य का आविष्कार कर, आदमी क्या इतना बदल गया है ?

कारण कुछ भी हो, प्रभुचरण अचानक ही बड़े धीर और शान्त हो गये हैं ।.... लोकनाथ खाना देने आता तो सांस रोक कर, कहीं कुछ पूछ न बैठें । उसे लगभग अचरज में डालते हुए प्रभुचरण इतना ही बोले, 'लोकनाथ, स्टू जरा कम कर लो । चार-चार टोस्ट क्यों ले आये हो ?'

मधु कमरे की सफाई करने आता तो कनखियो से देखता । एकदम इनोसेण्ट बन कर मन ही मन सोचता, 'किस तरह से इस गृहस्थी के कलंक का किस्सा प्रभुचरण को बताएगा....' पर मौका नही मिल पाता है ।

या तो प्रभुचरण सोते रहते या सिर्फ कहते, 'जरा खिड़की का पर्दा खींच कर जाना मधु ।' या....'मधु, जाते वक्त दरवाजा भेड़ते जाना ।'

दरवाजा भेड़ कर । प्रभुचरण का ?

मधु तो सोच भी नही सकता है ।

खुले दरवाजे की तरफ आँख-कान खुला रख कर इतने दिनों से प्रभुचरण जीवन का स्वाद लेते आ रहे हैं । दरवाजा हवा के झोंके से बन्द हो जाता तो प्रभुचरण गुस्से से आग-बबूला हो जाते थे ।

और आजकल प्रभुचरण ज्यादातर दरवाजा भिड़ा कर रखना चाहते हैं । फिर भी अचरज की बात थी, इस गृहस्थी के अन्त:स्थल में जो घुड़दौड़ चल रही है, उसका अनुभव कर रहे थे । शुभ ही अपने बड़े भाई को ओवरटेक कर, बहुत पीछे छोड़ कर, इस दौड़ में जीत जाएगा, इस बात को वे जानते थे । इसीलिए अब प्रभुचरण सुन कर चौंकेंगे नही ।

चौंका था ध्रुव ।

यद्यपि आँखों की ओट में यह दौड़ चल रही थी । फिर भी ध्रुव सोच नहीं सकता था । वह सोच नही सकता था कि सुबह चाय की मेज पर, हाथों में अखबार उठाए, इतनी सरलता से शुभ कह बैठेगा—'भइया, सम्भवतः आज ही शाम में गोड़ीहाटा वाले फ्लैट में शिफ्ट कर जाऊँ ।'

'उठाया हुआ वार'— फिर भी सिर पर पड़ते ही आतंकित होना पड़ता है । ध्रुव चौंक पड़ा । बोला, 'शिफ्ट करोगे ! आज ! गोड़ीहाटा मे ! तुमने भी फ्लैट खरीदा है क्या ?'

जानता तो है ही लेकिन शुभ ने तो आफिशियली कुछ कहा नहीं है, इसीलिए नखरा करने का मौका मिल गया।

शुभ मन ही मन हँसा। भइया हमेशा का मूर्ख है।

मुँह पर बोला—'क्यों, तुम नहीं जानते थे क्या ?'

'मैं ? मैं....कैसे जानूँगा ? तुमने तो कुछ....'

शुभ बोला—'भाभी से कहा था। गौड़ीहाट के मार्केट में मुलाकात हो गई थी—इतनी जल्दी फ्लैट जुगाड़ कर लेने के लिए प्रशंसा कर रही थीं।'

ऐसे अकाट्य प्रमाण के बाद तो यह कहा ही नहीं जा सकता था—'मैंने सुना नहीं।' भाभी को बताने के बाद भी भइया न जानता हो, ऐसी 'बच्चों की बहलाने वाली' बातों पर शुभ ने कभी विश्वास नहीं किया।

ध्रुव ने दूसरा रास्ता पकड़ा। गुस्सा दिखा कर बोला, 'मुझसे कहने की कोई जरूरत नहीं, सही। पिता जी से कहा है ?'

'कहूँगा।'

अखबार पर आँख टिकाये शुभ बोला, 'ऑफिस जाते वक्त कहता हुआ जाऊँगा।'

ओह ! ऑफिस जाते वक्त बतायेंगे ?....मंझा जब कट ही चुका है तब पतंग सम्भालने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है।...

ध्रुव चीख पड़ा, 'पिता जी पर बड़ी दया करोगे। खबर सुन कर क्या रिएक्शन हुआ, इसे देखे बगैर ही सरक जाना चाहते हो, क्यों ?'

शुभ बोला, 'बच्चों की तरह क्यों बोल रहे हो ? रिएक्शन क्या होने वाला है ?'

हताश होकर ध्रुव कह बैठा, 'यह तो हार्ट का हाल है....अगर जबरदस्त अटैक ही हो जाए ? अगर हार्टफेल हो जाये ?'

शुभ ने इस पर अजीब-ही-सी एक हरकत की। शुभ बड़ी जोर से हँसने लगा, 'तुम्हारे लिये तो वही अच्छा है। पितृ-हत्या के पाप से तुम बच जाओगे।'

'इसके अर्थ ?'

'अर्थ तो बड़ा सरल है। ऐसी ही एक खबर तो तुम्हारे पास भी है ? उसे अगर पहले सुना देते तो पाप तुम पर लग सकता था।'

ध्रुव और भी जोर से चिल्लाया, 'शुभ, मैं तुम्हारी हँसी का पात्र नहीं हूँ।'

'अरे, आश्चर्य की बात है ! कैसी बहकी हुई बातें करते हो ?'

ध्रुव की इच्छा हुई अपना सिर पीट ले। इस तरह से शुभ हर काम में जीत जायेगा ?....सचमुच अगर पिता जी चिल्ला-चीख कर बीमारी बिगाड़ बैठें तब ? तब तो ध्रुव की योजना के बारह बज जायेंगे।

पर, इस बात को मुँह से निकाल कर और छोटा न बन सका ध्रुव। गम्भीरता-पूर्वक बोला, 'मुझे भी दो ही चार दिनों में जाना पड़ेगा, यह बात भाभी से सुनी होगी ?

'क्यों नही सुनी है ?'

'उसके बाद ? उसके बाद की बात सोची है ?'

'मैं क्या सोचूंगा ?'

ध्रुव बोला—'क्यों, तुम क्यों नहीं सोचोगे ? उत्तरदायित्व तो हम दोनों का समान ही है।'

शुभ ने व्यंग करते हुए कहा, 'भइया, तुम क्या मुझसे लड़ना चाहते हो ?'

ध्रुव गुमसुम हो गया। उसके बाद ही कातर स्वर में बोला, 'मेरी ही क्या जाने की बहुत इच्छा है ? मैं किस मुसीबत में पड़ कर जाने के लिए बाध्य हो रहा हूँ, इस बात को तुमसे ज्यादा और कौन जानेगा शुभ ? लेकिन तुम्हारे साथ तो वह बात नही है।'

शुभ हँसा।

अनजान के प्रति करुणामयी हँसी हँसा। बोला—'कौन कहता है ऐसी बात नही है ? इधर तो दबाव डालने में सुविधा ज्यादा है। उसके पिता का फ्लैट का व्यवसाय है।'

ध्रुव बैठ गया।

'ओह, इसीलिये। इसीलिये फ्लैट जुटा लेने में दिक्कत नहीं हुई ?'

अर्थात् शुभ को, ध्रुव की तरह सर्वस्व लुटाना नहीं पड़ा है।

अचानक ध्रुव के मन में एक अद्‌भुत बात आई। वह जमाना होता तो नीता जैसी लड़की को, बालों की चोटी पकड़ कर घसीटता हुआ ले आता।....आधुनिक सभ्यता ने तो अभागे पुरुषों का हाथ-पांव बांध रखा है, ऐसी मृत्यु-यन्त्रणा है यह....

अविश्वसनीय होते हुए भी सच था। यही बात कई दिनों से नीता की मां भी सोच रही थीं। मन के अन्दर की बातें टेप की जा सकें, ऐसा यन्त्र अभी तक आविष्कृत नही हो सका है, यही गनीमत है। अभी भी लोग स्वेच्छा से सोच सकते हैं। इसीलिये जिस समय नीता की मां अच्छे-अच्छे खाद्य-पदार्थों से भरी थाली बेटी के सामने रखतीं, जब कहतीं, अगर सिर में दर्द हो रहा है तब फिर क्यों निकल रही है ? जरा देर लेट ले ? तब मन ही मन कहतीं, 'वह जमाना होता तो तुम्हारी जैसी बदमाश, शैतान, ढीठ बहू के बाल पकड़ कर खींचते हुए ससुराल ले गये होते।...आज-कल के फैशन ने अभागे लड़कों के हाथ-पांव तोड़ कर रख दिये हैं।'

फिर भी यह बात कहती, 'फ्लैट-फ्लैट करके ध्रुव को इतना परेशान क्यों कर

रही है तू ? पानी में पड़ी है क्या ?'

नीता अपने ढंग की हँसी हँस कर कहती, 'पानी में नहीं पड़ी हूँ। तभी तो इतनी परेशान हूँ। और कब तक तुम लोगों पर बोझ बनी रहूँगी ?'

माँ नाराज़ होती। अकेली नीता कितनी बड़ी बोझ है, उससे यह पूछती। साथ ही कहती, 'तू उसे परेशान करती है इससे हमें भी तो शर्म लगती है।'

'शर्माने की ज़रूरत क्या है ?' नीता हँसती—'वह मुझे अच्छी तरह से पहचानता है।'

फिर कभी महिला कहतीं, 'लड़का भी तो तेरा कम ज़िद्दी नहीं है नीता ? एक बार के लिये भी नहीं आया ?....जब कि नाना के यहाँ आना उसे कितना पसन्द था। खैर, नए घर का आकर्षण होगा तब आयेगा।'

नीता के पीठ पीछे उसके पिता कहते, 'घर के नाम से परेशान हो रही है अपने लड़के की वजह से, यह भी तुम्हारी समझ में नहीं आ रहा है ? लड़की का हाल तो ये है कि रस्सी जल जायेगी पर ऐंठन नहीं जायेगी। यह न कहेगी कि बच्चे की याद आ रही है।'

ये लोग अवस्थापन्न हैं, ओढ़ना, पहनना आधुनिक है लेकिन विचारधारा बेहद घरेलू है—पुरातनपंथी।

उनकी लड़की नीता, न जाने ऐसी कैसे निकली ? दोनों सोचा करते।

प्रायः प्रतिदिन संध्या समय ध्रुव यहाँ आकर धरना देता, लगातार दो दिन 'अनुपस्थित' रहने से डरता।...जब कि नीता कहती, 'रोज़-रोज़ इतनी दूर आने की क्या ज़रूरत है ?'

ज़रूरत कहाँ है, यह बात कैसे समझाए ?....न पहुँच पाता तो अपराध-बोध से दब जाता है। उसे लगता, जैसे नीता को वनवास के लिए भेज कर परम निश्चिन्त हो गया हो।....आश्चर्य तो इस बात का था कि दोनो में से कोई भी राजा का नाम तक नहीं लेते। शुरू-शुरू में ध्रुव ने चेष्टा की भी थी, पर नीता ने रोक दिया था।

कहा था—'ठीक है। लग रहा है ठीक ही है। स्वाधीनता का सुख उठाने दो।'

ध्रुव कहने की चेष्टा करता—'ठीक बिल्कुल नहीं है। जितनी शरारत कर रहा

है यह कहने लायक नहीं। हम लोगों को परेशान कर दिया है...'

नीता गम्भीर हो कर कहती, 'परेशानी कैसी ? न बुखार आ रहा है, न अन्य कोई भयंकर बीमारी है।'

नीता का चेहरा देख कर लगता, ऐसा कुछ न होना, उसका अपमान करना है। अचानक अगर राजा को कोई भयंकर बीमारी होती, जिसकी वजह से नीता का जाना ज़रूरी हो जाता, कोई ले जाने के लिये दौड़ा आता...तब शायद वह मुँह दिखाने के क़ाबिल होती।

नीता के लड़के ने नीता को कहीं का नहीं रखा था....इसीलिये नीता बेटे पर नाराज़ थी, उसके व्यवहार से क्षुब्ध थी। वह अब प्रतीक्षा कर रही है।...शुभ तो जा ही रहा है, ध्रुव भी चले जाने के लिये बाध्य होगा, तब देखूँगी ? तब देखूँगी तुम ढीठ-जिद्दी लड़के कहाँ रहते हो ?

कोई चर्चा तक नहीं करता। नीता के पिता जी ने ही एक दिन पूछा, 'तुम दोनों भाई अलग हो रहे हो...तुम्हारे पिता जी का क्या होगा ?'

ध्रुव के कान लाल हो गए। हो सकता है कि वे ससुर हैं, फिर भी इन्हें हमारे पारिवारिक मामलों में नाक डालने की क्या जरूरत है ?

पर ऊपर से बोला—'हाँ, कुछ करना ही पड़ेगा।'

'तो फिर उनके लड़की-दामाद ही आकर रहें। सुना है, लड़की किराए के मकान में रहती है।'

'वैसा ही कुछ शायद करना पड़े।'

कह कर ध्रुव ने बात बढ़ने नहीं दी थी।

आज आते ही ध्रुव पत्नी पर फट पड़ा। 'कल क्यों नहीं आ सका था, जानती हो ? शुभ बाबू कल अपने नये फ्लैट में चले गए हैं।'

निर्लिप्त भाव से नीता बोली,—'जानती हूँ।'

'जानती हो ? वह कल चला गया है, तुम जानती हो ?'

'सोलह तारीख को जाएगा, यह मैं जानती थी।'

'देखा न, कैसा अँगूठा दिखा कर जीत गया ?'

नीता बोली, 'अक्लमंदों की हमेशा ही जीत होती है।'

ध्रुव सुन कर गुमसुम हो कर बैठ गया। कुछ देर बाद बोला, 'पिता जी के निए जितना भय था, उतना कुछ नहीं हुआ है।....सुन कर कुछ चिल्लाये भी नहीं।'

भौंहें सिकोड़ कर नीता ने कहा, 'शुभ के मामले में नहीं किया है। तुम्हारे विषय में क्या करते हैं देखना।'

'क्यों ? मुझसे कौन सा अपराध हुआ है ?'

'बड़ा बन कर पैदा होना ही तुम्हारा अपराध है। बड़े से ही ज्यादा एक्सपेक्टेशंस होती हैं।

अचानक गँवारों की भाषा में बोल उठा ध्रुव, 'मैं यह सब नहीं मानता हूँ। फिर भी अब सारी जिम्मेदारी मुझ पर आ पड़ी है। आज ही टूलू से जा कर कहना पड़ेगा कि किराए का मकान छोड़ कर वे यहाँ आ कर रहें।'

'टूलू तैयार होगी ?'

ध्रुव पक्के गृहस्थों की तरह हँसा।

बोला, 'हर महीने इतना-इतना रुपया बचेगा फिर भी तैयार नहीं होगी ?'

शुभ ने भी नहीं सोचा था कि इतनी निर्विघ्नता से उसका जाना हो सकेगा। ध्रुव से जैसे भी क्यों न कह दे, पर बाप से कहना आसान न था। सबसे बड़ी चिन्ता की बात थी कि अगर बेहद रोने-धोने के बाद, शान्त हो कर प्रभुचरण पूछें—'तुम अकेले वहाँ रहने क्यों जाओगे ? यह बात तुम्हारे दिमाग़ में आई क्यों ?'...तब तो वह 'छिपाई गई बात' पिता जी को बतानी पड़ जायेगी। उससे तो दुबारा चोट पहुँचेगी और भइया का 'डर' सच साबित हो सकता है। लड़के-लड़की अपनी पसन्द से शादी कर बैठे हैं, यह एक 'आघात' नहीं तो और क्या है ?

परन्तु यह अवाक्-सा देखता रह गया। प्रभुचरण ने जरा भी हो-हल्ला नहीं किया। सिर्फ पूछा, 'तुम्हारी नौकरी की जगह से ज्यादा दूर तो नहीं होगा ?'

शुभ नामक लापरवाह लड़का घबड़ाया। सचमुच घबड़ा गया। धीरे से बोला, 'कोई खास नहीं।'

'संभल कर रहना।'

बुद्धिमान् शुभ अकस्मात् मूर्खों-सी बात कर बैठा। बोला, 'बीच-बीच में आता रहूँगा।'

इस बात का उत्तर नहीं दिया प्रभुचरण ने। सिर्फ उनके रक्तहीन फीके होंठों पर हल्की-सी मुस्कान उभर आई।

वही मुस्कान शुभ को आज भी खदेड़ती फिर रही है।

शुभ सोचता था, तरह-तरह की हँसी सिर्फ वही हँस सकता है। परन्तु प्रभुचरण के खजाने में भी ऐसी मुस्कान संचित है, यह वह नहीं जानता था।

घर से (शुभ के शब्दों में) 'शिफ्ट होने' के लिए शुभ शाम को नहीं उसके बाद आया। शाम ढलने पर। दिन का प्रकाश चैन नहीं लेने देता है। लगा आकाश, वायु,

सारी पृथ्वी शुभचरण नामक व्यक्ति की निर्लज्ज हरकत को आँखें फाड़-फाड़ कर देखेगी।

हर बार सोचने की कोशिश करता। मन को समझाना चाहता, यह कमजोरी उनके घर की शिक्षा का फल है। यह सब कुछ नहीं है। परन्तु अपने कमरे से अपने ही व्यवहार की चीजें जब निकालने लगा तो उसे अनुभव हुआ कि घर की दीवारें तक मुँह चिढा कर हँस रही हैं।...

शुभ ने अपनी पसन्द का बुक-शेल्फ बनवाया था। शौक से, बड़ा सुन्दर – वह अभी रह गया। बाद में किसी वक्त ले जायेगा। किताबें तक आज ही ले जाने की बात, सोचना भी पाप था।

आँखें उठा कर मधु की तरफ, लोकनाथ की तरफ देखना मुश्किल हो गया। अचानक लगा, वह कितना 'छोटा' है....जबकि आज सुबह भी सिर उठाये घूम रहा था।

कितने आश्चर्य की बात है! उसके चले जाने की खबर सुन कर कोई 'हाय-हाय' तक नहीं कर रहा है।

यह दोनों नौकर ही अगर हताशा प्रकट करते तो शायद सीने पर रखा पत्थर कुछ हल्का पड़ जाता। परिस्थिति भी कुछ सहज हो जाती। अपने पक्ष में कुछ कह सकता। परन्तु इन दो नौकरों ने भी मौन धारण कर उसके सीने में अस्त्र भोंक दिया। ....फिर भी उन दोनों की तरफ दो दस-दस के नोट बढ़ा कर शुभ ने कहा, 'सिनेमा देखना।'

लोकनाथ बोला, 'मैं कहाँ सिनेमा देखता हूँ छोटे भइया...मैं ले कर क्या करूँगा?'

'अच्छा, न हो मिठाई खा लेना। रुपया लेकर आदमी क्या करता है?'

लोकनाथ फिर कुछ न बोला, वहाँ से चला गया।

मधु कुछ भी नहीं बोला। नोट पैण्ट की जेब में रख कर उसने शुभ का सूटकेस उठा लिया।

काम हो ही गया था कि ध्रुव आ पहुँचा। आते ही उसने 'लोकनाथ एंड को' को डाँटना-फटकारना शुरू कर दिया। उसने छोटे भइया के खाने-पीने का हवाला देते हुये कहा, 'एक आदमी घर से जा रहा है, तुम लोगों को इस बात का ध्यान नहीं आया कि खाना खिला दें?'

जैसे शुभ ट्रेन पकड़ने जा रहा हो।

शुभ बोला, 'भइया, इन्हें क्यों डाँट रहे हो? इन्होंने कहा था। मैंने ही मना कर दिया है।'

'तुमने मना किया ?'....ध्रुव ने रुक-रुक कर पूछा, 'क्यों मना किया ? घर से जा रहे हो....'

बोला, 'बडी मुश्किल है ! मैं क्या फिर आऊँगा नहीं ?'

'अरे, यह कौन कह रहा है ? लेकिन इस वक्त तो चाय-वाय पीते....'

'चाय पी है। अच्छा, चलता हूँ।'

ध्रुव ने जल्दी से एक बेमेल बात कही, 'संभल कर रहना।'

उसके बाद ऊपरी सीढ़ी के पास खड़ा रहा।....सीढ़ी के पास मधु के तख्त पर बैठा राजा एक छोटी कैंची से कागज काट रहा था। शुभ उसके पास जा कर रुका। लोकनाथ ने कहा था—'खोकाबाबू घर पर नहीं हैं। बगलवाले घर में खेलने गये हैं।' —ताज्जुब है ! भूठ क्यों बोला ? फिर सोचा, 'गया होगा। अब लौट आया है।'

राजा सिर झुकाये कैंची चलाता रहा। हालाँकि नीला के जाने के बाद से राजा का व्यवहार ऐसा ही हो गया था फिर भी दिल को ठेस लगी। बोला, 'क्यों ? बोलोगे नहीं ?'

भारी आवाज में राजा बोला, 'मैं गन्दे लोगों से बात नही करता हूँ।'

क्या शुभ इस छोटे से लड़के को सुना दे, 'राजा, तुम्हारे माँ-बाप की असभ्यता ने ही औरों को भी असभ्य बना दिया है।' पर नही, शुभ पागल नही है।

रास्ते पर उतरते ही, अनजाने में निगाहें प्रभुचरण की खिड़की की तरफ उठ गईं। कमरा अँधेरा था। सिर में दर्द है, कह कर शाम ही से नींद की गोली खा कर सो रहे थे प्रभुचरण। ..पैर-वैर छूने का नाटक हालांकि शुभ न करता, फिर भी दरवाजे के पास खड़ा होकर एक बार कहता, 'जा रहा हूं।' उसी दुरूह कार्य को करने से उसे बचा लिया प्रभुचरण ने। वह मुस्कान तो यूँ ही दिन भर पीछा करती फिरी है, अब और किस हँसी का सामना करना पड़ जाता, कौन जाने !

टैक्सी चल दी। आगे बढ़ी, फिर भी शुभ को विश्वास नहीं हो रहा था कि वह इस घर को हमेशा-हमेशा के लिए छोड़ कर जा रहा है।....भइया की चालबाजी के जाल में फँसने के डर से हमेशा जल्दीबाजी करता रहा है। यूँ लगता था, यह घर जैसे काटने आ रहा है। जैसे किसी तरह निकल भागने में ही भला है। और अब, सीने से एक दर्द मानो ऊपर उठना चाहता है।

धीरे से सिर झुकाया। ड्राइवर की सीट के पीछे सिर टेक कर बैठा रहा।

गाड़ी आगे बढ़ती रही।

इतने दिनों बाद और उस कड़वी घटना के बाद बड़े भाई को आया देख टूलू खुश होते ही डर गई। पिता जी को कुछ हुआ तो नहीं ?

झूठ-मूठ के लिये मानाभिमान का तूफान खड़ा कर, स्वयं पिता जी को देखने न जाने का दु.ख था। शर्म और अपराध-बोध सीने पर जमा बैठा था। उतना ही गुस्सा, दुःख, अपराध का कीड़ा खाये जा रहा था। एक दिन भी किसी से टेलीफोन करते न बना ? कोई यह न कह सका—'टूलू, ख्वाहमख्वाह गुस्सा होकर क्यों बैठी है ? एक दिन चली आ। जानती तो है पिता जी बहुत दिनों से तुझे न देख कर....'

छोटे भइया, यह बात तो छोटे भइया ही कह सकते थे।

भाभी को घर की मालकिन का पद प्राप्त हुआ है तो इसके यह अर्थ तो नहीं कि वह 'सर्वशक्तिमयी' हो गई हैं ? छोटे भइया को इतना कहने का भी अधिकार नहीं रहा ? पिता जी व्याकुल हो रहे होंगे। हो सकता है, उनसे बार-बार पूछ रहे हैं, 'टूलू क्यों नहीं आती है ? टूलू कैसी है ?'

या पिताजी के आगे, (भाभी, नहीं भाभी नहीं, वह तो 'चुप्पी' है) वे (बड़े भइया ही) लोग इस तरह से टूलू की तस्वीर खींच रहे होंगे कि पिताजी का जी ही उचाट हो गया होगा।....

टूलू बेचारी जरा गुस्सेबाज है, इस बात को वह कब अस्वीकार करती है, परन्तु बेवकूफी करके इसे प्रकट कर देने के कारण ही टूलू को सब गुस्सैल और घमण्डी कहते हैं। लेकिन वह बीबी उनकी ? वह जो एक 'चीज' है, इसे कोई जान नहीं पाता है।

अपने आप से टूलू यह सब कहती रहती है। और भी एक बात का दु.ख साल रहा है उसे। आजकल पति पर पहले-सा दबदबा नहीं रह गया है। पिता के घर की ताकत थी, उसी रस्सी से टूट कर गिर गई है। जैसे हाथी जब घेरे में फँसा लिया जाता है तब उसका जो हाल किया जाता है, वैसे ही सरित कुमार, आजकल मौका पाते ही व्यंग-विद्रूप के बहाने बहुत कुछ सुना डालता है। इसमें चर्चा का मुख्य विषय रहता कि पुरातन-काल में महिलाओं को जो 'प्रलयकारी' कहा जाता था, वह शत-प्रतिशत सही था।....वे पलक झपकते प्रलय ला सकती हैं। दो औरतों की तुच्छ जिद् और घमंड ने सुख की गृहस्थी को छिन्न-भिन्न कर दिया।

शुरू-शुरू में टूलू मुँह झटक कर कहती—'सुन्दरी सलहज के हाथों से बना अमृत-तुल्य भोजन न मिलने के कारण मन बड़ा खराब हो गया है न ? सो तुम जाते क्यों नहीं ? तुम्हें कौन रोक रहा है ? 'भाभी' कह कर आवाज लगाओ और चाय की मेज पर बैठ जाओ। 'भाभी' आदर-सत्कार में कमी नहीं करेंगी।....बल्कि ज्यादा ही करेंगी। ननद की अनुपस्थिति में ननदोई में मिठास कुछ ज्यादा ही होती है।'

पर अब इस तरह की बातें कहाँ होती हैं। बात पुरानी हो गई है सोच कर नहीं, उस पर एक नई जबरदस्त खबर सवार हो गई है इसलिए। सरित कुमार ने ही हँसते-हँसते खबर सुनाई थी—'सलहज के हाथों की बनी करी-कबाब का अन्त हो गया। सलहज गायब।'

उसके बाद परिस्थिति स्पष्ट की थी।

'मिजाज दिखा कर भाभी मायके जाकर बैठी है। लड़के का स्कूल खुला है कह कर उसे यहाँ डाल गई हैं। इसके मतलब छोटा लड़का और बूढ़ा मरीज बिल्कुल ही नौकरों के भरोसे हैं।...बड़े भइया तो रोज स्वेच्छा से जाकर ससुराल में धरना दे रहे हैं और छोटे भइया अपनी प्रेयसी के बाप की कार पर चढ़ कर कलकत्ता शहर छाने डाल रहे हैं। उनके हाथों में हर वक्त ही नाना प्रकार के पैकेट शोभा पाते हैं।'

इतना ही!

इतनी ही खबर सरित कुमार को मालूम थी। इसी को उसने सामने रख दिया था। उस वक्त तक नहीं जानता था कि ग्रीनरूम में इस वक्त अगले किस दृश्य का रिहर्सल चल रहा है।

हाय....हाय! टूलू के भाग्य से, पहले कितनी बार, अचानक ही पिताजी की बीमारी बढ़ जाती थी। हालत चिन्ताजनक हो जाती थी तो टूलू को फोन करके बुलाया जाता, 'टूलू, जिस हालत में है वैसी ही चली आ। जरा भी देर मत करना। पिता जी शायद....'

उसी दशा में टूलू दौड़ी जाती।

पहुँच कर कभी देखती कि प्रभुचरण इस बार संभल गये हैं, अथवा देखती घर में डाक्टरों की भीड़ लगी हुई है। हर कोई घबड़ाया हुआ। टूलू भी घबड़ाती। ज्यों रोगी संभलता त्यों ही घर का वातावरण संभल जाता, झटपट स्थिरता आ जाती।.... टूलू लोग आये हैं, इसलिये तब चाय का विशेष प्रबन्ध होने लगता या कोई स्पेशल डिश बनने लगती।

आश्चर्य है! अब प्रभुचरण का वही हार्ट 'फेल हो रहा हूँ' 'फेल हो रहा हूँ' कह कर डराता तक नहीं है। डराता नहीं है, यही समझना पड़ेगा, वरना टूलू को खबर तो देते ही।

नहीं खबर करेंगे तो टूलू 'केस' न कर देगी?

सरित कुमार ने बताया है कि ऐसे मामलों में केस किया जा सकता है। कौन जाने, बहन की अनुपस्थिति में, भाइयों ने पिता की चाभी हथिया कर वसीयत खिसका दी हो। ऐसा तो अक्सर हुआ करता है। इस बात से बुद्धिमान भाई लोग अनभिज्ञ न होंगे।

इसीलिये यही समझना होगा कि पिताजी की ऐसी कोई हालत नहीं हुई है।

आश्चर्य! जब बीमारी शुरु हुई थी तब बार-बार यही होता था। असल में टूलू का भाग्य ही आजकल उसका दुश्मन हो रहा है।

ऐसे मौके पर जब बबुआ ने दौड़ कर आकर कहा, 'बड़े मामा आये हैं...' तब

टूलू के अन्दर (तब की भाषा में) दोहरी 'खुशी' और 'आतंक' की लहर दौड़ गई।

'आया है' के अर्थ हुये अपना सम्मान खो कर आया है। इसी बात की खुशी थी।

पर क्यों खो दिया ? इसी बात का आतंक था।

'बड़े भइया।'

प्रणाम-प्रणाम तो टूलू पहले भी नहीं करती थी, पर इतने दिनों बाद भाई को देख कर खट् से पाँव छू बैठी।

ध्रुव बोला, 'अरे रहने दो। बैठो।'

'भइया, अचानक तुम कैसे ? पिताजी जिन्दा हैं न ?' टूलू के मुंह से यही निकल गया।

'पिताजी ठीक हैं न ?' की जगह निकला—'पिताजी जिन्दा हैं न ?'

ध्रुव बोला, 'हाँ-हाँ ! पिताजी ठीक हैं। मेरे अचानक आने का एक कारण है। मैं तेरे पास एक प्रस्ताव लेकर आया हूँ।'

'प्रस्ताव ? मेरे पास ?'

टूलू ने डरते-डरते सरित कुमार की तरफ देखा। जितना भी बुरा-भला क्यों न कहे, वास्तविक विपत्ति के समय यही तो भरोसा है।

इसे विपत्ति के अतिरिक्त और कहा ही क्या जाएगा ? भइया टूलू के पास कैसा प्रस्ताव लेकर आ सकता है ? भाभी घर पर नहीं हैं, टूलू जाकर पिता जी की सेवा करे, यही न ?

पर प्रस्ताव सुन कर टूलू पत्थर की मूर्ति बन गई।

उसके बाद ?

उसके बाद टूलू ने प्रस्ताव को अपनी कनिष्ठ अंगुली से झाड़ कर फेंक दिया। देगी नहीं क्या ? यह भी कोई वास्तविक प्रस्ताव है ? अपने दोनों भाई तो नये फ्लैट खरीद कर चले जा रहे हैं (एक तो ऑलरेडी जा चुका है), इसीलिए टूलू अपनी गृहस्थी समेट कर बाप के यहाँ चली जाए और वहीं रहे।....इससे बढ़ कर अवास्तविक बात और क्या हो सकती है ?....

इससे क्या टूलू को बड़ी असुविधा होगी ?

मकान का किराया बचेगा। उस पर वहाँ काम करने के लिए तीन-तीन नौकर हैं, टूलू तो जाकर आराम के सिंहासन पर बैठ जाएगी।....पिता जी भी जब 'अब-तब' नहीं हो रहे हैं। अच्छे भले हैं। टूलू वहाँ रहेगी तो पिता जी खुशी के मारे चंगे हो जाएँगे। जो कुछ भी कहो, लड़के बहू से ज्यादा वे लड़की को प्यार करते हैं, इस बात को कौन नहीं जानता है ?

ध्रुव ने बहुत सी अच्छी-अच्छी युक्तियाँ पेश कीं, तस्वीरें खींचीं।....पर निष्ठुर हृदयहीना बहन का हृदय पसीजा नहीं।

न झुकने वाली टूलू ने, सख्त आवाज़ में पूछा—टूलू किराये का मकान छोड़ कर

आज अगर चली जाती है तो इसकी कौन सी गारण्टी है कि उस घर में उसके रहने की स्थायी व्यवस्था हो जाएगी ।....पिता जी क्या पूरा मकान टूलू के नाम लिख देंगे ? देना तो चाहिए । लडके जब बूढ़े बाप को एक तरफ फेंक कर अपने-अपने घरों में चले जा रहे हैं, तब लड़की का ही पूरा अधिकार है।

....यह न हो कि मतलब पड़ा है तो अपना उल्लू सीधा कर लिया । टूलू को उसकी गृहस्थी उखाड़ कर वहाँ जाना पडा, फिर जैसे ही काम बन गया, तुम लोग जान लड़ा कर किराएदार या खरीददार ढूंढना शुरू कर दोगे ।....टूलू का हाल समझ लो तब।

गुस्से से जलते-जलते, गुस्सा मन में छिपाते हुये ध्रुव ने शान्त स्वर में कहा—'पिता जी की इस स्थिति में उनसे कहा नहीं जा सकता है कि 'पिता जी तुम वसीयत लिखो।'

अब जाकर सरित कुमार ने मुंह खोला था । कहा था, 'जब यह सम्भव नहीं तब टूलू के लिए भी सम्भव नहीं कि बड़े भाई के प्रस्ताव पर 'हाँ' करे।'

गुस्से से ही जलते-जलते ध्रुव चला गया । मन में दूसरा ही संकल्प लेकर । ठीक है । परेश से जा कर कहेगा।

एक बार परेश के यहाँ रहने की बात भी उठी थी ।...वह तो ऐसा ऑफर पा कर धन्य हो जायेगा । और वह तो यह नहीं कह बैठेगा, 'मामा का मकान मेरे नाम लिख देंगे ?'

परन्तु मुश्किल हुआ पता पाने में ।

इतना ही पता था कि परेश नामक अभागा मेस में रहता है । पर झट से उसका आविष्कार कैसे किया जाये ? यह काम भी तो बड़ा असंभव है ।

एकमात्र आधार हैं पिताजी की पुरानी फाइलें ।

पिताजी के भंडार में दुनिया भर के आलतू-फालतू लोगों के पते लिखे हुए देखे हैं ध्रुव ने । कब की मर कर भूत हो गई बहनों के लड़के-लड़कियों के पते । एक दिन हँसते-हँसते कहा था—'मेरे श्राद्ध के वक्त यह सब तुम्हारे काम आएँगे ।' उस समय ध्रुव ने मन ही मन मुँह पिचकाया था । बड़ी पड़ी है हमें इन फालतू लोगों से रिश्ता बनाये रखने की !....पर गरज से बढ़ कर शायद ही कुछ होता हो । इसीलिए अब परेश का पता पाने के लिए उसे सोर्स ढूंढना पड रहा है । अब घर जा कर फाइलों में से परेश का पता खोज निकालना....नहीं, यह न हो सकेगा । बल्कि अन्य कोई सोर्स सोचा जाये ।

ध्रुव ने असाध्य साधना ही कर डाली।

ध्रुव की एक ओर बुआ का लड़का राइटर्स में काम करता था। उसके पास से जरूर मिलेगा। यद्यपि परेश ध्रुब का फुफेरा भाई है और विभूति का मौसेरा, फिर भी उनमें मेलजोल था। 'चोर-चोर मौसेरे' के कारण नहीं....'गरीबी-गरीबी' के कारण।

कितने आश्चर्य की बात है ...स्मृति का रहस्य देखो। उसका नाम याद आ गया। बड़े ही सन्देहात्मक ढंग से डिपार्टमेन्ट भी। इसी क्षीण-सूत्र का दामन पकड़ कर टेलीफोन किया आफिस जा कर। खुद हफ्ते भर की छुट्टी ले रखी है, वरना वहीं बुलवा सकता है।

खैर, कई बार कोशिश करने पर विभूति बनर्जी मिला। और बड़ी ही नम्रता से अपना परिचय देने के बाद ध्रुव ने उससे परेश का पता पूछा।

पता मिला। ध्रुव का अनुमान गलत नहीं था। विभूति मौसेरे भाई की खबर जानता था। तुरन्त बता दिया।... और उसे सुनते ही ध्रुव गुस्से से जलता-जलता घर वापस आया।

शुभ पर गुस्सा—सारा उत्तरदायित्व भाई पर डाल कर खिसक गया। और परेश पर गुस्सा—वही गुस्सा हजम नहीं हो पा रहा था। सीधे पिता के कमरे में पहुँच कर बैठ गया। बिना किसी भूमिका के कह बैठा (शायद यही भूमिका हो)—'मां एक बात कहा करती थी न, 'जरूरत के वक्त कुएँ का मेढक भी पहाड़ पर जा चढ़ता है, वह बहुत सच है।'

इस आकस्मिक आक्रमण से प्रभुचरण विस्मित हुए। बिना कुछ कहे ताकते रहे। ध्रुव तब भी उत्तेजित था—क्या पहले कहना चाहिये क्या नहीं, सोचे-समझे बगैर ही बोल बैठा, 'अपने परेशबाबू की बात कर रहा हूँ। अरे, छोटी बुआ का लड़का परेश—उसकी बात कर रहा हूँ। जरा जरूरत पड़ गई तो उसकी तलाश कर रहा था, सुना बाबू बादुड़बागान का मेस छोड़ कर 'मिडिल ईस्ट' में नौकरी करने चले गये हैं। सुना है, बारह-चौदह हजार तनख्वाह है। किस्से-कहानी की गाय तो पेड़ पर भी चढ़ती है। हर महीने बारह-चौदह ह....जा....र। हूँ।'

हाथ आया राजनैतिक अपराधी जैसे अँगूठा दिखा कर भाग जाये तो जबरदस्त पुलिस आफिसर मूर्ख बन कर जिस तरह से गुस्सैल साँसें बाहर निकालता है, उसी तरह से ध्रुव भी गुस्से से भरी साँसें छोड़ने लगा।

वही परेश, जिसे बुला कर घर पर रहने का अनुरोध करेंगे तो वह कृतार्थ हो जायेगा, सोच कर दौड़-धूप की, पता जुटाया ध्रुव ने—वही ऐसा व्यवहार कर बैठा ?

आजकल प्रभुचरण गृहस्थी के किसी मामले में जिज्ञासा प्रकट नहीं करते—आश्चर्यचकित भी नहीं होते हैं। परन्तु इस वक्त अचरज हुआ।

बोले, 'अचानक परेश क्यों ?'

ध्रुव जरा घबड़ाया।

याद आया, पिता जी को अभी कुछ बताया नहीं गया है। जान जरूर गये

होंगे, नौकरों से सुना होगा पर आफिशियली तो बताया नहीं गया है। क्या मालूम शायद सुना न हो। ध्रुव भी तो 'खबर' गुप्त रख रहा है। साथ ही सोच रहा है, वह क्या शुभ की तरह जिस दिन जाना है उसी दिन जा सकेगा? यह कह सकेगा, 'पिता जी, मैं आज वैण्डल रोड के नये फ्लेट में शिफ्ट कर रहा हूँ।'

ध्रुव का तो यहाँ 'जहाज भर' सामान है। यहाँ उसका बिगड़ा लड़का भी है। ध्रुव पर बूढ़े बाप का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व है।

अचानक उसने मन में बल-संग्रह किया।

यही मौका है। झट से कह डालने का। मुझे ही इतनी हिचक क्यों? छोटा लड़का भाग लिया, लड़की ने साफ मना कर दिया और मैं चोर की सजा भोगूं?

अपना अपराधबोध हल्का करने के इरादे से ध्रुव कह बैठा, 'जरूरत और किस बात की होगी? तुम्हारे पास किसी का रहना जरूरी है कि नहीं? मुझे भी तो जल्दी ही नए फ्लेट में शिफ्ट करना है। समय पर पजेशन न लेने पर बहुत तरह की असुविधायें होती हैं।'

नर्वस होकर आँधी की तरह से तेजी से ध्रुव कहता चला गया—'टूलू के पास जा कर खुशामद की कि तुम लोग उस घर को छोड़ कर चले आओ। इतना-इतना किराया देने से बच जायेगी, इतने बड़े मकान में हाथ-पाँव फैला कर रह सकेगी और उनके रहने से तुम खुश भी रहते....'

दो सेकेण्ड के लिये रुका था, उसी मौके पर प्रभुचरण ने एक प्रश्न पूछा। उत्तेजित होकर नहीं, बल्कि जैसे हँसी कर रहे हों।

'उनके रहने से मुझे अच्छा लगेगा, तुमसे यह किसने कह दिया?'

'वाह, इसमें कहने की क्या बात है? हमेशा ही तो तुम....खैर छोड़ो....अब यह प्रश्न नहीं उठता। उन्होंने तो साफ कह दिया, पिताजी अगर पूरा मकान मेरे नाम से 'विल' कर दें तभी रहने के लिये जा सकती हूँ। बिलावजह एक मरीज का जिम्मा क्यों लूँ?'

हृदय रोग से पीड़ित रोगी को उठ कर बैठते देख कर अभी ये लोग 'हाय-हाय' करते थे। लेकिन कितनी सरलता से यह सब कह रहा है? सारी बातें बनावटी नहीं हैं, पर सच भी तो नहीं हैं।

प्रभुचरण आँख बन्द करके लेट गये।

जरा देर के लिये उठ कर बैठे थे, अब बैठा न गया।

ध्रुव ने आज हाय-हाय नहीं की। कहता ही रहा—'शुरू में ही तो आदमी अपनों को भूल कर परायों की तरफ नहीं लपकता है। ऐसा करता तो टूलू ही दोष देती। पर परेशबाबू अचानक बारह हजारी आफिसर हो जाएंगे, यह किसने सोचा था। अब ऐसी मुश्किल हुई है।'

धीरे से प्रभुचरण बोले, 'तुम परेश पर भरोसा कर रहे थे? आश्चर्य की बात !'.

'क्यों ? आश्चर्य की क्या बात है ? जरूरत—गैरजरूरत पर ऐसी घटनाएँ घटते कभी देखी नहीं है क्या ? तुम्हारा अपना भान्जा है।'

बड़े दिनों बाद प्रभुचरण जरा हँसे। बोले, 'हां, यह भी बात सही है।'

सिर्फ योजना विफल हो गई, यही बात नही थी। बारह-चौदह हजार वाला शब्द ध्रुव के सीने में सूई की तरह चुभ रहा था।

अचानक फिर कह उठा—'यह सारा झंझट टूलू की वजह से हुआ है। क्यों भाभी के मुँह पर जवाब देने गई ? उसे पहचानती नही है ? अब सारी मुसीबत मेरी है।'

प्रभुचरण बन्द आँखें खोल कर बोले, 'इतना क्यों सोच रहे हो ? मधु को, लोकनाथ को भी ले जा रहे हो ?'

'उन्हे ले जाऊँगा ? तुमने मुझे सोचा क्या है ?'

'नही, सिर्फ पूछ रहा था। उनके रहने से मुझे कोई असुविधा नहीं होगी। उन लोगों ने सब कुछ तो सीख लिया है।'

ध्रुव के मन की अशान्ति, उलझन दूसरे-दूसरे रूप से प्रकट होने लगी।

'सीख लिया है', कहने से सारी प्रॉब्लम सॉल्व हो जायेगी ? दो नौकरो के भरोसे बीमार बाप को रख कर चला जाऊँ, क्या यह कटु दृष्टि नहीं है ?'

क्या प्रभुचरण के होठो के किनारे हँस रहे हैं ?....नहीं, बड़े ही शान्त, प्यार भरी आवाज में बोले वे—'हर समय 'कटु-दृष्टि' देखोगे तो जीवन का उपभोग कैसे करोगे ध्रुव ? उस समय के लोग यही नही समझते थे, इसीलिये...खैर तुम घबड़ाओ मत, मैं ठीक ही रहूँगा, लोकनाथ सचमुच, अच्छी तरह से, मेरी देख-भाल करता है।'

इतनी सारी बातें कह कर प्रभुचरण शायद थक गये। बोले, 'जाते वक्त दरवाजा भिड़ाते जाना।'

दरवाजा भिडा कर आना ध्रुव भूल गया। घबड़ाया हुआ-सा इस कमरे में आकर देखा, राजा स्कूल से वापस आकर, खुशी-खुशी लोकनाथ की देख-रेख में खाना खाने बैठा है।

चलो, यह भी अच्छा है। देख कर सीने पर रखा पत्थर उतर गया। इतने दिनों से क्या-क्या नहीं कर रहा है ? शायद नये घर में जा कर माँ मिलेगी सोच कर मन खुश है। जो कुछ भी कहो, है तो बच्चा ही। माँ को छोड़ कर कितने दिन रहेगा ?

× × ×

'अन्त में हार कर लौट आये ?'

कठोर व्यंगपूर्ण हँसी के साथ नीता ने तीखा प्रश्नबाण छोड़ा।

इस प्रश्न के उत्तर में ध्रुव बहुत कुछ कह सकता था। सारे उत्तर सीने में हलचल मचाने लगे। पर गले से सिर्फ एक ही आवाज निकली।

'हमेशा ही तो सबसे हारता आया हूँ।'

'ठीक है। मैं ही जाऊँगी। राजा को अलग कर के तो नये घर में नहीं घुस सकूँगी। 'गृहप्रवेश-ववेश' जैसी बातें मैं नहीं मानती हूँ, लेकिन जब माँ इतना जोर डाल रही हैं तब....'

हाँ, नीता की माँ की आकुलता के कारण ही यह गृहप्रवेश हो रहा है। और पूजा की व्यवस्था वैसी न होने पर भी अतिथि-सत्कार की व्यवस्था अच्छी है। क्योंकि यह काम नीता के हाथों में था। करना ही है तो अच्छी तरह से करो। उदारता दर्शाते हुए टूलू लोगों को भी कहा गया था।

अनुष्ठान का वर्णन करते हुए राजा को आकर्षित करने का जिम्मा ध्रुव पर था। उसे ले आने के लिए नीता ने ध्रुव को सुबह ही भेज दिया था। स्कूल का बहाना नहीं हो सकता है, क्योंकि छुट्टी का दिन था। इस मामले में ज्योतिषी के पत्रा ने मदद की थी, जैसा कि साधारणतः होता नहीं है।

चारों तरफ से परिस्थिति अनुकूल थी।

फिर भी ध्रुव के अनुनय-विनय करने पर उसे दो लाइन लिख भेजा था नीता ने—

'राजा, नहा-धो कर अपना वही नीले रंग वाला पोलीयस्टर शर्ट और सफेद लिनेन का ट्राउजर पहन लेना। जूते पर पालिश है न? नौ बजे के पहले ही आ जाना है—समझे?—माँ'

यह पत्र ले कर ध्रुव वापस लौट आया था।

क्रुद्ध कण्ठ से नीता ने पूछा, 'चिट्ठी नहीं दी थी?'

'दी तो थी, आँख उठा कर देखा तक नहीं। बोला, पढ़ कर क्या करूँगा? जाने के लिए लिखा है न? कौन जायेगा?'

नीता बोली, 'आखिरकार लौट ही आये?'

उसके बाद ही दाँतों से निचला होंठ दबा कर बोली, 'ठीक है। मैं ही जाऊँगी।'

मैं ही जाऊँगी!

अ-हा, क्या मनोहर वाणी है? ध्रुव के हाथ में मानो स्वर्ग आ गया हो। फिर भी विगलित भाव प्रकट कर सके, यह साहस न हुआ। संभल कर बोला, 'ओह, तब तो बहुत ही अच्छा होगा।....ऐसा है कि, नये घर में जाने से पहले पिताजी को भी बताना हो जायेगा।'

नीता ने भौंहे सिकोड़ीं—'क्यों? तुमने नहीं बताया है क्या?'

'अरे, मैं तो....माने, न बताना तो संभव नहीं था। पर तुम्हारी तरफ से भी....'

'ओ, फॉर्मेलिटी, ठीक है, प्रणाम करके माफी माँग आऊँगी।'

'माफी माँगने की बात कौन कर रहा है?'

'नहीं कहा है पर माँगने में हर्ज क्या है? जब इतना बड़ा अपराध करने जा रही हूँ।'

चुपचाप धीरे-धीरे ध्रुव अपनी काफी चीजें ले जा चुका था। फिर भी कुछ तो रह ही जाता है। असल में ध्रुव स्वयं नहीं जानता था कि कौन-कौन सी वस्तुएँ नीता की हैं और ले जाना जरूरी हैं। शुरू में तो फ्लैट बड़ा ही लग रहा था। सामान से भर जाने के कारण अब छोटा हो गया था।

फिर भी नीता की इच्छा है कि पुराने भारी 'मुसीबतनुमा' फर्नीचरों को बेच कर नए डिजाइन के हल्के फर्नीचर खरीदे जाएँ!....

इसी प्रसंग पर किसी भावात्मक क्षण में ध्रुव ने कहा था, 'जिस तरह से मेरी दिन पर दिन तोंद बढ रही है और चाँद गंजी हो रही है, नये फ्लैट के अयोग्य समझ कर कहीं निकाल तो नहीं दिया जाऊँगा?'

स्थिरयौवना नीता ने भी कटाक्ष करते हुए कहा था, 'कौन जाने? खैर, यह जो तोंद बढ़ी है, फिर कब्जे में आ जाएगी।'

उस वक्त मधुर मुहूर्त था? ऐसे मुहूर्त अब आते ही कितने हैं? रात-दिन 'जीवन' प्राप्त करने के परिश्रम में, ये मधुरतम क्षण खोने चले जा रहे हैं। एक छोटे से लड़के की जिद्द और मूर्खतापूर्ण विचारों के कारण जैसे जीवन से लावण्य ही सूखता चला जा रहा है।....यह सब नीता के हाथों के बाहर, आँखों की आड़ में रहने का फल है, इसमें क्या शक है?....लगातार माँ के विरुद्ध बातें सुन रहा होगा।

अब मन ही मन नीता अपनी गलती समझ रही है। बाँस कच्चा रहते ही झुकाना अक्लमंदी होती है। पहले दिन राजा को जबरदस्ती ले आना चाहिए था। तब मामला, यह नया मोड़ न लेता।

खैर, वहाँ जा कर खड़े होते ही सब ठीक हो जाएगा, नीता की यही धारणा थी। ध्रुव क्या पुरुष कहलाने योग्य है?

नीता का भाग्य कितना बुरा है!

× × ×

अपने भाग्य का रोना न रोता हो, ऐसा दुनिया में एक भी आदमी है या नहीं, भगवान् ही जानते हैं।....पृथ्वी पर शासन करने वाला सम्राट् भी ऐसा करता है। साधु सन्त भी 'भगवान् के दर्शन' नहीं हुए कह कर हताश स्वरों में भाग्य की बुराई करते हैं।

दीर्घ काल से बिस्तर पर पड़ा रोगी भी यही करेगा इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है?....अब प्रभुचरण में ज्यादा बातें करने की क्षमता भी नहीं रही, इच्छा भी नहीं। यह 'इच्छा' आश्चर्य रूप से समाप्त हो गई है। अतएव दुःख-सुख का बोध भी

नहीं रह गया है ।

मन ही मन प्रभुचरण कल्पना करने की चेष्टा करते, 'अच्छा ! अचानक अगर इन लोगों का मन बदल जाये, फिर से दोनों भाई यहीं आ कर रहें ? टूलू पहले जैसे आया करती थी, वैसे ही आने लगे ? भाई-बहन-बहनोई की मिली-जुली हँसी से घर गूँजने लगे तो क्या प्रभुचरण खुश होंगे ?'

पर कहाँ ? ऐसा तो कुछ नहीं लग रहा है । बस, यही लगता है कि ऐसा होगा तो उन्हीं का भला होगा । इससे ज्यादा कुछ नहीं । यहाँ तक कि एक बार वसीयत की बात भी सोची थी पर वह भी हास्यकर ही लगी ।....'आश्चर्य है ! मेरे मरने के बाद किसका क्या होगा, किसे फायदा होगा, कौन वंचित होगा—इन बातों को सोच-सोच कर मैं क्यों परेशान रहूँ ?'

मरने पर क्या होगा, क्या हो सकता है, सोच कर मनुष्य धन-सम्पति का प्रबन्ध करता है, यह एक अद्‌भुत हास्यकर बात है । कभी-कभी सोच कर प्रभुचरण आश्चर्य करते—यह हास्यकर प्रथा चिरन्तर काल से चलती चली आ रही है । जो परलोक पर विश्वास नहीं करते, उस समाज में भी यह प्रथा लागू है ।...अपना बहुत कुछ प्रभुचरण को आजकल हास्यकर ही लगता । बचपन से ले कर आज तक के कार्य-कलाप, चिन्ता-चेतना, आवेग-उत्तेजना पर दृष्टि डालते तो सोच कर आश्चर्य करते कि कितना परेशान रहे हैं । बेचैन हुए हैं, खुशी से पागल हुए हैं । छिः छिः, वह आदमी मैं ही था ?

'अतीत के प्रभुचरण' को सम्पूर्ण रूप से पृथक् करके देखने के आदी हो गए हैं प्रभुचरण । फिर भी भाग्य की निन्दा करते हुए दीर्घश्वास छोड़े बगैर तबियत नहीं मानती । यह साँस लम्बी और स्थायी बीमारी के कारण बाहर निकलती ।

इसी ने प्रभुचरण की सारी स्वाधीनता हर ली है । छीन लिया है उनसे सारा संसार ।....इस बीमारी ने अगर उन्हें न तोड़ डाला होता तो चहारदीवारी में बन्द रह कर वे दूसरों की असुविधा की रचना न करते ।

पृथ्वी पर तो कितनी जगह है ।

इसी में से एक जगह ढूँढ़ कर एकाकी जीवन का स्वाद लेते हुए मगन रहते । किसी का दायित्व न होता उनके जी बहलाने का, या किसी के चेहरे की हँसी देखने के लिए इन्हें लालायित न रहना पड़ता ।

'बनशोभा, तुम मुझको यह कह कर गुस्सा हुआ करती थी कि मेरा गृहस्थी में मन नहीं लगता है । परन्तु तुम्हारे चले जाते ही मेरा सम्पूर्ण स्वभाव ही बदल गया । मुझे लगा, तुम्हारा प्राणों से भी प्रिय यह संसार, छिन्न-भिन्न हो रहा है । इसीलिए मैंने अपना जीवन इसमें लगा दिया ।

'मानो तुम फिर आकर देखोगी । इसकी दुर्दशा देख कर दुःखी होगी तुम, या शायद मैं ही वहाँ पहुँच कर अपनी बहादुरी के किस्से सुनाऊँ ?

'कितना हास्यकर ! कितना अधिक हास्यकर ?

'अगर तुम्हारे जाने के बाद मैं इस गृहस्थी को छोड़ कर कहीं और रहने चला

गया होता ? तब...तब क्या आज मुझे अकेला छोड़ कर, एक-एक करके ये लोग खिसक जाने की कोशिश करते ?

'समझ रहा हूँ—'उम्र' नामक चीज बड़ी भारी होती है।'

इसका भार अब प्रभुचरण स्वयं अनुभव करते हैं।

इसी 'बोझ' की चक्की के दो पाटों के बीच में पड़ कर उनका दम घुट रहा है। जीवन-रस से भरपूर गृहस्थी के साथ उनका एक सम्बन्ध था। जब तक ऐसा था, तब तक उनके मन में क्षीण सी आशा थी, फिर किसी दिन इस जीवन्त जगत् में शामिल हो सकेंगे प्रभुचरण नामक असुविधाग्रस्त आदमी। हाँ, बहुत दिनों तक वे यही सोच कर निश्चिन्त थे कि असुविधा सामयिक है।

क्रमशः ऐसा सोचना छोड़ दिया था।

क्रमशः इसी से छुटकारा पाने के लिए, बच्चों की तरह मन की रास ढीली किए बैठे हैं और तरह-तरह की बातें सोचते हैं। जिन बातों पर कभी विश्वास नहीं किया था, और लोग विश्वास करते हैं, देख कर हँसते थे, आज उन्हें ही मुट्ठी में पकड़ना चाहते हैं।

हाँ, प्रभुचरण साधु-सन्तों, पूजा, फूल, बेलपत्ता, होम की भस्म, ताबीज, ज्योतिष, ग्रह के लिए रत्न-धारण, स्वप्न में दिखाई पड़ना या बताई गई दवा पर सदा ही हँसते आए थे। पर अब बच्चों की तरह कल्पना करते और देखते कि इन्हीं में से एक के जोर से कोई अलौकिक घटना घट गई। प्रभुचरण ठीक हो गए हैं—स्वावलम्बी हो गए हैं। अब वे बिस्तर से नहीं लगे हैं।

शरीर पर पड़ी चादर को एक तरफ हटा कर प्रभुचरण सीधे हो कर बैठ गए हैं और चीख-पुकार कर रहे हैं—'अरे, तुम लोग कौन क्या कर रहे हो ? मेरे लिए एक ट्रेन का टिकट तो कटवा लाना। नहीं। तुम लोगों को रुपए लगाने की जरूरत नहीं है, यह लो, मैं ही दे रहा हूँ। देखो, फर्स्ट क्लास का टिकट लेना, रिजर्वेशन भी रहे। तुम्हारी माँ को थर्ड क्लास में जाना, फूटी आँख नहीं भाता था। कहाँ का टिकट ?.... जहाँ का भी हो ...पुरी, भुवनेश्वर, दार्जिलिंग, हरिद्वार, दिल्ली, बम्बई....समुद्र का किनारा, गंगा का तट, पहाड़ की चोटी...ऐसी कोई भी जगह हो....काम चलेगा...बस, यहीं का न हो।....हो हल्ला करते हुए निकलने से मतलब है....हजारों हाथों में घूमते फटे-पुराने नोट की तरह अपने सड़े-गले जीवन को अब मैं ढोने में असमर्थ हूँ। मुझसे, घिसे सिक्के-सा यह परिवेश, बरदाश्त नहीं हो रहा है।...आँखें खोलते ही बदरंग होती यह चार, सफेद दीवालें, लटक आए मैले पर्दे लगे दरवाजे-खिड़की, हमेशा के लिए अचल हो गई यह अलमारी, अलगंडी, शेल्फ....उसी एक ही कीले पर लटकी दिवान पड़ी, और किसी ख्याति प्राप्त व्यक्ति की तस्वीर, इधर रखी दवा की शीशियों, डिब्बों, टैबलेट की पुड़ियों से सजी मेज। और ? सामने की दीवाल पर कीला निकल जाने से बन गया गड्ढा और उसी के नीचे एक कैलेण्डर....और....और अब मुझसे कुछ देखते नहीं बन रहा है।... देखना नहीं चाहता हूँ, इसीलिए ज्यादातर आँखें बन्द रखता हूँ। तुम लोग सोचते हो,

बूढ़ा झपकी ले रहा है।....लेकिन अब तो मैं पंगु नहीं हूं। यह देख लो, मैं बिस्तर से कूद कर उतर आया हूं। अपने हाथों से दराज-अलमारी खोल कर अपने कपड़े-सामान लगाए ले रहा हूँ। वह बीच के नाप वाला सूटकेस कहां गया ? जिसे तुम्हारी मां ने इसलिए जबरदस्ती खरीदा था, क्योंकि कहीं आने-जाने में मुझे दिक्कत होती थी।.... लाओ, उसे ही ले आओ, सामान ठीक कर लूँ। हां-हां, मैं स्वयं ही ठीक कर लूंगा। अपना काम स्वतः ही करना चाहिए।....यह तो मानना ही पड़ेगा कि जीवन में 'अलौकिक' घटनाएँ भी घटती है, क्यों ?....न जाने कहां की कैसी होम की भस्म, तुम लोगों के बाप के माथे से छुई नहीं कि बाप बिल्कुल 'फिट'। आज तक कैसा बेकार पड़ा था ?

'साथ ? नहीं-नहीं, साथ कौन जायगा ? किसी को साथ चलने की जरूरत नहीं है। मैं तो बाबा, अकेलेपन के लिए ही यह सब कर रहा हूं ? अपने आप अकेले रहना कैसा लगता है, इसका स्वाद लेना चाहता हूं। मैं नहीं चाहता कि कोई मुझ पर हुकुम चलाए।'

× × ×

इस घर को छोड़ कर रेल पर चढ़ बैठने की कल्पना ही अब परम प्रिय हो उठी है। सोचते जा रहे हैं, बैठ गए हैं, पहले से ही खिड़की के पास की जगह दखल में ले ली है। बड़ी तेज हवा लग रही है, रह-रह कर दृश्यपट परिवर्तित हो रहा है, पेड़-पौधे, मैदान, वन, नदी-तालाब सभी भाग रहे हैं। दौड़ रही हैं चरती हुई गायें। पेड़ के नीचे लेटा बूढ़ा कुत्ता भी, रेलवे के एक ही तरह के क्वार्टर और यहां-वहां सिर उठाए खड़े कल-कारखानें...सभी दौड़ रहे हैं। उधर फूस की मिट्टी से बनी झोंपड़ी, टूटा मंदिर, बिजली का शिकार ताड़ का ठूंठ खड़ा पेड़ भी... सब ! सब दौड़ रहे है। और उसी दौड़ के एक भागीदार हो गए है प्रभुचरण नाम के आदमी भी।

कितनी तृप्ति हो रही है ?....'लोकनाथ, मुझे रेल का खाना देने की बात याद रखना। आलू की सब्जी जरा सूखी-सूखी रखना। मेरी मां क्या आलू की सब्जी पकाती थीं ! आह ! सफ़ेद, सूखी और नरम। तुम लोगों से वैसा कहां बनता है ?....चलती ट्रेन की खिड़की के सामने बैठ कर सफेद आलू की सब्जी और सफ़ेद ही नरम पूड़ियां खाने का मजा ही कुछ और है। अब तो किसी को तेल वाला आम का आचार खाते नहीं देखता हूँ, वरना उस पूड़ी-सब्जी के साथ तेलहा आम का आचार...अ...हा !'

× × ×

अच्छा, मैं अकेला ही जाना चाहता हूं। बिल्कुल अकेला।....तब ? इस रेल के डिब्बे में ये लोग कौन हैं ? बदन छू-छू कर बैठे हैं। बड़े पहचाने से !....जबकि....जबकि ठीक पहचान नहीं पा रहा हूँ....टिफिन में से किसे खाना दिए दे रहा हूं ? अरे, नाम क्यों नहीं याद आ रहा है ?

...! कल्पना लोक से निकल कर न जाने कब स्वप्नलोक में जा पहुँचे।....यहां भी भीड़ का अन्त नहीं। सारे पहचाने लोग...और सभी चुप।....घूम-फिर रहे हैं, प्रभुचरण

को आँख उठा-उठा कर देख रहे हैं, लेकिन बात नहीं कर रहे हैं।

× × ×

'अरे ! क्या बात है ? तुम लोग बोल क्यों नहीं रहे हो ?

'तुम लोगों को चुप रहते देख कर तो मेरा दम घुट रहा है।....बात करो ! कोई कुछ तो कहो। आह ! रेल तक ने आवाज़ करना बन्द कर दिया है।'...

उनमें से किसी को भी बात करवाने की जी तोड़ कोशिश में प्रभुचरण का सारा शरीर गीला हो गया। उन्होंने स्वयं अनुभव किया—गर्दन, गला, सीना, पीठ...सब भीगता जा रहा है। ऐसे कष्ट से छटपटाते देख कर ही शायद किसी ने दया करके यही कहा—'नहीं, कभी नहीं। कह तो दिया है, नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा।'

यह क्या ? कौन है यह ? किसकी आवाज़ है ?

प्रभुचरण जबकि सारी तैयारी करने के बाद दूर देशान्तर जाने के लिए रेल पर सवार होने वाले हैं तब यह किसने ऐसी घोषणा करते हुए प्रतिज्ञा की—'नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा।'

प्रभुचरण चिल्ला पड़े—'कौन ? कौन कह रहा है ? कौन है ? कौन ?'

पर क्या सचमुच में चिल्लाए ? शायद चिल्लाए पर किसी ने सुना नहीं। सुनने की बात थी भी नहीं। आवाज़ क्या हवा में तरंगित हो कर रह गई ?

× × ×

न जाने कहाँ किसी ने कहा—'वाह ! गँवारों की तरह तीन बार कह कर प्रतिज्ञा करना सीख लिया है !....अच्छी खबर है। लेकिन जाओगे क्यों नहीं ?'

सभी आवाज़ पहचानी थी, पर पकड़ में नहीं आ रही थी।

'नहीं जाऊँगा, मेरी मर्जी।'

किसी ने भारी आवाज़ में कहा—'माँ के साथ इस तरह से बातें कर रहा है ? छिः छिः ! तू तो पहले ऐसा नहीं था बेटा ? इस मधु कम्पनी के साथ रह कर....'

'आ....हा, खबरदार, उनकी बुराई मत करना, यह कहे दे रहा हूँ। उनसे मैं माँ के साथ खराब ढंग से बोलना सीख रहा हूँ, क्यों ? उनकी क्या यहाँ माँ है ?'

'अरे बाबा, चलो मानता हूँ, वे बहुत अच्छे हैं। पर सीखा कहाँ से ? पहले तो....'

'मैंने अपने आप सीखा है। जानबूझ कर सीखा है।'

'असंभव ! मुझे लग रहा है, इमीजियटली इसका मेण्टल ट्रीटमेण्ट जरूरी है। ....जैसे भी हो....ओह, मेरा सिर चकरा रहा है।'

'सिर चकरा रहा है ! सर्वनाश। देख रहे हो राजा, तुम्हारे व्यवहार का परिणाम ? मेरे अच्छे बेटे, इस वक्त हमारे साथ चले चलो। न हो फिर लौट आना।'

'अहा, ऐसा न होगा। ही-ही-ही, मुझे क्या बच्चा समझ रखा है ? इसीलिए

बहला कर, एक बार ले जाओगी ? दुबारा तुम आने दोगी ? बन्दी बना कर नहीं रख दोगी ?'

'राजा ! मेरा सिर चकरा रहा है, फिर भी दुबारा कह रही हूँ....इस तरह से हमें परेशान मत करो। आज से तो तुम्हारे पिता जी यहाँ नहीं रहेंगे। तुम किसके पास रहोगे ?'

'क्यों ? बाबाजी के पास, लोकनाथ, मधु के पास रहूँगा। लोकनाथ से मेरी बात भी हो गई है।'

'बाबाजी ! हूँ ! मूर्खों की तरह बातें मत करो राजा। बाबाजी की तबियत का हाल जानते हो तुम ? डॉक्टरों ने कहा है, किसी भी समय हार्टफेल हो सकता है।'

'जानता हूँ, जानता हूँ। खूब जानता हूँ। फिर भी तो तुम लोग बाबाजी को यहाँ डाल कर, मजे से नये घर में जा रहे हो। ठीक है...मधु का तो हार्टफेल नहीं हो रहा है। ही-ही, लोकनाथ दा का भी हार्टफेल नहीं होगा।'

'राजा, तुम समझ नहीं रहे हो। क्या इधर-उधर की बातें कर रहे हो ? तुम्हारी माँ अगर अचानक 'फेन्ट' हो गई, तब ? यह क्या अच्छी बात होगी ?'

'क्यों ? फेन्ट क्यों हो जाएँगी ?'

'और क्यों ? तुम्हारे दुर्व्यवहार से। लड़का इस तरह से तकलीफ देता है तो माँ-बाप के दिल को कितनी ठेस पहुँचती है, तुम जानते हो ?'

'तुम जानते हो क्या ?' कह कर वह बच्चा व्यंग से हँसा।

× × ×

पसीना आ रहा है। और....और। पसीने की धार बह रही है। कहाँ था इतना पसीना....या शरीर का सारा खून गल-गल कर बहा जा रहा है। उसका रंग तक खत्म हो चुका है। फिर भी इच्छा हो रही है, शरीर की समस्त इन्द्रियाँ सजग रहे। बेहद इच्छा हो रही है। जी कर रहा है—दौड़ कर उन बोलने वालों में शामिल हो जाएँ।

प्रभुचरण क्या दौड़ कर जाने की कोशिश करें ? पर क्या गर्दन उठाने मात्र से जाया जा सकता है ? ताज्जुब है ! इतने दिनों से लग रहा था कि बिस्तर पर लेटे इस आदमी की 'इच्छाशक्ति' समाप्त हो गई है। पर वह कितनी भयंकर भूल थी।

अभी भी अदम्य इच्छा हो रही है ? शरीर के एक-एक बूंद खून को पसीने में बदल डालना पड़े फिर भी इन्द्रियों को जाग्रत रख कर इच्छा हो रही है बातों की उस दुनिया को समझने की। फिर ? इतनी क़ीमत चुकाने पर भी कुछ नहीं मिलेगा ?

मिलेगा। सुनाई पड़ी अपने बड़े लड़के की आवाज—

'क्या कह रहा है राजा ? मैं नहीं जानूँगा ? अपनी तकलीफ को भी नहीं समझूँगा ? तू यह कैसे सोच रहा है राजा, कि तू हमारे पास नहीं रहेगा ? यह कैसी असम्भव बात है ? इससे क्या हम जी सकेंगे ?'

'हाय-हाय । अपने आप जो कुछ करो, वही सही है, और अन्य करें तो गलत । स्वयं तो तुम आराम से सोच रहे हो कि अपने पिता जी के पास नहीं रहोगे।'

'राजा, तुम बहुत ज्यादती कर रहे हो। बड़े और छोटे बराबर होते हैं ?'

'जानता हूँ, जानता हूँ। बराबर नहीं होते हैं। बड़े जितना चाहे खराब काम कर सकते हैं, छोटे करें तो कसूरवार हैं। बाबाजी अकेले मर कर पड़े रहेंगे, उसमें कोई बुराई थोडे ही होगी।'

× × ×

'ओह ! देखा तुमने ? समझ रहे हो न ? मैंने कहा नहीं था—अकेला पाकर 'स्लो पॉयजन' किया जा रहा है।....बस, अब एक भी बात नहीं। जबर्दस्ती पकड़ कर कार में चढ़ाने का प्रबन्ध करो। पागल को उसकी मर्जी पर नहीं छोड़ा जाता है। ....ऐ खबरदार ! हाथ छुड़ाने की कोशिश मत करना। बिल्कुल ठंडा कर दूँगी।....खड़े-खड़े देख क्या रहे हो ? पकड़ो न....'

'आः ! छोड़ दो मुझे। कह रहा हूँ छोड़ दो। लोकनाथ दादा, मधुदादा....देखो मुझे पकड़ कर लिए जा रहे हैं। ओ, बाबा जी....'

इस कमरे में बातों की लहरें हड़बड़ा कर घुस आईं। पर उस जगत् में शामिल होने के लिए क्या कोई व्याकुल बैठा है ?....खून गला-गला कर बनाये पसीने से कब तक जिला कर रखी जा सकती हैं घुन लगी इन्द्रियाँ ?

× × ×

प्रभुचरण को ट्रेन का टिकट मिल गया है। यात्रा की पूरी सज्जा, तैयारी हो चुकी है।

इस घर के मालिक के योग्य ही सजावट हुई है, उनकी।

पसीना रुक गया है। उसका एक-एक चिह्न मिटा कर, सारे शरीर पर मल दिया गया था चन्दन, लैवेन्डर और क़ीमती तरह-तरह के सेन्ट। मृत्यु की भयावह सच्चाई को नष्ट करने के लिए।

पर पालिशदार पलंग पर, नए बिस्तर, नये कपड़े-लत्ते में और फूलों से सारा शरीर ढाँक कर जिसे फोटोग्राफर के आगे कर दिया गया, वही हैं क्या ? फटे-पुराने नोट की तरह, सड़े जीवन का वहन करने वाले क्लान्त प्रभुचरण ?

तब फिर अलौकिक प्रकाश से उनका चेहरा ऐसा कैसे हो गया है ? सारे चेहरे पर हँसी का आभास क्यों मिल रहा है ? यही आभास अगर हो जायेगा कैमरे की पकड़ में।

प्रभुचरण वास्तव में इतने सुन्दर थे ? ऐसा तो किसी को याद नहीं आता है।

लोगों से खचाखच भरा घर। रिश्तेदार, मित्र, परिचित...झुण्ड के झुण्ड लोग आ रहे हैं, देख रहे हैं। वे आश्चर्य से सोच रहे हैं कि इतने दिनों तक बिस्तर में पड़े रहे फिर भी चेहरा कितना सुन्दर है ! आश्चर्य की बात नहीं है ?

'मृत्यु के बाद बहुतों के चेहरे पर ऐसी दिव्य ज्योति देखने में आती है।'

कोई-कोई कह रहा है (नीची आवाज में)—'कष्ट के चिह्न मिट जाते हैं न? रोग यन्त्रणा के भी।'

'अत्यन्त भद्र और सज्जन पुरुष थे।... कभी तेज आवाज में बोलते किसी ने नहीं सुना था।'....

'कभी किसी समय जेल भी जा चुके हैं।'........'कहना चाहिए 'सेल्फ मेड मैन' थे।'

'यह सब घर-द्वार, मोटर उन्हीं का तो किया है। आज भी तो सुनने में आता है कि यह नौकर-चाकर, घर का खर्च सब उन्हीं के पैसे से होता था....जब कि पढ़ने-लिखने में वैसे खास न थे।....नान-कोआपरेशन के चक्कर में कॉलेज-वॉलेज छोड़ कर देशप्रेम में लग गए। शादी करके जिन्दगी बदल डाली।....पर हाँ, आदमी हमेशा ही बढ़िया थे....'

× × ×

लोग कह रहे हैं।

कहेंगे ही। यही तो दुनिया का नियम है। जब पास रहता है तब कोई नहीं 'देखता है' क्या है—जब खो जाता है तब हिसाब लगाते हैं 'क्या था' का।

जो कोई कुछ कह रहा है, धीमी आवाज में। सिर्फ एक ही स्वर रह-रह कर पछाड़ें खा रहा था।

'ओ पिता जी, पिता जी।'

और फूलों से ढँका चेहरा लगातार उज्ज्वल होता जा रहा है।

फिर किसी ने धीरे से कहा—'देखना, बर्निंग घाट तक पहुँचते-पहुँचते और निखार आ जाएगा। कई बार देख चुका हूँ। एक बार एक महिला, अच्छा खासा काला रंग था... पर....'

'हो सकता है।'

'मृत्यु की मलिनता को ढँकने के लिये स्वर्गीय कोई विभा प्रकट होती होगी।'

'पर यह हँसी का आभास?'

'यह भी क्या दिखाई पड़ता है? कौन जाने।'

पर उस चेहरे पर कब से हँसी की छटा देखी न थी? वह क्या कौतुकपूर्ण हँसी है? उस लड़की की मूर्खतापूर्ण नासमझी पर हँस रहे हैं क्या?

असल में अचानक शोक का पहला झटका, हर होशियार आदमी को भी मूर्ख बना डालता है। टुलू अगर पछाड़ें खा-खाकर कहे, 'अरे पिता जी! तुच्छ मानाभिमान के कारण मैं तुम्हें देख न सकी। देखने आई नहीं। भइया बुलाने भी गया था, कहा था तुम्हारे पास रहने के लिये, फिर भी मैं नहीं आई। मैं तुम्हारी अधम लड़की हूँ....मैंने तुम्हारा कुछ नहीं किया....!'

इसमें क्या कोई विशेषता है?..

यह हँसी तो परम तृप्ति की, अतुल आनन्द की है। जैसे मिल गया हो, पृथ्वी से जो मिलना था, वह मिल चुका हो।

कौन जाने, लड़ाई के इस मुहूर्त में परमतृप्ति की सूचना आ पहुँची हो—हताश, उदास प्रभुचरण के पास ? न्याय वाणी या स्पष्ट सत्य, . जो कि पृथ्वी पर से खाली हाथ विदा लेने की ग्लानि से उन्हें मुक्त कर गई।

● ●